❀ श्रीजिनायनमः ❀

श्री वाणी भूषण पं० ब्र० भूरामल शास्त्री

विरचित

जयोदयनाम महाकाव्यं

प्रकाशक :—

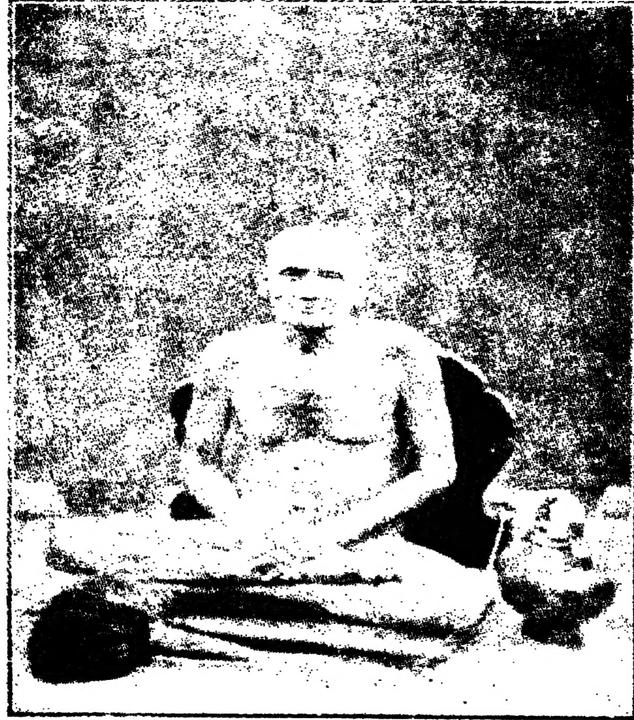
ब्रह्मचारी सूरजमल (सूर्यमल जैन)

श्री १०८ श्री वीरसागर जी महामुनेः संघे

मिति ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी वी० सं० २४७६

卐

प्रथमावृत्ति १००० (मूल्यं स्वाध्यायमेव)



श्री परम पूज्य चारित्रचक्रवर्ति श्री १०८ श्री आचार्य

शान्तिसागरजी महाराज

समर्पितं

श्री परम पूज्य जगदोद्धारक चारित्र चक्र-
वर्ति श्री १०८ श्री आचार्य शांतिसागर
महामुनेः पट्ट शिष्य श्री पू० प्रातःस्मर्णी
आचार्य कल्प श्री १०८ श्री वीर-
सागर महामुनेः करकमलेषु
समर्पित मिदं जयोदय नाम
महाकाव्यं ।

जयोदय महाकाव्य—



श्री आचार्यकल्प—

श्री वीरसागर जी महाराज

प्राक्कथन:

अद्याप्यस्मिन्महीमंडले सुरभारती विशिष्ट प्रवणाः प्रच्छन्न-महाविद्वान्सो वर्त्तंते ये श्री हरिचन्द्र वीरनंदि वाग्भट्ट माघ कालिदास भारवि भवभूत्यादि महाकवि योग्यतां दधाना अपि प्रचार लोकेऽपि पूजकादि सामग्री विरहादप्रसिद्धिमेव प्राप्तास्ते-षामेवान्यतमोऽस्य महाकाव्यस्य रचयिता महाकविः पंडित-श्री भूरामलजी शास्त्री महोदयो जैनः अनेन महाकविना श्री महापुराणोक्तजयकुमार सुलोचना कथानकमवलंव्याष्टाविंशति-सर्गात्मकमेतन्महाकाव्यं व्यरचि। ग्रन्थ कर्तु रस्य गीर्वाण वाण्यां कियान् प्रवेषः कीदृशी च कवित्वशक्तिरिति महाकाव्यस्यै-तस्याध्ययनेनैव परिचयो भविष्यति । काव्य निर्माणेन महा-कविनाऽस्मिन् काव्ये अनुप्रासपूर्त्यै यावान् प्रयत्नो विहित-स्तावान् यद्यर्थ स्पष्टताऽपि सुलक्षिताऽभविष्यत्तर्हि विदुषामधि-कमनोमोदकरमेतत् काव्यमभविष्यदित्यसंकोचम् । बहुषु स्थलेषु व्यर्थ क्लेश बोधो दुनोति चेतस्तत्र महाकवेरस्या-नुप्रासान्वेषणमेव हेतुर्नतु कवित्वे कश्चिदपिदोषः । जयपुर राज्यान्तर्गत राणाली नामकोपनगर वास्तव्योऽयं दिगम्बर जैनः खंडेलवाल जातीय छावड़ागोत्रीयः पंच पंचाशद्वर्षवयस्कः बालब्रह्मचारी वाणीभूषणः श्री भूरामल शास्त्री महोदयः

सर्व प्रभाव संप्रयुक्तया महामहिम गीर्वाणवाण्याः सेवां चकारेति महान् प्रमोदास्पदावसरः ।

ग्रन्थकर्त्तुरस्य पितृपादमहोदयो वणिग्वरः श्रीचतुर्भुज-महाशयः सप्तवर्ष देशीयमेवैनं महाकविं परित्यज्य स्वर्ययौ । राणोली ग्रामे न काचित्संस्कृत पाठशालाऽप्यासीत् । महाकवि समेताः पंचभ्राता आसन् । गृहार्थिकदशापि साधारणमेवासीत् तथापि प्रबन्धकर्त्तायं विद्वन्निकेतन बनारस नगरे गत्वा यथाकथमपि गीर्वाणवाणी मातुरेवंविधः सेवको बभूवेत्याश्चर्य-करमेव । अवगम्यते किल बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।

प्रक्षालनादिपंकस्य दूरादेवास्पर्शनं वरंमिति ज्ञायं ज्ञायमनेन स्वकीय विवाह प्रस्तावोऽपि निषेध पथं प्राप्तः । वर्षद्वयादयं महाकविर्विद्वान् श्रीमत्परम दिगम्बर निर्ग्रन्थ वीतराग महामुनि श्री १०८ श्री वीरसागर महात्मनां संघे धर्माचार एव कालं यापयन् संघस्थ साधून् गीर्वाणवाण्या समलंकुर्वाणः स्वजीवनं सार्थकं विदधाति ।

वर्षत्रयादास्माकीन् भारतदेशः स्वातन्त्र्यमभियातः स्वतन्त्रेऽस्य राष्ट्रभाषापि गीर्वाण वाण्येव भविष्यत्येकदेति सुनिश्चितमतोयुतः । सुरभारत्यां यावत्यपि नवनिर्मितिर्भवेत् यावानपि प्रचारो भवेत्तत् सर्वमेव तोषकरम् । सुरभारतीं केनापि प्रकारेण कोऽपि स्मरेदित्येव तोषमोदकरम् ।

ग्रन्थस्यास्य प्रकाशने श्री १०८ श्री आचार्यकल्प श्री वीरसागर जी मुनिराज संघसेवको विद्वान् श्री सूर्यमल ब्रह्मचारी महान्तं यत्नं विदधे तेनैव धनिकदातृ जनानुत्साह्यैतत्प्रकाशनाय प्रबंधो विहितोऽतः सोऽपि तावदेव धन्यवादार्हः यावदयं काव्यनिर्माता । यैरपि महाशयैरस्य महाकाव्यस्य मुद्रणाय प्रकाशनायार्थदानं कृतं तेऽपि धन्यवादार्हा अनुकरणीयाश्च ।

जयपुरम्
ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी
२००७ वैक्रमाब्दः

पं० इन्द्रलाल जैनः
शास्त्री विद्यालंकारः
जैन गजट संपादकः



जयोदय काव्य का प्रतिपाद्य विषय

प्रथम सर्ग में—हस्तिनापुर के पुरातन राजा जयकुमार भरत चक्रवर्ति के सेनापति का कीर्तिगान किया गया है, अनन्तर जयकुमारजी वन क्रीडार्थ गये, वहाँ उन्हें एक मुनिराज के दर्शन हुए, उनकी स्तुति की और कर्तव्य का मार्ग पूछा।

द्वि० स०—मुनिराज के मुँह से गृहस्थ धर्म का उपदेश हुआ उसे सुनकर आप घर लौटते समय एक सर्पिणि जो इनके साथ मुनिराज से धर्म श्रवण कर रही थी, वह किसी दूसरे से लगी हुई थी, उसे देखकर आपने उसे झिड़काया, देखा-देखी अन्य लोगों ने भी उसे धुत्कारा और पत्थर ईंटों से पीटा, वह मर कर व्यन्तरी हुई, और अपने स्वामी जो व्यन्तर हुआ था उससे कोई बहाना बनाकर जयकुमार की शिकायत की। क्रोध में आकर वह देव जयकुमार को मारने आया, इधर जयकुमार अपनी प्रियाओं के समक्ष उपर्युक्त घटना सत्य सत्य कह रहे थे, उसे सुनकर देव प्रतिबुद्ध होकर उसका सेवक बन गया।

तृ० स०—जयकुमार सभा में बैठे हुए हैं, काशी नरेश का दूत आकर सुलोचना के स्वयंवर की खबर देता है और आप स्वयंवर के लिए काशी पहुँचते हैं।

च० स०—अर्ककीर्ति भी सुलोचना के स्वयंवर के समाचार सुनकर काशी पहुंचता है।

पं० स०—और और राजाओं का काशी पहुंचना और स्वयंवर समारोह का होना इत्यादि वर्णन है।

ष० स०—विद्यादेवी के द्वारा राजाओं का परिचय करा गया। इसके बाद सुलोचना ने उचित समझ कर जयकुमार के गले में स्वयंवर माला डाली।

स० स०—अर्ककीर्ति के एक सेवक ने अर्ककीर्ति को स्वयंवर के विरुद्ध भड़काया है, सुमति मन्त्री के द्वारा समझाये जाने पर भी, अर्ककीर्ति युद्ध करने को तैयार हो जाता है, एवं युद्ध होता है उसका वर्णन ८वें सर्ग में है।

न० स०—जयकुमार की जीत अर्ककीर्ति की पराजय से अकंपन महाराज खुश होकर प्रत्युत अन्मना होते हैं। अब सोचते हैं कि अर्ककीर्ति को किस तरह खुश किया जावे, अन्त में अन्वय विनय के साथ वे अपनी सुलोचना से लघु बालिका अक्षमाला नाम की लड़की के साथ विवाह कर देते हैं और इस बात की खबर भरत चक्रवर्ति के पास भेज देते हैं।

द० स०—जयकुमार जी के विवाह की तैयारी होती है, जयकुमार जी को बुलाया गया है और दोनों दुलहा दुलहिन को परस्पर में मिलाकर मंडप में उपस्थित किया गया।

एकादश स०—जयकुमार के मुंह से सुलोचना के रूप सौंदर्य का वर्णन

द्वा० स०—उन दोनों के पाणिग्रहण का वर्णन और आई हुई बरात का अतिथि सत्कार एवं जीमनवार वर्णन।

त्रयो० स०—जयकुमार ने श्वसुर से आज्ञा पाकर सुलोचना के साथ अपने नगर के लिए प्रयाण किया और रास्ते में चलकर गंगा नदी के तट पर पड़ाव डालते हैं।

च० स०—वन क्रीड़ा और वन क्रीड़ा का वर्णन।

पंच० स०—रात्रि और सन्ध्या का वर्णन।

षो० स०—लोगों के द्वारा की गई पान गोष्ठी का वर्णन।

सप्तदश स०—रात्रि क्रीड़ा का वर्णन।

अष्टा० स०—प्रभात का वर्णन।

एको० स०—जयकुमार द्वारा की गई सन्ध्यावन्दन सामायिक का वर्णन और उसमें सविस्तार जिन भगवान की स्तुति की गई है।

विंश: स०—जयकुमार महाराज भरत चक्रवर्ति के भेंट करने के लिए गये हैं और वहाँ से लौटते समय आकर जब हाथी गंगा में प्रवेश करता है, तब एक देव मकर का रूप धारण करके गज को हड़प करना चाहता है. तब जयकुमारजी घबड़ाये और डूबने को तैयार हो जाते हैं, इस बात को देखकर सुलोचना जो कि गंगा के उस तीर पर थी, उसने णमोकार मन्त्र का जाप्य करती हुई गंगा में प्रवेश किया तब उसही वक्त सती के पुण्य प्रभाव से जल देवता का आसन कम्पायमान हुआ और वह आकर उपस्थित होता है—

सुलोचना जयकुमार की पूजन करके अपना परिचय देकर वापिस चली जाती है।

एकविंश: स०—जयकुमार के अपने घर को रवाना होने का वर्णन है।

द्वा० स०—जयकुमार अपनी प्रिया के साथ अपने महल की छत पर बैठे हुए बातें कर रहे हैं. इतने ही में दोनों दंपति देव विमान को देखकर जाति स्मरण करते हुए अवधि ज्ञान को प्राप्त हुए। अवधि ज्ञान को पाकर मूर्छित होते हैं, होश में आने के बाद जयकुमार सुलोचना से पूर्वभवों के विषय में प्रश्न करते हैं और सुलोचना जवाब देती है। अन्त में इनको पूर्वभव की विद्या भी प्राप्त हो जाती है।

त्रयोविंश: स०—सुलोचना के साथ जयकुमार विमानारूढ़ होकर अनेक तीर्थों की वन्दना करते हुए कैलाश पर्वत पर पहुँचते हैं, वहाँ कैलाश गिरि का वर्णन है, और दोनों दम्पति चैत्यालय में जाकर भगवान का अभिषेक पूजन करते हैं उसका वर्णन है, और चैत्यालय के बाहर निकल कर दोनों दम्पति पर्वत की शोभा को देखते हुए पृथक् पृथक् हो जाते हैं। इधर एक देव स्त्री के वेष में जयकुमार के सामने आकर अपने आपको विरहिणी कहते हुए संगम की प्रार्थना करता है और जयकुमार के इन्कार होने पर उन्हें ले भागता है, इस बात को देखकर सुलोचना उसे डाँटती है, तब उसने जयकुमार को छोड़ दिया।

च० स०—दोनों के सहयोग संभोग का वर्णन।

प० स०—जयकुमार को वैराग्य उत्पन्न होता है, अतः उनके मुँह से १२ भावनाओं का वर्णन है।

ष० स०—उन्होंने अपने लड़के को राज्यतिलक का वर्णन।

सप्तविंश स०—आप जाकर ऋषभदेव भगवान् के पास पहुंचते हैं और दीक्षा की याचना करते हैं, भगवान् उन्हें अष्टाविंश-मूल गुणों का आदेश देते हैं।

अष्टाविंश स०—जयकुमार के द्वारा की गई तपस्या का वर्णन है। अन्त में ग्रन्थ समाप्ति रूप मंगलाचरण और कवि प्रशस्ति है।

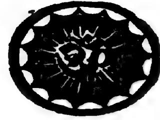
ब्र० सूरजमल जैन
मुनि वीरसागर जी महाराज का संघ

जयोदय महाकाव्य—



इस ग्रन्थ के रचयिता—

ब्रह्मचारी भूरामल जी शास्त्री



वाणीभूषण-महाकवि-ब्रह्मचारि-भूरामल-शास्त्रि-

विरचितं

जयोदय-महाकाव्यम्

प्रथमः सर्गः



श्रिया* श्रितं सन्मतिमात्मयुक्त्याऽखिलज्ञमीशानमपीति मुक्त्या ।
तनोमि नत्वा जिनपं सुभक्त्या जयोदयं स्वाभ्युदयाय शक्त्या ॥१॥
पुरापुराणेषु† धुरागुरूणां यमीश इष्टः समये पुरूणां ।
श्री हस्तिनागाश्रयणश्रियोभूर्जयोऽथ योऽपूर्वगुणोदयोऽभूत् ॥२॥
कथाप्यथामुष्य यदि श्रुताराचथा वृथासार्य ! सुधासुधारा ।
कामैकदेशच्चरिणी सुधासा कथा चतुर्वर्गनिसर्गवासा ॥३॥

---

* रुद्र-विष्णु-ब्रह्म-पक्षोऽप्येतद् वृत्तं प्रयुज्य व्याख्येयं ।

† पुरा यं किलाणेषु द्वादशांगरचनारूपशब्देषु धुरा आपुः स ईशो गणधरः श्रीगुरूणां पुरूणां समये सञ्जात इष्टः सोऽसावपूर्वगुणोदयः महादेवतुल्यगुणवानभूत् यतः हस्तिर्गणेशः नागः शेषस्तयोराश्रयणश्रियोभूर्महादेवोऽसौ तु हस्तिनागपुरपालक आसीदेव ।

तनोति पूते जगतीविलासात्स्मृता कथा याथ कथं तथा सा ।
स्वसेविनीमेव गिरं ममारात्पुनातु नातुच्छरसाधिकारात् ॥४॥
समुन्नतं कूर्मवदंघ्रिपद्म-द्वयं स मासाद्य शिवैक* सद्म ।
धरास्थिराऽभूत्सुतरामराजदेकः पुराहस्तिपुराधिराजः ॥५॥
पथा कथाचारपदार्थभावानुयोगभाजाप्युपलालिता वा ।
विद्यानवद्यापनवाल† सत्वं संप्राप्य वर्षेषु चतुर्दशत्वं ‡ ॥६॥
अरिव्रजप्राणहरो भुजंगः किलासिनामा नृपतेः सुचंग ।
स्म स्फूर्तिकीर्ती रसने बिभर्ति विभीषणः संगरलेकमूर्तिः ॥७॥
निःशेषकाष्ठांतरुदीर्णमाप प्रभावमेतस्य पुनः प्रतापः ।
रविः कवीन्द्रस्य गिरायमेष तस्यैव शेषः** कणसन्निवेशः ॥८॥
गुणास्तु पुण्यैकपुनीतमूर्तेः जगन्नगः संग्रथितः सुकीर्तेः ।
कन्दुत्वमिन्दुत्विऽनन्यचौरैरुपैति राज्ञो हिमसारगौरैः ॥६॥
जगत्यविश्रान्ततयातिवृष्टिः प्रतीपपत्नी नयनैकसृष्टिः ।
निरीतिभावैकमदं निरस्य प्रावर्ततामुष्य महीश्वरस्य ॥१०॥
नियोगिवन्द्योऽवनियोगिवन्द्यः सभास्वनिन्द्योऽपि विभास्वनिन्द्यः ।
अरीतिकर्त्तापि सुरीतिकर्त्तागसामभूमिः स तु भूमिभर्त्ता ॥११॥
अधीतिबोधाचरणप्रचारैश्चतुर्दशत्वं गमितात्युदारैः ।
विद्याश्चतुःषष्टिरतः स्वभा § वादमुष्य जाताः सकलाः कलाः वा॥१२

* आनन्दनं जलं च । † न, बालसत्वं तथा नवा, अलसत्वं वा । ‡ भरतादिक्षेत्रेषु सर्वत्राधीति बोधाभरणप्रचारप्रकारेण चतुः प्रकारत्वं यद्वा सम्वत्सरेषु चतुरुत्तरदशवर्षत्वं । ** अवशिष्टः । § एकस्य शोडषकलातः चतुर्णां चतुःषष्टिकलाः स्युरेव चतुरधिकदशविद्यावतश्च चतुःषष्टिः कलानां युक्तैव ।

सुरैरसौ तस्य यशःप्रशस्ति-समंकिता सोमशिला समस्ति ।
कलंकमेत्यंकदलं तदर्थ-विभावनायामिह योऽसमर्थः ॥१३॥
भवाद्भवान् भेदभवामचंगं भवः सगौरीं निजमर्द्धमंगं ।
चकार चादो जगदेव तेन गौरीकृतं किन्तु यशोमयेन ॥१४॥
शौर्यप्रशस्तौ लभते कनिष्ठां श्रीचक्रपाणेः सगतः प्रतिष्ठां ।
यस्यासतां निग्रहणे च निष्ठा मता सतां संग्रहणे घ निष्ठा ॥१५॥
व्यर्थं च नार्थाय समर्थनन्तु पूर्णो यतश्चार्थ्यभिलासतन्तु ।
स विश्वतोरोचनमृद्धदेशं कोपं दधौ *श्रीधरसन्निवेशं ॥१६॥
युधिष्ठिरो भीम इतीह मान्यः शुभैर्गुणैरर्जुन एष नान्यः ।
स्याद्वाच्य † ता वा नकुलस्य यस्य ख्यातश्च सद्भिः सहदेवशस्यः॥१७
अहो यदीयानकतानकेन रवेः सवेगं गमनं च तेन ।
सूतोऽपदोऽमुष्य रथाङ्गमेकं हयाः समापुर्युगता ‡ तिरेकं ॥१८॥
महीभृतामेव शिरस्सु सौस्थ्यं सदादधानो विपमेषु दौस्थ्यं ।
प्रजासु शम्भुः सविभूतिमत्वं बभार च श्रीमदहीनभृत्त्वं ॥१६॥
न वर्णलोपः प्रकृतेर्न भङ्गः कुतोऽपि न प्रत्ययवत्प्रसंगः ।
गत्र स्वतो वा गुणवृद्धिसिद्धिः प्राप्ता ॥यदीयापदरीति ऋद्धिं ॥२०॥
नटीमुदाऽमन्दपदामभेयं लासंरसासभ्यजनानुमेयं ।
प्रसिद्धवंशस्य गुणौघवश्यमुपैतु भूमण्डलमण्डनस्य ॥२१॥
समुल्वणं यस्य यशःशरीरं निमज्जनत्रासवशेनमीरं [] ।
गृहीतमेतन्नभसा गभस्ति-सोमच्छलात्कुम्भयुगं समस्ति ॥२२॥

---

* कुवेरः विश्वलोकनकोषनिर्माता चार्यश्च । † शब्दविषयता निन्दा च । ‡ वैषम्यं । ॥ सुवादि, विनाशश्च । [] समुद्रे ।

यस्य प्रसिद्धं करणानुयोगं समेत्य तद्दीव्यगुणप्रयोगं ।
बभूव तावन्नव* तानुयोगचतुष्टये हे सुदृढोपयोग ॥२३॥
यस्याप × वर्गप्रतिपत्तिमत्त्वं महीपतेः संलभते स्फुटत्वं ।
गतश्चतुर्वर्गबहिर्भवत्वं ÷ पुमान् समूहो न किलापसत्वं ॥२४॥
अहीनलम्बे भुजमञ्जुदण्डे विनिर्जिताखण्डलशुण्डिशुण्डे ।
परायणायां भुवि भूपतेः सः शुचेव शुक्लत्वमुवाह शेषः ॥२५॥
यन्नाभिजातो विधिराविभाति सदा विपादीकुसुमेष्वरातिः ।
हरेश्चरित्रं कृतकं सभीति तस्यानुकूलास्तु कुतः प्रणीतिः ॥२६॥
वृद्धिं गतत्वात् पलितोज्वलाद्यकीर्तिर्भुजंगस्य गृहं प्रसाद्य ।
हत्वाम्बरं नन्दनमेतिचार-महोजरायान्तु कुतो विचारः ॥२७॥
मद्दुर्हृदां देहत एव बाह्यमनिस्सरन्तीमसतीं निगाह्य ।
कीर्तिं सतः स्वैरविहारिणीन्ते सतीं प्रतीयन्त्वधिपाः प्रणीतेः ॥२८॥
भोगीन्द्रगेहे ननु नागकन्या यत्कीर्तिपूर्त्याहिसुरी च धन्या ।
स्वर्गे स्ववर्गे मनुते कविः स्वं भवद्गुणस्तोत्रमयं हि विश्वं ॥२९॥
करं स जग्राह भुवो नियोगात्कृपालुतायां मनसोनुयोगात् ।
दासीमिवासीमयशास्तथैनां विचारयामास च संहृतैनाः ॥३०॥
दिगम्बरत्वं न च नोपवासश्चिन्तापि चित्ते न कदाप्युवास ।
मुक्तो जनः संसारणात्सुभोगस्तस्याद्भुतोयं चरणा॥ नुयोगः ॥३१॥

---

* नवसंख्यावत्वं नवीनत्वं वा ।
× पवगस्याज्ञत्वम् उत्तारलोकज्ञत्वं च ।
÷ पवर्गभृन्वर्णसमुदायः साशङ्को मनुष्यश्च ।
॥ पादसम्पर्कः सदाचारप्रतिपादकग्रन्थश्च ।

प्रवर्त्तते किञ्च मतिर्ममेयं नभस्यभूद् व्यासतयाप्यमेयं ।
तेजस्सतो जन्मवतोग्रवर्ति घनायितं तद्रवितामियर्ति ॥३२॥
न्यशेशयत्यज्जलधींस्तु सप्त तस्यात्र तेजस्तरणिस्सुदृप्तः ।
व्यशेषयन्वाद्रुतमीर्षमार्य १ तकान् शतत्वेन तथारिनार्यः ॥३३॥
निपीय मातङ्गघटास्रगोघं स्पृशन्त्यरीणां तदुरोप्यमोघं ।
वामा* ङ्गनामात्ममतं निवेद्य यस्यासिपुत्री समुदाप्यतेऽद्य ॥३४॥
सहस्रशोऽन्येऽपि नृपास्तु सन्तु राजन्वतीभूर्भवतास्त्वियन्तु ।
समन्ततोधिष्ण्यकुलाकुला वा ज्योतिष्मती रात्रिरुतेन्दुभावात् ॥३५
त्रि † वर्गनिष्पन्नतयाखिलार्थानमुष्य मेधालभतामिहार्थात् ।
एकाप्यनेकानि कुलान्यरीणां, शक्तिः कुतोग्रस्तु महोग्रवीणा ॥३६
दयालुतां चाप्यपदूषणत्वं कुन्दन्तु शीर्षे दरिणां हितत्वं ।
मत्वारिरप्यस्य कथोपगामी दम्भं ॥ परन्त्वत्र निभालयानि ॥३७
भावैकनाथो जगतां सुभासः सम्प्राप भानुश्रितधामतां सः ।
भूरञ्जनो यस्य गुणश्च देव इवास्य चारिर्ननु भेद × एव ॥३८॥
नदन्ति वाजिप्रमुखाः परं च येनात्मगोत्रं समलंकृतं च ।
धात्रीफलं केवलमश्नुवानः कौपीनवित्तोऽरिरिवेशितानः ॥३६॥
त्रिवर्गसम्पत्तिमतोऽत्रमन्तु मदत्तराणां कलनाः क्व सन्तु ।
नवेतिवार्थान्निधयो भवन्तु तस्येति वार्तास्तु लयं व्रजन्तु ॥४०

---

* वाममार्गगामितां, भयङ्करताञ्च ।
† ३ × ३ = ६ तस्मान्निष्पन्नतया धर्मार्थकामाविरोधाच्च ।
॥ दकारमिति भकारं कृत्वा भयालुतामित्यादि ।
× भकारस्थाने वकारः करणीयः यथा दावैकनाथ इत्यादि ।

स धीवरो वा *वृपलो मतश्च रतः परस्योपकृतावतश्च ।
तदङ्गजाप्य † न्वयनीन्यधीना शक्तिः प्रतीपे व्यभिचारलीना ॥४१
अनंगरम्योऽपि सदंगभावादभूत्समु ‡ द्रोप्यजडस्वभावात् ।
न गोत्रभित्किन्तु सदा पवि ¶ त्रस्वचेष्टितैर्नेत्यमसौ विचित्रः ॥४२
महावि§ काशस्थितिमद्विधानः सदा**नवारित्वमहोदधानः ।
सुर ‡ भ्य साधारणशक्तितानः शत्रुश्च शश्वत् कृतिनः समानः॥४३
युगादिभर्त्तुः सदसां सदस्य इत्यस्मदानन्दगिरां समस्यः ।
हंसः स्ववंशोरुसरोवरस्य श्रीमानभूच्छ्री सुहृदां वयस्यः ॥४४॥
इहाङ्गसम्भावितसौरभाष्ठवस्य श्रीवामरूपस्य वपुश्च यस्य ।
अनङ्गतामेव गता समस्तु तनुः स्मरस्यापि हि पश्यतस्तु ॥४५॥
घृणांघ्रिणाऽधारि सुधारिणश्चाङ्गजेन पद्मे जडजेऽपि पश्चात् ।
एतच्छयच्छायलवोऽप्यहेतुर्निरुच्यते सम्प्रति पल्लवे तु ॥४६
वक्षोयदक्षोभगुणैकबन्धोः पद्मार्थसद्माथ सुपुण्यसिन्धोः ।
आसीत्तदाराममललाममश्व महोतदन्तः स्फुरदम्बुदश्च ॥४७
वर्णेषु ×पञ्चत्वमपश्यतस्तु कुतः कदाचिच्च ॥ पल्लत्वमस्तु ।
सज्जं ÷ घभावं भजतो नग + त्वं जगौ परोमुष्य पुनस्तु सत्वं ॥४८

---

* शूद्रः धर्मधारकश्च । † कुलपरम्परा । ‡ मुद्रासहितो वारिधिश्च । ¶ वज्रधारक इन्द्रः परिशुद्धश्च । § प्रसन्नतां पक्षे अविश्च काशश्च तयोः स्थितिमद्विधानं यस्य वनवासत्वात् । ** इन्द्रत्वं दानशीलत्वं च पक्षे सर्वदा नवीनशत्रुतां । ‡ यशोविशिष्टापूर्वशक्तिः पक्षे सुलभे स्वल्पशक्तिः । × ब्राह्मणादिषु नाशं, अक्षरेषु पञ्चमत्वं वा । ॥ चाञ्चल्यं चकारपरत्वं वा । ÷ समीचीनजयावत्वं जघकारत्वं वा । + गकाराभावत्वं पर्वतत्वं वा ।

छलेन लोम्नां कलयन् शलाकाः यूनोगुणानां गणनाय वाकाः ।
अपारयन्नेदनयान्वितत्वाच्चिन्नेपता मूर्ध्नि विधिर्महत्वात् ॥४९
किलारिनारीनिकरस्य नूनं वैधव्यदानादयशोऽप्यनूनं ।
तदस्य यूनो भुवि बालभावं प्रकाशयन्मूर्ध्नि बभूव तावत् ॥५०
पदाग्रमाप्त्वा नखलत्वधारी भवन्विधुः साधुदशाधिकारी ।
ततस्तदग्राक्सुकृतैकजातिः सपद्मरागप्रवरः स्म भाति ॥५१॥
रमासमाजे मदनस्य चारौ स्मयस्य चारौ विनयस्य मारौ ।
कुले समुद्दीपक इत्यनूमा कचच्छलात्कज्जलधूमभूमा ॥५२
आदर्शमङ्गुष्ठनखं नृपस्य प्रपश्य गत्वा पदमुत्तमस्य ।
मुखं बभारानुसुखं च भूमावशेषभूमानवमानभूमा ॥५३॥
स्वर्गात्सुरद्रोः सलिलान्नलस्य लताप्रतानस्य भुवोऽपकृष्य ।
सारं किलारं कृत एष हस्तः रेखात्रयेणेत्यथवा प्रशस्तः ॥५४॥
यतश्च पद्मोदय❀ सन्निधानः सदासुलेखा † न्वयसेव्यमानः ।
श्रीपञ्च + शाखः सुमनः ÷ समूहेश्वरस्य कल्पद्रुरिहास्मदूहे ॥५५॥
सर्वैन ॥ तेयः पुरुषोत्तमेऽतिसक्तो न भोगाधिपतिर्न चेति ।
श्रीवीरता × मप्यभजद्यथावद्विपत्र ❁ भावं जगतोऽनुधावन् ॥५६॥

❀ पद्मस्योदयः पद्मायां वोदयस्तस्य निधानं यत्र ।
† करपक्षे लेखा रेखाः कल्पद्रुपक्षे लेखाः सुराः ।
+ हस्तः कल्पवृक्षश्च ।
÷ सज्जनशिरोमणेः देवेंद्रश्च ।
॥ स जयो यो वै किल नते पुरुषोत्तमेऽसक्तः स च वैनतेयो गरुडो योऽसौ पुरुषोत्तमे कृष्णेऽनुरक्तः ।
× श्रीवीरतां, श्रीनिर्लतां च ।
❁ विपदस्त्राणत्वं, पत्राभावत्वं च ।

* क्षत्रणे स्मोद्यतते मुदासः सुरक्षणेभ्यः सुतरामुदासः ।
बबन्धमाऽमुष्य पदं रुषेव कीर्तिः श्रियाऽवाप दिगन्तमेव ॥५७॥
बानारदाह्लादि सदाननन्तु व्यासेन संश्लिष्टमुरः परन्तु ।
बभूव नासा शुककल्पना सा करं रतीशस्य परा शराशा ॥५८॥
भोगीन्द्रदीर्घापि भुजाभिजातिररिश्रियामेव रुजां प्रजातिः ।
यातिर्यगुक्तार्गल तातिरस्तु वक्षःश्रियोऽमुष्य च वास्तु वस्तु ॥५९॥
मुदामुकस्येक्षणलक्षणाय नीलोत्पलं सैष विधिर्विधाय ।
रजांसि चिक्षेप निधाय पंकेऽप्यतुल्यमूल्यं पुनराशुशंके ॥६०॥
तपस्यताब्जेनपयस्यनूनममुष्य नाप्ता मुखतापि यूनः ।
× किमन्त्यजस्यादि + मवर्णतासौ मौनं नु यस्य द्विजराज ॥ राशौ॥६१
भालेन सार्द्धं लसता सदास्यमेतस्य तस्यैव समेत्य दास्यं ।
सिन्धोः शिशुः पश्यतु पूर्णिमास्यं चन्द्रोऽधिगन्तुं मुहुरेष भाष्यं ॥६२
कंठेन संखन्यगुणो व्यलोपि वरोद्विजाराध्यतयाऽधरोऽपि ।
कर्णौ सवर्णौ प्रतिदेशमेष बभूव भूपो मतिसन्निवेशः ॥६३॥
सद्माप पद्मा हृदि नाभिकापि तन्मंगलाप्लावनलापिवापी ।
विहारकर्मोपवनन्तु दूर्वाः पर्यन्ततो लोममिषाददुर्वा ॥६४॥
मनो मनो जन्मनिदेशि भूपेऽमुष्मिन् श्रियापावनयानुरूपे ।
श्रुतिं गतेऽकम्पनभूपपुत्री उवाह सा रूपसुधासवित्री ॥६५॥

* पृथ्वीपालने दुर्लक्षणे च ।
× अन्तस्थितजकारस्य चाण्डालस्य च ।
+ आदौ मकारवत्त्वं ब्राह्मणत्वं च ।
॥ चन्द्रस्य वृत्तौ, द्विजानां प्रधानसमूहे च

जयस्तवास्तामिति मागधेषु पठत्सुबालापितुरुत्सवेषु ।
आकर्ण्य वर्णावनुसज्जकर्णा सदस्यभूत्तच्छ्रवणेऽवतीर्णा ॥६६॥

स्त्रियां क्रियासौ तु पितुः प्रसादादाद्द्रिया भिया चैव जनापवादात् ।
ततोऽत्र सन्देशपदे प्रलीना बभूव तस्मै न पुनः कुलीना ॥६७
श्रीपादपद्मद्वितयं जिनानां तस्थौ निजीये हृदि सन्दधाना ।
देवेषु यच्छ्रद्दधतां नभस्या भवन्ति सद्यः फलिता समस्याः ॥६८
समगंनावर्गशिरोऽवतंसः गुणो गुणात्संगुणितप्रशंसः ।
सुलोचनाया अघमोचनायाः कृतः श्रुतप्रान्तगतः सभायाः ॥६९
तमेव लब्ध्वावसरं हरारिः शरीरशोभाजयहेतुनाऽरिः ।
जयं विनिर्जेतुमियेष तातं तयात्मशक्त्या खलु मूर्तयातं ॥७०
गुणेन तस्या मृदुनानिबद्धः स योशनैः सन्ततिभित्समृद्धः ।
अलिर्बलाद्दारुविदारकोऽपि किमिष्यते कुड्मलबन्धलोपी ॥७१
न चातुरोप्येष नरस्तदर्थमकम्पनं याचितवान् समर्थः ।
किमन्यकैर्जीवितमेव यातु न याचितं मानि उपैति जातु ॥७२
यदाज्ञयार्द्धाङ्गितया समेति श्रियां हरो वैरपरोऽप्यथेति ।
स्मरं तनुच्छायतयात्ममित्रमयं क्षमो लंघितुमस्तु कुत्र ॥७३
गुणावदाता सु* वयः स्वरूपाऽस्यराज हंसीकम + लानुरूपा ।
सा कौ + मुदस्तोममयं विशेष-रसायितं मानसमाविवेश ॥७४॥

* नवयौवनवती पद्मिरूपा च ।

\+ लक्ष्मीरूपिणी कमलसम्वेदिनी च ।

\+ कौ, मुदस्तोममयं प्रसन्नकुमुदानां समूहेन युक्तं च

चिरोच्चितासिव्यसनापदे × तुक् सोमस्य जायुं निजपाणये तु ।
सुलोचनाया मृदुशीतहस्त-ग्रहं स्मरादिष्टमथाह शस्तः ॥७५

भालानलप्लुष्टमुमाधवस्य स्वात्मानमुज्जीवयतीति शस्यः ।
प्रसूनवाणः सकुतो न वायुर्वेदीत्रिवेदीतिविकल्पनाशुः ॥७६

कदाचिदाराममसुष्य हृष्यत्तमं तमानन्ददृगेकदृश्यः ।
वसन्तवच्छ्रीसुमनोऽभिरामस्तपस्विराट् कश्चिदुपाजगाम ॥७७

तपोधनं भानुमिवानुमातुमुत्कासमुत्काभविधाविधातुः ।
बभूव दृङ्मालिककुक्कुटस्य वाचा समाचारविदोद्भटस्य ॥७८

अथाभवत्तद्दिशि सम्मुखीन उत्थाय सूत्थानभृतामहीनः ।
गतोऽप्यथो दृष्टिपथं प्रभावस्तस्य प्रशस्यैकविचित्रभावः ॥७९

पतिं यतीनां सुमतिं प्रतीच्य तदा तदातिथ्यविधानदीक्षम् ।
मुदोद्गमत्कामशरप्रतानमञ्जींचकारोपवनप्रधानः ॥८०॥

फुल्लत्यसङ्गाधिपतिं मुनीनमवेक्षमाणोवकुलः कुलीनः ।
विनैव हालाकुरलान्वधूनां व्रताश्रितिं वागतवानदूनां ॥८१॥

श्रीचम्पका एनमनेनसन्तु तिरः शिरश्चालनतः स्तुवन्तु ।
कोषान्तरुत्थालिकदम्भवन्तः पापानि वाऽपायभियोद्गिरन्तः ॥८२

आराम आरात्परिणामधाम भूपन्नकच्छन्नदृशा ललामः ।
विलोकयँल्लोकपतिं रजांसि मुञ्चत्यदश्चानुतरँस्तरांसि ॥८३॥

अशोक आलोक्य मुनिं ह्यशोकं प्रशान्तचित्तो विकसन्नरोकम् ।
रागेण राजीवदृशः समेतं पादप्रहारं सकुतः सहेत ॥८४॥

× सुतः ।

यस्यान्तरङ्गेऽद्भुतबोधदीपः पापप्रतीपं तमुपेत्यनीपः ।
स्वयं हितावज्जडताभ्यतीत उपैति पुष्टिं सुमनः प्रतीतः ॥८५॥
परोपकारैकविचारहारात्का* रामिवाराध्यगुणाधिकारां ।
अलब्धकाराम्रतरुर्विशेषं सकौतुको + ऽयं परपुष्ट × वेशम् ॥८६॥
अमीः शमीशानकृपां भजन्ति जनुर्द्धयं नूनं निजमामनन्ति ।
पादोदकं पक्षिगणाः पिबन्ति वेदध्वनिं नित्यमनूच्चरन्ति ॥८७॥
गिरेत्यमृतसारिण्याश्रीवनं चानुकुर्वतः ।
बभूव भूपतेः क्षेत्रं॥ सकलं चांकुराङ्कितं ॥८८॥
कण्टकित इवाकृष्टश्चतुर्दिक्षु क्षिपन् शनैरचलत् ।
च्छायाच्छादितसरणौ गुणेन विपिनश्रियः श्रीमान् ॥८९॥
आरामरामणीयकमनुवदताऽदर्शि हर्षिताङ्गेन ।
सहसा सहसाधुजनैः श्रीगुरुगुणितं च तेन सद्देशं ॥९०॥
प्रागेवाङ्गलतायाः पल्लविता तन्मनोरथलता तु ।
आदर्शदर्शने नृपवरस्य वाग्वल्लरी च पल्लविता ॥९१॥
कुसुमसत्कुलतः पदपङ्कजद्वयममुष्य समेत्य शिलीमुखाः ।
स्वकृतदोषविशुद्धिविधित्सया समुपभान्ति लवा अथवागसः ॥९२
शिखरतस्तु पतन्ति बृहत्तरोः पदसरोरुहयोस्त्रिजगद्गुरोः ।
सुमचयारुचया च शिवश्रिया इव दृशां नभसो विभवोः श्रियाः॥९३॥
यतिपतेरचलादर + दामरेः सुरुचिरा विचरन्ति चराचरे ।
अगणिताश्च गुणा गणनीयतामनुभवन्ति भवन्ति भवान्तकाः ॥९४

---

* यतेः स्तुतिं । + विनोदयुक्तः सकुसुमश्च । × परोपकार-करं कोकिलयुक्तं च । ॥ शरीरं । + भयानि ।

भुवि* धुतोग्रविधिर्गुणिवृद्धिमान् सपदि तद्धि†तमेव कृतं‡ भजन् ।
यतिपतिः कथितो गुणिताव्हयः सततमुक्ति**विदामिति पूज्यपात्।।६५
सपदि भास्कर एव विशेषतो भवति भव्यपयोरुहवल्लभः ।
झगितिकौमुदमेव विकाशयन्नमृतगुत्वमथोत्कलयन् मुनिः ।।६६।।
अथ+धरा भवमाशु रसातलं× यतिवरेण पुनः सुमन॥ः स्थलं ।
परमिहोद्धरता तपसोचितं ननु जगत्तिलकेन विराजितं ।।६७।।
भुवि महागुणमार्गणशालिना सुविधधर्मधरेण च साधुना ।
अभयमङ्गिजनाय नियच्छता यदपि मोक्षपरस्वतया स्थितं ।।६८।।
निजवतंसपदे विनियोज्य तन्मृदु यदीयपदाम्बुरुहद्वयं ।
सुपरितोपमिताः पुनरात्मनोऽमरगणाश्च वदन्ति महोदयं ।।६९।।
अथ परीत्य पुनस्त्रिरतः स्थितः समुचितो नवनीतविनीतकः ।
मुकुलितात्मकराम्बुरुहद्वयं पुरत एव स साधुसुधारुचः ।।१००।।
श्यामाशयं परित्यज्य राजा हर्षितमानसः ।
संगत्य जगतां मित्रं शुक्लं पक्षमिहासवान् ।।१०१।।
वर्द्धिष्णुरधुनानन्दवारिधिस्तस्य तावता ।
इत्थमाह्लादकारिण्यो गावः स्म प्रसरन्ति ताः युग्मं ।।१०२।।

---

* धातुतोऽग्रे गुणवृद्धिकारकविधिर्व्याकरणशास्त्रे पक्षे प्रणष्ठ-पापकर्मा क्षमादिगुणोदयवान् च ।

† प्रसिद्धं हितं, तद्धितप्रकरणं च ।

‡ सम्पादितं कृदन्तं च ।

** सततं उक्तिविदां वैयाकरणानां मुमुक्षूणां च ।

+ शरीरं भूभागश्च ।

× जिह्वामूलं प्रातालं च ।

॥ अन्तरङ्गं स्वर्गश्च ।

कलशोत्पत्तितादात्म्यमितोहं तव दर्शनात् ।
आगस्त्यक्तोऽस्मि संसारसागरश्चुलकायते ॥१०३॥
ममात्मगेहमेतत्ते पवित्रैः पादपांशुभिः ।
मनोरमत्वमायाति जगत्पूतानिलिम्पितं ॥१०४॥
हे सज्जनपतेश्चन्द्रवत्प्रसादनिधेऽखिलः ।
पादसंपर्कतो यस्य लोकोऽयं निर्मलायते ॥१०५॥
महतामपि भोभूमौ दुर्लभं यस्य दर्शनं ।
भाग्योदयाच्चकास्तीति स पाणौ मे महामणिः ॥१०६॥
धन्याः परिग्रहाद्यूयं विरक्ताः परितोग्रहात् ।
नित्यमत्रावसीदन्ति मादृशा अबलाकुलाः ॥१०७॥
हतकाम ! महादान ! नयदासं सदायकं ।
सत्यधर्ममयावाम मत्तमात्र त्तमात्तकः ॥१०८॥
कर्त्तव्यमनकास्माकं कथयाथ मुनेऽनकं ।
किमस्ति व्यसनप्राये किन्न धाम्नि विशामये ॥१०९॥
ग्रन्थारम्भमये गेहे कं लोकं हेमहेङ्गित !
शांतिर्याति तथाप्येनं विवेकस्तु कलोऽतति ॥११०॥
समुत्सवकरस्यास्याभ्युदयेन रवेरिव ।
श्रीमतो मुनिनाथस्याप्युद्भिन्ना मुखमुद्रणा ॥१११॥
भूपालबाल किन्नोते मृदुपल्लवशालिनः ।
कान्तालसन्निधानस्य फलतात् सुमनस्कता ॥११२॥
जन्मश्रीगुणसाधनं स्वयमवन् सन्दुःखदैन्याद्बहिः,
यत्नेनैष विधुप्रसिद्धयशसे पापापकृत्सत्वपः ।

मञ्जूपासकसङ्गतं नियमनं शास्ति स्म पृथ्वीभृते,
तेजःपुञ्जमयो यथागममथाहिंसाधिपः श्रीमते ।११३। षडरचक्रबन्धः
एतद्वृत्तस्य प्रत्यराग्राक्षरैः षष्ठाक्षरैश्च क्रमेणजय—
महिपतेः साधु सदुपास्तिरितिसर्गविषयनिर्देशः ॥
श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियंघृतवरीदेवी च यं धी च यं ।
तेनास्मिन्नुदिते जयोदयनयप्रोद्धारसाराश्रितः,
नानानव्यनिवेदनातिशयवान् सर्गोऽयमादिर्गतः ॥११४॥

इति श्री वाणीभूषण - महाकवि - ब्रह्मचारि भूरामलशास्त्रि - विरचिते
सुलोचनास्वयम्बरापरनामजयोदयमहाकाव्ये जयकुमारस्य
मुनिवन्दनावर्णनो नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयः सर्गः

संहिताय मनुयन् दिने दिने संहिताय जगतो जिनेशिने ।
संहिताञ्जलिरहं किलाधुना संहितार्थमनुवच्मि गेहिनां ॥१॥
भाति लब्धविषयव्यवस्थितिर्धीमतां लसतु लभ्यनिष्ठतिः ।
तद् द्वयेष्टपरिपूर्णास्थितिः सञ्जयेत्तु महतामहोमितिः ॥२॥
आत्मने हितमुशन्ति निश्चयं व्यावहारिकमुताहितं नयं ।
विद्धितं पुनरदः पुरःसरं धान्यमस्ति न विना तृणोत्करं ॥३॥
नीतिरैहिकसुखाप्तये नृणामयेमार्पशीतिरुतकर्मणे घृणा ।
लोकनिर्गतसुखाविनाऽगदं दुद्रुखुर्जनेउपैति कोमुदं ॥४॥
तत्वभृद् व्यवहृतिश्च शर्मणे पूतिभेदनमिवागचर्मणे ।
तावदूषरटके किलाफले का प्रसक्तिरुदता निरर्गले ॥५॥
लोकरीतिरितिनीतिरङ्कितार्पप्रणीतिरथ निर्णयाश्रिता ।
एतयोः खलु परस्परेक्षणं सम्भवेत्सुपरिणामलक्षणं ॥६॥
सद्भिरैहिकसुखोचितं नयाल्लौकिकाचरणमुक्तमन्वयात् ।
प्राप्तमेतदनुयातु नात्र कः पौत्रिकाङ्गुलियुगेव बालकः ॥७॥
सन्निवेद्य च कुलङ्करैः कुलान्येतदाचरणमिङ्गतं बलात् ।
आचरेत्स्वकुलसक्तिमानियद्धर्म सद्भिरुपतिष्ठितं हि यत् ॥८॥
इङ्गितं दुरभिमानसन्ततेस्तत्कदाचरणमेव मन्यते ।
किन्तु काकगतमप्युराश्रयत्यत्र हंसवदकुञ्चिताशयः ॥९॥

आत्रिकस्थितिमती रमारती मुक्तिरुत्तरसुखात्मिका धृतिः।
काकचक्षुरिव याति तद्द्वयं पौरुषं भवति तच्चतुष्टयं ॥१०॥
सम्मता हि महतां महान्वयाः संस्मरन्तु नियतिं दृढाशयाः।
आत्रिकेष्टिनिरताः पुनर्नवा नान्नतोहि परिपोषणं गवां ॥११॥
सन्ति गेहिषु च सज्जना अहा भोगसंसृतिशरीरनिष्पृहाः।
तत्ववर्त्मनिरता यतः सुचित्प्रस्तरेषु मणयोऽपि हि क्वचित् ॥१२
कर्मयत्सतुपमेति सृष्टिकः शोधयन्ननुकरोति दृष्टिकः।
बालकः परकरोपलेखकः संलिखत्यथ कुमार एककः ॥१३॥
स्वीकृते परमसारवच्चया जायते पुनरसारतारयात्।
तक्रतो हि नवनीतमाप्यतेऽतः पुनर्घृतकृते विधाप्यते ॥१४॥
नैव लोकविपरीतमञ्चितुं शुद्धमप्यनुमतिर्गृहीशितुः।
नामसत्यगिह वाऽर्हतामिति मङ्गलेऽनुगतमस्त्यवेर्गतिः ॥१५
शक्यमेव सकलैर्विधीयते कोनु नागमणिमाप्तुमुत्पतेत्।
कूपके चरसकोऽप्युपेद्यते पादुकातु पतिता स्थितिः च्युतेः ॥१६॥
लोकवर्त्मनि सकावशस्यवन्निष्ठितेऽरमहितेष्ठिदस्यवः।
स्वोचितं प्रतिचरन्तु सम्पदं सर्वमेव सकलस्य नौषधं ॥१७॥
सम्विरोधिषु जनः परस्परं व्यावहारिकवचस्सु सञ्चरन्।
तत्समुद्धरतु यद्यदोचितं कोनु नाश्रयति वा स्वतो हितं ॥१८॥
यातु कामधनधर्मकमसु सत्सु सम्प्रति मिथोऽपशर्मसु।
तानि तावदनुकूलयन्वलात्कर्दमे हि गृहिणोऽखिलाश्चलाः ॥१९
बाष्टवद्वृषमपेत्य संहता धासवद्विषयदासतां गताः।
पाशवेद्धनविलासतत्परा गेहिनो हि सतृणाशिनो नराः ॥२०॥

गेहमेकमिह भुक्तिभाजनं पुत्र तत्र धनमेव साधनम् ।
तच्च विश्वजनसौहृदाद् गृहीति त्रिवर्गपरिणामसंग्रही ॥२१॥
कर्मनिर्हरणकारणोद्यमः पौरुषोऽर्थ इति कथ्यतेऽन्तिमः ।
सत्सु सत्स्वकृतमात्रसातन श्रावकेषु खलु पापहापनं ॥२२॥
प्रातरस्तु समये विशेषतः स्वस्थिताद्यमनसः पुनः सतः ।
देवपूजनमनर्थसूदनं प्रायशो सुखमिवाप्यते दिनं ॥२३॥
मङ्गलन्तु परमेष्ठिषूर्जितं दिव्यदेहिषु नियोगपूजितं ।
पार्थिवेषु पृथुताश्रितं पदं प्रत्ययं चरति देव इत्यदः ॥२४॥
साम्प्रतं प्रणदितानधानकं देवशब्दमिममुत्तमार्थकम् ।
स्वीकरोति समयः पुनः सतामग्निरध्वरभुवीव देवता ॥२५॥
कुत्सितेषु सुगतादिषु क्रमाद्धा कपोलकलितेषु च भ्रमात् ।
पद्मयोनिप्रभृतिष्वनेकशः देवतां परिपठन्ति सैनसः ॥२६॥
सर्वतः प्रथममिष्टिरर्हतः देवतास्वपि च देवतायतः ।
मङ्गलोत्तमशरण्यतां श्रितः देहिनां तदितरोऽस्तु को हितः ॥२७॥
यत्पदाम्बुजरजोरुजो हरत्याप्लवाम्बु तु पुनातु सच्छिरः ।
साम्प्रतं धनिविमोचितं पटाद्यन्यतः श्रिणोति भूषणच्छटाम् ॥२८
भूरिशो भवतु भव्यचेतसां स्वस्वभाववशतः समिष्टिवाक् ।
मूलसूत्रमनुरुद्धय नृत्यतः प्रक्रियावतरणं न दोषभाक् ॥२९
देवमप्रकटमप्यथात्मनः यातु तत्प्रतिमया गृही पुनः ।
सत्यवस्तुपरिबोधने विशोभान्ति क्रीडनकतोऽश्वतः शिशोः ॥३०
सम्भवेज्जिनवरप्रतिष्ठितिः शांतये भवभृतां सतामिति ।
शालिको हि परवारभीमुपं सन्निधाप्स्यति कुटपरूपं ॥३१॥

बिम्बके जिनवरस्य निर्घृणा सूक्तिभिर्भवति तद्गुणार्पणा ।
मापकादिमरणादिकृद्भवेत्किन्न मन्त्रितमितः समाहवे ॥३२

तत्र तत्र कलितं जिनार्चनं व्याहृतं भवति तत्तदार्चनम् ।
वार्षिकं जलमपीह निर्मलं कथ्यते किल जनैः सरोजलं ॥३३॥

योजनं हि जिननामतः पुनः स्वोक्तकर्मणि समस्तु वस्तुनः ।
पूजनं क्वचिदुदारसम्मति स्वस्तिकं सपदि पूज्यतामिति ॥३४॥

भूमिकासु जिननाम सूच्चरँस्तत्तदिष्टमधिदैवतं स्मरन् ।
कार्यसिद्धिमुपयात्वसौ गृही नो सदा चरणतो व्रजन्बहिः ॥३५

यद्वदेव तपनातपोऽभकृत् श्रीजिनानुशय इष्टसिद्धिभृत् ।
नूनमप्रकटरूपतो मतँस्तत्त्रिसायमनुजायतामतः ॥३६॥

इष्टसिद्धिमभिवाञ्छतोऽर्हतां नामतोऽपि भुवि विघ्ननिघ्नता ।
व्येति काककलितां किलापदं तीरमित्यरमतीरयन्पदं ॥३७॥

श्रीजिन तु मनसा सदोभयेत्तश्च पर्वणि विशेषतोऽर्चयेत् ।
गेहिने हि जगतोऽनपापिनी भक्तिरेव खलु मुक्तिदायिनी ॥३८॥

आत्रिकेष्टहतिहापनोद्यतः साधयेत्स्वकुलदैवताद्यतः ।
हेलया हि बलवीर्यमेदुरः साधयत्यनरगोचरं सुरः ॥३९॥

शिष्टमाचरणमाश्रयेदनावश्यकं य खलु तत्र तत्र ना ।
श्रीपतिं जिनमिवार्चितुं पुरा स्नान्ति दीव्य तनवोऽपि ते सुराः ।४०

सम्भवत्यपि समन्ततोऽदरीद्र्यात्मरत्नपरिवारितो हरिः । (?)
श्रीमतीं भगवतीं सरस्वतीं स्वागलङ्कृतिविधौ वपुष्मतीं ॥
राधयेन्मतिसमाश्रये सुधीः शाणतो हि कृतकार्य आयुधी ॥४१

सम्विचार्य खलु शिष्यपात्रतां शास्तुरेवमनुयोगमात्रतां ।
शास्त्रमर्थयतु सम्पदास्पदं यत्प्रसङ्गजनितार्थदं पदम् ॥४२॥
शस्तमस्तु तदुता प्रशस्तकं व्याकरोति विषयं सदा स्वकं ।
पारवश्यकविचारवेशिनी संहिता हि सकलाङ्गदेशिनी ॥४३॥
यत्तरामवहरन्न शस्तकं शस्तमेव मनुते किलानकं ।
सूक्तमेतदुरुपयुक्ततां गतं शर्मणे सपदि सर्वसम्मतं ॥४४॥
सम्पठेत् प्रथमतोह्युपासकाधीतिगीतिमुचितात्मरीतिकां ।
अज्ञता हि जगतो विशोधने स्यादनात्मसदनाववोधने ॥४५॥
भूतले तिलकतामुताश्वतां श्रीमतां चरितमर्चतः सतां ।
दुःखमुज्वलति जायते सुखं दर्पणे सदसदीयते मुखं ॥४६॥
सुस्थितिं समयरीतिमात्मनः सङ्गतिं परिणतिं तथा जनः ।
दृष्टुमाशुकरणश्रुतें श्रयेत्स्वर्णकं हि निकषे परीक्ष्यते ॥४७॥
सञ्चरेत्सुचरणानुयोगतस्तावदात्महितभावना रतः ।
नित्यशोऽप्रतिनिवृत्य सत्पथः कीर्त्यते पथि गतो यतोऽन्यथः ॥४८
किं किमस्ति जगति प्रसिद्धमत् कस्य सम्पदथ कीदृशी विपत् ।
द्रव्यनामसमये प्रपश्यतान्नोवितर्कविषय हि वस्तुता ॥४६॥
एतकैर्निजहितेऽनुयोजनमस्ति मुक्तिसुभिदात्मनः पुनः ।
हस्तयन्त्रकशिक्षाख्यसीवनं वाससो हि भुवि जायतेऽवनं ॥५०
विश्वविश्वशनमात्मवाञ्छितिः शङ्किनः स्विदभितः कुतो गतिः ।
योग्यतामनुचरेन्महामतिः कष्टकृत्भवति सर्वतो ह्यति ॥५१॥
उद्धरन्नपि पदानि सन्मनः शब्दशास्त्रमनुतोपयज्जनः ।
श्रीप्रमाणपदवी व्रजेन्मुदा वाग्विशुद्धरुदितार्थशुद्धिदा ॥५२

दूषणानि वचनस्य शोधयेत्तच्च भूषणतया भुवो वहेत् ।
च्छन्दसं समवलोक्य धीमतां प्रीतये भवति मञ्जुवाक्यता ।।५३
यातु वृद्धिसमयात्क्विलोपमा पन्हुतिप्रभृतिकं च बुद्धिमान् ।
भूरशो ह्यभिनयानुरोधिनी वागलङ्करणतोऽभिवोधिनी ।।५४
व्याकृतिं शुचिमलङ्कृतिं पुनश्छन्दसां ततिमिति त्रयंजनः ।
साभिधेयमभिधानमन्वयप्रायमाश्रयतु तद्धि वाङ्मयः ।।५५।।
तानवं श्रुतिमुपैति मानवः स्यान्न वर्त्मनि मुदोऽघसम्भकः ।
प्रीतमस्तु च सहायिनां मन आद्यमङ्गमिह सौख्यसाधनं ।।५६।।
कामतन्त्रमतियत्नतः पठेद्यद्युपस्थितिरुपादि × मन्मठे ।
तत्र तत्र हतिरन्यथा पुनः शिक्षते च हयराडुदश्वनं ।।५७।।
श्रीनिमित्तनिगमं प्रपश्यतः भाविवस्तु तदपेक्षते यतः ।
स्नागशक्यमपि शक्यते ततः संगडेन हि शिलासृतिः स्वतः ।।५८।।
अर्थशास्त्रमवलोकयन्नृराट् कौशलं समनुभावयेत्तरां ।
श्रीप्रजासु पदवीं व्रजेत्परां व्यर्थता हि मरणाद्भयङ्करा ।।५९।।
यातुताललयमूर्च्छनादिभिर्जैनकीर्तनकलाप्रसादिभिः ।
गीतिरीतिमपि तच्छ्रुतात्पुनर्मञ्जुवाक्त्वमिह विश्वमोहनं ।।६०।।
कृच्छ्रसाध्यमिव सुष्ठुकार्यकृत् मन्त्रतन्त्रमपि चेत्स्वतन्त्रहृत् ।
तन्निवेदि पुरतः परिश्रमात्सा (रा)धयेदघविराधये पुमान् ।।६१।।
वास्तुशास्त्रमवलोकयेन्नरो नास्तु येन निलयो व्यथाकरः ।
अन्यदप्युचितमीक्षमाणकः सम्भजेच्छ्रियमभिप्रमाणकः ।।६२।।

× गृहस्थाश्रमे ।

आर्षवाच्यपि तु दुःश्रुतीरिमाः किन्न पश्यतु गृहे नियुक्तिमान् ।
आममन्नमतिमात्रयाशितं चास्तु भस्मकरुजे परं हितं ॥६३॥
नानुयोगसमयेष्विवादरः स्यान्निमित्तकमुखेषु भो नर ।
वाक्तया समुदितेषु चार्हतां मूर्धवत् क्व पदयोः सदङ्गता ॥६४॥
ज्ञाप्यमाप्यमथ हाप्यमप्यदः श्रीगिरोऽपि समियाद्वशंवदः ।
मातुरुच्चरणमात्रतोऽशुचीत्यादि संकलितुमेति किन्नु चित् ॥६५॥
जातु नात्र हितकारि सन्मनः भ्रंशयेदपि तु तत्त्ववर्त्मनः ।
तत्कुशास्त्रमवमन्यतामिति कः श्रयेदवहितं महामतिः ॥६६॥
ना महत्सु नियमेन भक्तिमानस्तु कस्तु पुनरत्र पवित्रमा ।
चेद्भवेन्महदनुग्रहप्रपद् यैर्मतो हि भुवि पूज्यते दृषद् ॥६७॥
सन्निपातगुणतो निवर्तिनश्चापवर्गिकपथाग्रवर्तिनः ।
यस्य कामपरिवादसादुरो मङ्गलं श्रयतु दर्शनं गुरोः ॥६८॥
बोधवृत्तसुवयःसमन्वयेष्वाश्रयन्ति गुरुतां जनाश्च ये ।
तान् प्रमाणयतु ना यथोचितं लोकवर्त्मनि समाश्रयन् हितं ॥६९॥
पार्थिवं समनुकूलयेत्पुमान्यस्य राज्यविषये नियुक्तिमान् ।
शल्यवद्रुजति यद्विरोधिता नाम्बुधौ मकरतोऽरिता हिता ॥७०॥
सर्वतो विषयतर्षपाशिनः हन्त संसृतिविलासवाशिनः ।
व्यर्थमेव गुरुताप्रकाशिनः के श्रयन्तु किल शर्मनाशिनः ॥७१॥
दानमानविनयैर्यथोचितं तोषयन्निह सधर्मिसंहतिम् ।
कृत्यकृद्विमतिनोऽनुकूलयन् संलभेत गृहिधर्मतो जयं ॥७२॥
अन्तरङ्गबहिरङ्गशुद्धिमान् धर्म्यकर्मणि रतोऽस्तु बुद्धिमान् ।
श्रीर्यतोऽस्तु नियमेन सम्वशा मूलमस्ति विनयो हि धर्मसात् ॥७३॥

धीमता हृदयशुद्धये सतास्तिक्यभक्तिधृतिसावधानता ।
त्यागितानुभविता क्रमज्ञता नैष्प्रतिच्छ्यमिति चोपलभ्यतां ॥७४॥
भावनापि तु सदावनायना किन्तु भोगविनियोगभृन्मनाः ।
आचरेत्सदिह देशना कृता श्रीमता प्रथमधर्मता मता ॥७५॥
भस्मवन्हिसमयाम्बुगोमया नैर्जुगुप्स्यसुसमीरणाशयाः ।
ऐहिकव्यवहृतौ तु सम्विधाकारिणी परिविशुद्धिरष्टधा ॥७६॥
शोधयन्तु सुधियो यथोदितं वर्तनादिपरिणामतो हितम् ।
भस्मना किममुना परिष्कृतं धान्यमस्त्यघुणितं न साम्प्रतम् ॥७७॥
गोमयेन खलु वेदिलिम्पनप्रायकर्मलभतामितो जनः ।
नास्तु पाशविकविट्तयान्वयः किन्नु गव्यमिव चाबिकं पयः ॥७८॥
शुद्धिरस्ति वहुशः क्षणोद्भवा ग्राह्यतामनुभवेत् पयो गवां ।
स्वोचितात्समयतः परन्तु वा काल एव परिवर्तको भुवां ॥७९॥
अम्भसा समुचितेन चांशुकक्षालनादिपरिपठ्यतेऽनकं ।
सम्प्रपश्यति हि किन्न साधुचिद्वारिचारितमुदूखलं शुचि ॥८०॥
किट्टिमादिपरिशोधनेऽनलं सम्वदेदधिपदं समुज्वलं ।
सेमुषी श्रुतरसिन्सुराजते स्वर्णमग्निकलितं हि राजते ॥८१॥
शौक्तिकैणमदकादिकेष्वितः प्राशुकत्वमथनैर्जुगुप्स्यतः ।
को न सम्वदति संग्रहे पुनर्नो घृणोद्धरणमात्रवस्तुनः ॥८२॥
स्थातुमिष्टफलकादि शोच्यते कीदृगेतदिति केन वोच्यते ।
वाति किन्तु दुरितावधीरणः सर्वतोऽपि पवमान ईरणः ॥८३॥
भो यथा स्ववशमीक्षितं सदान्नादिशुद्धमिति विद्धि सम्विदा ।
भाव एव भविनां वरो विधिः सर्वतो ह्यपरथागसां निधिः ॥८४॥

आगमोचितपथा यथापदं सावधानक उपैति सम्पदम् ।
कोऽथ तत्र किमितीक्षणक्षमः यत्न एव भविनां शुभाश्रमः ॥८५॥
किं क्व कीदृगिति निर्णयो बृहत्संशयादिकृतकौशलं दधत् ।
दिक्षु अन्धतमसायते जगत् चक्षुरत्र परमागमो महत् ॥८६॥
धेनुरस्ति महतीह देवता तच्छकृत्प्रश्रवणे निषेवता ।
प्राप्यते सुशुचितेति भक्षणं हा तयोस्तदिति मौढ्यलक्षणं ॥८७॥
न त्रिवर्गविषये नियोगिनी नापवर्गपथि चोपयोगिनी ।
श्राद्धतर्पणमुखासमुद्धता भूरिशो भवति लोकमूर्खता ॥८८॥
सम्पठन्ति मृगचर्म शर्मणे जीर्णवस्त्रमथवा सुकर्मणे ।
इत्यनेकविधमत्यघास्पदमस्ति मौढ्यमिह शुद्धिसम्पदः ॥८९॥
यत्वनिष्टमृषिभिर्निषेधितं देशितं हृदयहारवद्धितं ।
अन्यदप्यनुमतादुरीकुरु लोक एव खलु लोकसंगुरुः ॥९०॥
विश्वसाद्विशदभावनापरः स्वं यथोचितमथार्पयेन्नरः ।
वर्त्मनि स्थितिविधौ धृतादरः श्वोदरं च परिपूरयत्यरं ॥९१॥
मृष्टभाषणपुरस्सरं यथा स्वं सदन्नजलदानसम्पथा ।
सन्विसर्जनमथागतस्य तु कर्मधर्मणि मुखं गृहीशितुः ॥९२॥
प्रत्तमेव नृप विद्धि सृष्टये स्वस्य साम्प्रतमभीष्टपुष्टये ।
यद्वदेव परिषेचनं भुवस्तुष्टये भवति तद्धि भूरुहः ॥९३॥
धर्मपात्रमघर्षकर्मणे(?) कार्यपात्रमथवात्र शर्मणे ।
तर्पयेच्च यशसे स्वमर्पयेद् यशाः किमिव जीवनं नयेत् ॥९४॥
भोजनोपकृतिभेषजश्रुतीः श्रद्धया स नवभक्तिभिः कृती ।
पूरयेन्मुनि(यति)षु सन्मना गुणगृह्य एव यतिनामहोगणः ॥९५॥

तर्पयेदपि वरान्सुहृद्‌यथा मन्यमानपि तटस्थितांस्तथा ।
श्रीवरं स्विदवरं च सत्रपः स्वप्रजाङ्गमभिवीक्षते नृपः ॥९६॥
कार्यपात्रमवताद्यथोचितं वस्तुवास्तुमुखमर्पयन् हितं ।
येन सम्यगिह मार्गभावना का गतिर्निशि हि दीपकं विना ॥९७॥
श्रीत्रिवर्गसहकारिणो जना नात्रिकेष्टिपरिपूर्तितन्मनाः ।
तान्नयेच्च परितोषयन् धृतिं कुम्भकृत्युपरते क वा स्थितिः ॥९८॥
नष्टमस्तु खलु कष्टमङ्गिनामेवमार्द्रतरभावभङ्गिना ।
देयमन्नवसनाद्यनल्पशः स्यात्परोपकृतये सतां रसः ॥९९॥
स्वं यथावसरकं सधर्मणे सम्विधाकरमवश्यकर्मणे ।
कन्यकाकनककम्बलान्विति निर्वपद्धि जगतां मिथः स्थितिः ॥१००॥
स्वर्णमेव कलितं सुकृताय स्यादिहेति दशधा दुरुपायं ।
दानमुज्झतु भवार्णवसेतुर्योग्यतैव सुकृताय तु हेतुः ॥१०१॥
स्वान्वयस्य तु सुखस्थितिर्भवेत् सन्निराकुलमतिः स्वयंभवे ।
सर्वमित्थमुचिताय दीयतां हीङ्गितं स्वपरशर्मणे सतां ॥१०२॥
स्वं यशोऽग्रजननामसंस्मृतिरित्यनेकविधकारणोद्धतिः ।
कल्प्यतां भविषु भावनोच्छ्रितिस्तावतैव हि पथप्रतिष्ठितिः ॥१०३॥
नित्यमित्यनुनयप्रयच्छने स्तोऽथ पर्वणि विशेषतोऽङ्गिने ।
कर्मणी च परमार्थशंसिने शीलसंयमवते सुजीविने ॥१०४॥
तानवोमिति (?) मानवोचितं सज्जनैः सह समत्तु रोचितं ।
उद्भवेत्सममरिक्तभाजनस्तद्धि संग्रहणता गृहीशिनः ॥१०५
देवसेव्यमवगाढहृन्नर आर्षवर्त्मनि तु यो धृतादरः ।
सोऽप्यपंक्त्यनवशेषमाहरत्त्वत्रिवर्गपरिपूर्तितत्परः ॥१०६॥

राक्षसाशनमुपात्ततामसं नाशिपार्शविकमप्युतावशं ।
तद्वयं परिहरेत्तु दूरतः कः किलास्तु सुजनोऽपदे रतः ॥१०७
पादजेषु पतितेषु वा पुनर्नोपविश्य रससान्महान् जनः ।
यत्नतः परिचरेदितोऽमुतः किं पुमानवपतेत्स्वतः कुतः ॥१०८
द्यूतमांसमदिरापराङ्गनापण्यदारमृगयाचुराश्च ना ।
नास्तिकत्वमपि संहरेत्तरामन्यथा व्यसनसङ्कुला धरा ॥१०६
कुत्सिताचरणकेष्वशङ्किताकारिणी परभवादिनास्तिता ।
हाऽखिलव्यवहृतेर्विलोपिनीतीह संकटघटोपरोपिणी ॥११०॥
सर्वस्यार्थकुलस्य साधकतया सार्थीकृतात्मप्रथं,
निष्कादर्प्य तदात्वमूलहरणं तीर्थाय सम्यक्कथं ।
अर्थं स्वोचितवृत्तितो ह्यनुभवेदर्थानुबन्धैः नयः ।
स श्रीमान् मुदमेति तावदभितः शश्वत्प्रतिष्ठाश्रयः ॥१११
शस्त्रोपजीविवार्ताजीविजनाः सन्त्यथो द्विजन्मानः ।
कारुकुशीलवकर्मणि रतेषु संस्कारधारा न ॥११२॥
अस्तु सर्वजनशर्मकारणं जीविकाभुजमुवोऽसिधारणं ।
निर्बलस्य बलिना विदारणमन्यथासहजकं सुधारण (?) ॥११३
कृषिकृत्परिपोषणेन राज्ञां दधदायव्ययलेखनप्रतिज्ञां ।
नयनानयनैश्च वस्तुनो वा निगमो विश्वविपन्निवारको वा ॥११४
करकौशलेन च कलाबलेन कुम्भादिनर्तनादिबला ।
शुश्रूषणं हि शूद्रा जीवा खलु विश्वतोमुद्रा ॥११५॥
निजनिजकर्मणि कुशलाः परधामीर्मूर्ध्नि सम्पन्मुशलाः ।
किमु मस्तकेन चरणं पद्भ्यामथवा समुद्धरणम् ॥११६॥

स्वान्वयकर्मकृदस्मादस्तु समारब्धपापमथ भस्मा ।
क्वचिदाश्रमे समुचिते निरतोसावात्मनो रुचिते ॥११७॥
नैव वर्त्मपरिहासिणे ददात्युद्धतायतु कदात्मने कदा ।
प्राणहारिणमहोस्फुरन्नयः कोऽत्र सर्पमुपतर्पयन् स्वयं ॥११८॥
द्रव्यदेशसमयस्वभावतः पर्ययोऽस्ति निखिलस्य चेत्सतः ।
वृद्धिहानिनियमोऽपि भोजनाःन्निसम्भ्रतिमार्गदेशना (?) ॥११९॥
वर्णिगेहिवनवासियोगिनामाश्रमान् परिपठन्ति भोजिनाः ।
नीतिरस्त्यखिलमर्त्यभोगिनी सूक्तिरेव वृषभृन्नियोगिनी ।१२०।
स्वस्वकर्मनिरताँस्तु धारयन् तद्गतोपनियमान्सुधारयन् ।
सारयन् पथि निजं परानथाधारयेन्नृपतिरीतिहृन्कथाः ॥१२१॥
सर्वतो विनयताऽसतीं सतीं भूरिशाऽभिनयता समुन्नतिं ।
तन्यते तनयवन्महीभुजाऽदर्शवर्त्मपरिणाहिनी प्रजा ॥१२२॥
धर्मार्थकामेषु जनाननीतिं नेतुं नृपस्यास्तु सदैव नीतिः ।
त्रयी हि वार्ताऽपि तु दण्डनीतिप्रयोजनीयाथ यथा प्रतीतिः ॥१२३
वारितुं तु परचक्रमुद्यतः सामदामपरिहारभेदतः ।
प्राभवाभिवलमन्त्रशक्तिमान् शास्ति सम्यगवनिं पुमानिमां ॥१२४
यत्र यन्निरुपयोगि तत्र तद्दानमप्यनुवदामि पापकृत् ।
नार्दिताय तु सदर्चिषे घृतं सुष्ठु हीह सुविचारतः कृतं ॥१२५
इत्थमात्मसमयानुसारतः सम्प्रवृत्तिपर आप्रदोषतः ।
प्रार्थयेत्प्रभुमभिन्नचेतसा चित्स्थितिर्हि परिशुद्धिरेनसां ॥१२६
स्वस्थानाङ्कितकाममङ्गलविधो निर्जल्पतल्पं क्रमेत्,
नित्यद्योतितदीपकेऽपि सदने पत्न्या समं विश्रमेत् ।

प्रमालापपरः समर्थनकरश्चतु प्रदानस्य स,
यावत्तुष्टिसुभावपुष्टिविषये निर्णीतिरे वा रसः ॥१२७
न दर्पतोयः समये समर्पयेत्कुवित्सुबीजं सुविधा प्रबुद्धये ।
किमस्य मूर्खाधिभुवस्तदा भुवामब्रस्सरोहावसरे गते क्व वा ॥१२८
होढाकृतं द्यूतमथाह नेता संक्लेशितोऽस्मिन्विजितोऽपि जेता ।
नानाकुकर्माभिरुचिं समेति हे भव्य दूरादमुकं त्यजेति ॥१२९
त्रसानां तनुर्मांसनाम्ना प्रसिद्धा यदुक्तिश्च विज्ञेषु नित्यं निषिद्धा ।
सुशाकेषु सत्स्वप्यहो तं जिघांसुर्धिगेनं मनुष्यं परासृक्पिपासुं १३०
लोके घृणां समुपयन्मदकृद्भिरस्मिन्यज्ञातमाखुसुलभादिभिरङ्ग वच्मि
धीभ्रंशनं परवशत्वमुपैति दैन्य—
मस्मान्मदित्वमुपयाति न सोऽस्ति धन्यः ॥१३१
माक्षिकं मक्षिकाव्रातघातोत्थितं तत्कुलक्लेदसम्भारधारान्वितम् ।
पीडयित्वाप्यकारुण्यमनीयते संशिभिर्वंशिभिः किन्नु तत्पीयते १३२
श्वेव विश्वे जनोऽसौ तनोतीङ्गितं भोक्तुमुच्छिष्टमन्यस्य वा योषितं ।
हा प्रतिद्वारमाराधनाकारकं धिङ् नरं तं च रङ्कं कदाचारकं ॥१३३
मातुः श्वसुश्च दुहितुरुपर्यपरदारदृक् ।
किमुद्यमधमो गुह्यलम्पटस्सञ्चटत्यपि ॥१३४
गणिकाऽपणिकाऽखिलैनसांमणिका च त्वरगेव सर्वसात् ।
कणिकापि न शर्मणास्तनोर्भणिकाऽस्यां प्रणयो नयोज्झितः १३५
घ्नन्ति हन्त मृगयाप्रसङ्गिनः कौतुकात्किल निरागसोऽङ्गिनः ।
अन्तकान्तिकसमाचशिक्षिणस्तान्धिगस्तु सुतविश्ववैरिणः ॥१३६
प्राणादपीष्टं जगतां तु वित्तं हर्तुर्व्यपायि स्वयमेव चित्तं ।
स्वनिर्मितं गर्तमिवाशु मर्त्तुं चौर्यं तदिच्छेत्किल कोऽत्र कर्त्तुं ॥१३७

आर्यकार्यमपवर्गवर्त्मनः कारणं त्विदमुदारदर्शनः ।
स्वैरिता पुनरनार्यलक्षणं नो यदर्थमिह किञ्च शिक्षणं ॥१३८॥
नयवर्त्मेदं निर्णयवेदं प्राप्तुमखेदं स्पृष्टनिवेदम् ।
सुमतिसुधादं विगतविषादं शमितविवादं जयतु सुनादं ॥१३९
इत्यवाप्य परिशेकमेकतो गात्रमङ्कुरितमस्य भूभृतः ।
नम्रतामुपजगाम सच्छिरस्तावता फलभरेण वोढ्रुरं ॥१४०॥
सन्निपीय वचनामृतं गुरोः सन्निधाय हृदि पूततत्पदौ ।
प्राप्य शासनमगाद गारिराडात्मदौस्थ्यमयमीरयँस्तरां ॥१४१॥
स सर्पिणीं वीक्ष्य सहश्रुतश्रुतामर्थैकदान्येन बताहिना रतां ।
प्रतर्जयामास करस्थकञ्जतः सहेत विद्वानपदे कुतो रतं ॥१४२॥
मतानुगत्यान्यजनैरथाहता मृता च साऽकामुकनिर्जरावृता ।
मतेर्षया नाथचरामराङ्गना भवं बभाणोक्तमुदन्तमुन्मनाः ॥१४३॥
स च विमूढमना निजकामिनीकथनमात्रकविश्वसितान्तरः ।
न हि परापरमेव परामृशन् तमनुमन्तुमवाप्य चचाल धिक्॥१४४
अभूद्धारासारेष्वखिलमपि वृन्त्वनुवदन्,
समासीनः सम्यक् सपदि जनतानन्दजनकः ।
तदेतच्छ्रुत्वासौ विघटितमनो मोहमचिरात्,
सुरश्चिन्तां चक्रे मनसि कुलटायाः कुटिलतां ॥१४५॥
दोषा योषास्यतः सद्यः प्रभवन्ति मृषादयः ।
युक्तमुक्तमिदं वृद्धैर्वरं दोषाकरादपि ॥१४६॥
मृषासाहसमूर्खत्वलोल्यकौटिल्यकादिकान् ।
सर्वानवगुणान् लातीत्यबला प्रणिगद्यते ॥१४७॥

अंतर्विषमया नार्यो बहिरेव मनोहराः ।
परं गुञ्जा इवाभान्ति तुलाकोटिप्रयोजनाः ॥१४८॥
प्रियोऽप्रियोऽथवा स्त्रीणां कश्चनापि न विद्यते ।
गावस्तृणमिवारण्येऽभिसरन्ति नवं नवं ॥१४६॥
न सौन्दर्ये न चौदार्ये श्रद्धा स्त्रीणां चलात्मनां ।
रमन्ते रमणं मुक्त्वा कुब्जान्धजडवामनैः ॥१५०॥
अनल्पतूलतल्पस्थं स्त्रियस्त्यक्त्वानुकूलकं ।
रमन्ते प्राङ्गणेऽन्येनाहो विचित्राभिसन्धिता ॥१५१॥
हत्वा हस्तेन भर्त्तारं सहाग्निं प्रविशन्त्यहो ।
वामागतिर्हि वामानां को नामावैतु तामितः ॥१५२॥
प्रत्ययो न पुनः कार्यः कुलीनानामपि स्त्रियां ।
राजप्रियाः कुमुद्वत्यो रमन्ते मधुपैः सह ॥१५३॥
रूपवन्तमवलोक्य मानवं तत्पितृव्यमथवोदरोद्भवं ।
योषितां तु जघनं भवेत्तथाप्यामपात्रमिव तोयतो यथा ॥१५४
अनंकुरितकूर्चकं ससितदुग्धमुग्धस्तवं,
भुनक्त्यपि सकूर्चकं लवणभावभृत्तक्रवत् ।
न दृष्टुमपि फाराटवद्धवलकूर्चकं वाञ्छती,—
त्यहो पुरुषमेकमेव त्रिधा साश्नाति ॥१५५॥
मुकुरार्पितमुखवद्यदन्तरङ्गस्य हितत्वं,
शिखरिवराङ्कितगूढमार्गसदृशं विषमत्वं ।
गगनोदितनगरप्रकल्पमिव या सुमहत्वं,
प्रत्ययमत्ययकरं विद्धि यदि विद्धि नर (?) त्वं ॥१५६॥

स्मितरुचिराधरदलमनल्पशो जल्पन्तीमनुजेन केनचित्,
तरलितनयनोपान्तवीक्षणैः श्रृणोति क्षणमपराय च कश्चित् ।
अनुसन्धत्ते धिया ह्रिया पुनरपरं रूपबलोपहारिणम्,
विदितमिदं युवतिर्न भूतले या बिभर्ति परमेकताकिणं ॥१५८॥
अहह पार्श्वमिते दयिते द्रुतं न तद्दशावनिकृर्चनतोऽद्भुतं ।
वदति यद्यपि भावविवधूजनः न तु मनः प्रतिबुद्धयति कामिनः ॥१५८
साक्षात्कुरुते हन्त युवतिभुजपाशनिबद्धं किञ्चा-
कृतिगमोहनिगडवर्तितमपि न स्वं वेत्ति विकारी ।
रङ्कः पापपवेरपभीतिस्तिष्ठति किमुत विचित्रं,
अस्तिमसाववगाह्य च रतिराक्षापाल्लालितगात्रः ॥१५६॥
नानैवमित्यभिधाय नागः समभिगम्य महीपतिं,
गजपत्तनस्य शशंस गर्हितभार्यकः श्लाघापरः ।
परमार्थवृत्तेरथ च गद्गद्वाक्तया भूत्वाशुभ,-
भक्तोऽधुना समगच्छदुपसम्मतिं प्राप्य रंतिप्रभः ॥१६०॥

(इतिनागपतिलंबश्चक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः ससुषुवे भूरामलोपाव्हयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरीदेवी च यं धीचयं ।
श्रीमत्सन्मतिसम्मतामृतरसैर्निस्यूतशस्यांकुरे,
सागाराचरणोक्तिकस्तदुदिते सर्गो द्वितीयो वरे ॥१६१॥

इति श्रीवाणीभूषण - ब्रह्मचारि - भूरामलशास्त्रि - विरचिते
सुलोचनास्वयंवरे चित्राङ्किते सागारमार्गवर्णनो नाम
द्वितीयः सर्गः ।

अथ तृतीयः सर्गः

धर्मकर्मणि मनो नियोजयन्वित्तवर्त्मनि करौ प्रयोजयन् ।
नर्मशर्मणि शरीरमाश्रयन् स व्यभात्समयमाशु हापयन् ॥१॥
जिव्हया गुणिगुणेषु संश्चरँश्चेतसा खलजनेषु सम्वरं ।
निर्वलोद्धृतिपरस्तु कर्मणा स्वौक एकमभवत्तु शर्मणां ॥२॥
प्रातरादिपदपद्मयोर्गतः श्रीप्रजाकृतिनिरीक्षणेऽन्वतः ।
नक्तमात्मवनिताक्षणे रतः सर्वदैव सुखिनां सुसम्मतः ॥३॥
मत्स्यरीतिरिपुरेष ×धीवरः+सत्समागमतया कलाधरः ।
यः समाय‡ समयो महेन्द्रवन्नित्यमित्युचितकृच्छुभाश्रवः ॥४॥
भूतले स्वयमनागसेऽवितः[] सम्बभौ सपदि नागसेवितः ।
वारिदेषु॰ विनयाश्रयोऽपि सन् योऽत्र वारिदगणं रुषारिषन् ॥५
बन्धुबन्धुरमनो विनोदयन्दीनहीनजनमुन्नयन्नयं ।
वैरिषन् रसितिर्वैरिसंग्रहमव्यथेऽकथि पथि स्थितोऽन्वहं ॥६
‡ राजतत्वविशदस्य या स्वसः क्षीरनीरसुविवेचनावतः ।
साथमान† समयं सुरक्षति संस्तवं सुखगताय॰ पक्षतिः ॥७
हासमेति जडता प्रतिष्ठितिः किन्तु यत्र बहुधान्यनिष्ठितिः ।
श्रीशरत्समनुयायिनीत्यभाद्राजहंसपरिवारिणी सभा ॥८

× निषादः विद्वानपि । + सभ्यास्तरकाश्च । ‡ सम्यगायवान् मायाजालसहितश्च । [] नीतिमार्गाय नियुक्तः । ॰ बहुश्रवेषु । ‡ रजतस्य भावो राजतं तस्य भावः राजनीतिश्च । † प्रतिष्ठायुक्तं मानससरोरूपं च । ॰ सुखेन गतं चेष्टितं तस्मै शोभनपक्षिविधिश्च ५

पल्लवैरभिनवैरथाश्रिता सर्वतोऽपि सुमनःसमन्विता ।
या फलोदयभृदिङ्गिताश्रिता किन्नु सत्कृतलता तथा मता ॥९
सज्जलक्षणविभङ्गदेशिनी या मलापहरणोपदेशिनी ।
जैनवागिव सरित्सुवेशिनी तीर्थसम्भवपथानुवेशिनी ॥१०
सम्पदादरणकारिणीत्यलं कालमाश्रितवती मुदादरं ।
मञ्जुवृत्तविभवाधिकारिणी कामिनीव कवितानुसारिणी ॥११
कामवत्स्मृतिसमुद्भवत्वतश्चावलोद्धृतिसमाश्रयत्वतः ।
निर्णयः खलु समुन्नतत्वतः कस्यचिद्रतिकरो हि तत्वतः ॥१२
भास्वतः समुदयप्रकाशिनः +क्षौद्रलेशपरिमुक्विकाशिनः ।
यत्र वारिजतुलाविलासिनः श्रीयुताः खलु सभानिवासिनः ॥१३
मन्त्रिणः खलु विषादनाशिनश्चादिवच्चरनराः सुदर्शिनः ।
दृष्टिमान् सुकृतवत् पुरोहितः प्रक्रमश्च सकलो यथोचितः ॥१४
गुप्तिभागि उत कामवत्तु न पक्षपाति अमृतांशुवत्पुनः ।
कोन्वतिश्रुतिरितो दृगन्तवत्साऽखिलाङ्गसुलभाऽसमाभवत् ॥१५
दूतवत्तु चरकार्यतत्पराः श्रोत्रिया इव च सुश्रुतादराः ।
यत्र ते नटवदिष्टवाग्भटाः स्मावभान्ति भिषजोऽद्भुतच्छटाः ॥१६
चारणा गुणगणप्रचारणास्ते कुविन्दवदुदारधारणाः ।
सम्भवत्सुपदवेमपाकया सञ्जयन्ति विलसत्कलाकया ॥१७
देशनेव दुरितापवर्तिनी भावनेव सुकृतप्रवर्तिनी ।
कल्पनेव सुकवेः सदर्थिनी तस्य संसदभवत्समर्थिनी ॥१८

+ संकीर्णत्वं, मधु च ।

संसदीति नियतो नृपासने सोऽजयज्जयनृपः कृपाशनेः ।
दुर्मदाचलभिदः सदा स्वतः धारकः चणलसच्चमत्कृतः ॥१६
संसदीह नतवर्गमण्डितेऽथापवर्गपरिणामपण्डिते ।
श्रीत्रिवर्गपरिणायके तथा तिष्ठतीष्टकृदसावभूत्कथा ॥२०
प्रतिहारमतः कश्चित्प्रतीहारमुपेत्य तं ।
नमति स्म मुदा यत्र नमितिः स्मरतः पृथक् ॥२१
दृशाशिकाऽदायिनृपस्य हेचित्स संमुचा दन्तरुचाभ्यसेचि ।
रसागिरः खण्डमदात्तदास्या आतिथ्यचातुर्यमभून्न कस्मात् ॥२२
यशोविशिष्टं पयसोऽपि शिष्टं बिभर्ति वर्णौघमहोकमिष्टम् ।
तरां धराङ्के तव नाम काम-गवीचविद्वद्वरसम्वदामः ॥२३
मरालमुक्तस्य सरोवरस्य दशां त्वयाऽनायितमां प्रशस्य ।
कश्चिन्नुदेशः सुखिनां मुदे स विशुद्धवृत्तेन सतासुवेश ॥२४
शिरीषकोषादपि कोमले ते पदे वदेति प्रघणं तदेते ।
अस्माकमश्माधिक हीर वीर पूर्णं कुतोऽलङ्कुरुतोऽथ धीर ॥२५
भवादृशा कष्टमदुष्टदैव श्रियां क्व सम्भाव्यमहो सदैव ।
अथोपथामाततया तथापि न क्षेमपृच्छानुचितास्तु सापि ॥२६
पद्भ्यामहोकमलकोमलतां हसद्भ्यां,
किं कौशलं श्रयसि कौशरमाश्रयद्भ्यां ।
वैरीशवाशिफरराजिभिरप्यगम्यां,
श्रीदेहलीं नृवर नः सुतरामरं यान् ॥२७
दर्शयित्वा सुवर्णोत्थपदान्यतिथये मुदा ।
द्रुतं कुरु नरेशस्य विनिवृत्तेत्यभूद्रसा ॥२८

वाग्मितापि सितायावद्रसितावशिताभृतः ।
भाष्यावली च दूतास्याल्लालेव निरगादियं ॥२९
सुमना मनुजो यस्यां महिला सारसालया ।
श्रीधरोऽधीश्वरो यस्याः सा काशी रुचिरा पुरी ॥३०
तदधीशाज्ञयाऽऽयातः कुशलं वः पदाब्जयोः ।
विसारसन्ततेः किं स्याज्जीवनं जीवनं विना ॥३१
महीमघोनः सुतरामघोनः समागमो नर्मसमागमो नः ।
भवादृशो भात्यथवा दृशोऽपि यतोऽधुना निष्फलताव्यलोपि ॥३२
भवादृशामेव भुवीहनाम वयं च यच्छासनमुद्धरामः ।
समुत्सरामः कुतलेऽभिराम(?)नैकं च नो ग्राममिहापि धाम ॥३३
मस्थितस्य कुशलं शिरस्य नु सम्बभूव पथि पादयोस्तनुः ।
सांप्रतं कुशलं(?)तेऽवलोकनादश्वनैः कुशलतेव चाधुना ॥३४
ावपत्त्रेऽपि करे राज्ञः पत्रमत्रेति सन्ददत् ।
अथ त्रपतयाप्यासीत् स दूतो मञ्जुपत्रवाक् ॥३५
निष्ठाप्य सूत्रवत् पत्रं व्याख्याप्याख्यातसंकथा ।
तद्वाणी रमणीयाऽऽसीद्रमणीव हि कामिनः ॥३६
तस्यैका तनया राज्ञो राजते कौमुदाश्रया ।
सुप्रभाकुक्षितो जाता चन्द्रिकेव सुरोचना ॥३७
विचक्षणेक्षणात्तूर्णं वृत्तमेतद्गतं मतम् ।
क्षणदं क्षणमाख्यानात्कर्णालङ्करणं कुरु ॥३८
स्मरस्य वागुरा बाला लावण्यसुमनोलता ।
शाटीव सुभगा भाति गुणैः संगुणिता शुभैः ॥३९

इक्षुयष्टिरिवैषाऽऽसीत्प्रतिपर्वरसोदया ।
अङ्गान्यनङ्गरम्याणि कास्या यान्तूपमां ततः ॥४०
अथासौ चन्द्रलेखेव जगदाह्लादकारिणी ।
नित्यनूत्नां श्रियं रेजे बिभ्राणा स्मरसारिणी ॥४१
उत्क्रान्तवती ‡कौमारमेषां चंचललोचना ।
स्नेहादिव तथाप्येनां नैव मारस्स्म बाधते ॥४२
सा तनुस्तानि चाङ्गानि किन्त्वभूद्रामणीयकं ।
यौवनेनाद्भुतं तस्यास्स्यात्कारेण यथा गिरः ॥४३
÷व्यञ्जनेष्विव सौन्दर्यमात्रारोपावसानकौ ।
विसर्गौस्तनसन्देशात्स्मरेणोद्देशितावितः ॥४४
समुत्कीर्य करावस्या विधिना विधिवेदिना ।
तच्छेषांशैः कृतान्येवं पङ्कजानीति सिद्ध्यति ॥४५
असौ कुमुदबन्धुश्चेद्धितैषी सुदृशोऽग्रतः ।
×मुखमत्र सखीकृत्य +बिन्दुमित्यत्र गच्छतु ॥४६
दृष्टिसृष्टिरपूर्वेवाकृष्टिर्विश्वस्य चेतसां ।
इतीवेनोमयत्वेन कज्जलैरपि लाञ्छिता ॥४७
श्रेणीति कालवालानां वेणी चैणीदृशो भृशं ।
वक्ष्यते वीक्ष्यमाणेभ्यः पन्नगीव विपन्नगी ॥४८
नाभिस्तु मध्यदेशेऽस्यास्सरसा रसकूपिका ।
लोमलाजिच्छलेनैतत्पर्यन्तेशाड्वलावली ॥४९

‡ कुमारावस्थां कां पृथिव्यां मारं च । ÷ ककारादिषु शरीराव-
यवेषु च । × आस्यं मुकारमुपं च । + कान्तिलेशं अनुस्वारं च ।

❀ सभमस्याः पदस्याग्रं †नखमाहुः सदाजनाः ।
नभस्तु खमिति ख्यातिं लेभे श्रीपूज्यपादतः ॥५०
सुमाभं हसितं यस्या भ्रूयुगं चापसन्निभं ।
दृश्यते तनुरंतस्याः सुमचापपताकिनी ॥५१
विधिर्येनाभ्युपायेन नाभिवापी निखातवान् ।
लोमलाजिच्छला सैषा *कुशिकैवाथवा भवेत् ॥५२
चन्द्रोदये विभावर्या वसन्तेषु कुसुमश्रिया ।
भाति स्म यौवनारम्भस्तस्या यद्वच्छरद्यपां ॥५३
इङ्गितेनोभयोः श्रेयस्करीहामुत्र पक्षयोः ।
दुहिताद्विहिता नामैतादृशी पुण्यपाकतः ॥५४
एतादृशीं समिच्छन्तु सर्वेऽपि रमणीमणिं ।
स्पृहयति न कं चन्द्रकलाप्यविकलाशया ॥५५
संश्रयेत्कमथैकं सावस्थातुं स्थानभूषणा ।
निराश्रया न शोभन्ते वनिता हि लता इव ॥५६
सुभगा हि कृता यत्नाद्विधिनाथ प्रियम्वदः ।
दत्वा स्मरो विलासादि सुवर्णं सुरभीत्यदः ॥५७
सुवर्णमूर्तिः प्रागेव यौवनेनाधुनाश्रिता ।
अद्भुतां लभते शोभां सिन्दूरेणेव संस्कृता ॥५८

❀ भयादीत्यासहितं सभं, भैर्नक्षत्रैर्वा ।
† नास्ति खं नाशो यस्य तम् ।
* कुद्दालिका ।

बहुशस्य + वृत्तितावाधरबिम्ब × स्य दृश्यतां ।
साध्व्यार्यंतोऽधरं बिम्बनामकं च फलं परं ॥५९
सुकृतैकपयोराशेराशेव सुरसातया ।
पद्मोऽपि चेज्जितः पद्भ्यां पल्लवे पत्रता कुतः ॥६०
अवा + लभावतो जंघे सुवृत्ते‡ विलसत्तनोः ।
मनः सुमनसां हर्त्तुं भजतो दीव्यतामतः ॥६१
श्रोणीमहती सैव मोदकौ संकुचरूपौ,
त्रिवलिर्जवलेविकाकपोलौ घृतवरभूपौ ।
अधरलतारसगुल्गुलेतिपरिणामसुरम्या,
स्मितपयसा मधुरेण रसवतीयं बहुगम्या ॥६२
ग्राहकान्समाव्हयति सैष कन्दर्पकानूदविक,
इमकां संक्रीणातु सुकृतवित्तीनृपनाविक ? ।
सम्पन्ना गुणवती व्यञ्जनैरखिलैः पूर्णा,
दर्शनेन तनुभृतां संकलितमूर्धनि घूर्णा ॥६३
द्वितीयमुत्पाद्य पदादिकरस्यापहृत्य धात्रानुपमत्वमस्या,
समोद ※ नस्यात्र भवादृशस्य प्रयुक्तये सूप * मतापि शस्य ? ॥६४
किमत्र तूलेन विभो भवादृशा सुदर्शनी यैव समस्ति सा दृशा ।
न वर्णनेनैव भवेदहोमितारसज्ञयैवाश्रितसंहितासिता ॥६५

+ अतिप्रशंसनीयत्वं, बहुव्रीहिसमासवलं च । × अधरं बिम्बनामफलं यस्मात् । + लोमरहितत्वात् मूर्खत्वरहितत्वात् वा । ‡ वर्तुलाकारे सदाचारिण्यौ च । ※ हर्षयुक्तस्य सम्यगोदनस्य च । * सम्यगुपमायुक्तता, दालीमान्यता च ।

तवापि भूमावपि रूपराशावाशाधिकन्येबिहुलास्तु तासां ।
कासावरम्या स्मरसारवास्तुसुलोचनानामसुलोचना तु ॥६६
समं समालोच्य स आत्ममंत्रिभिस्तदेवमापृच्छ्य निमित्ततंत्रिभिः ।
ततोनवद्यप्रतिपत्तिमन्मतिस्स्वयंवरोद्धारकरत्वमिच्छति ॥६७
भाति चातिहितं तेन शान्ति ‡ वर्मतये हितं ।
तत्त्वार्थभाष्यमेवास्यं यस्य देवागम* स्थितिः ॥६८
समायातः समायातः स्रग्दिवश्चादि बन्धुवाक् ।
कौतुकं कौ तु कस्मान्न कृतवान् कृतवाञ्छनः ॥६६
तस्या मानसपत्नी भवेद्भवेऽस्मिन्नरेशसुरसायाः ।
कस्य करक्रीडनकं निश्चेतुमितीह मानसः ॥७०॥
भूपतेरीप्सितं सर्वं प्रक्रमते यथोचितं ।
देवराडेव वान्धव्यात्सहभावो हि बन्धुता ॥७१
देवांशे स्फुरदेव देवदिगभिद्वारं प्लवालम्बने,
स्वश्रीशानदिशो नरेश्वरविशो वैभाविशो भावने ।
तेनैवोपपुरे सुरेण रचितं सम्यक्सभामंडपं,
दिव्ये वास्तुनि वास्तुनीति निपुणे श्रीसर्वतो भेदकं ॥७२
कलत्रं हि सुवर्णोरुस्तंभं कामिजनाश्रयं ।
मंडपं सुतरामुच्चैस्तनकुम्भविराजितं ॥७३
हिरण्यगर्भवत्ख्यातं कस्यचित् सुभ्रुणो भुवि ।
कामकर्म समुद्दिश्य चतुर्मुखतया स्थितं ॥७४

‡ चित्राङ्गददेवस्य पूर्वनाम, समन्तभद्राचार्यनाम च ।

* देवतागमनं, आप्तमीमांसा च ।

शृङ्गोपात्तपताकाभिराह्वयन् स्फुटमङ्गिनः ।
मरुदावेल्लिताग्राभिरुत्कानिति समन्ततः ॥७५
×मुकुरादिसमाधारं +मौक्तिकादिसमन्वितं ।
नवविद्रुमभूयिष्ठमाराममिव मञ्जुलं ॥७६
कर्बुरासारसम्भूतं पद्मरागगुणाङ्कितं ।
राजहंसनिसेव्यं च रमणीयं सरो यथा ॥७७
सा देवागम-सम्भूता सेवनीया सुदृष्टिभिः ।
*अकलङ्ककृतिः शाला विद्या**नन्दविवर्णिता ॥७८
विशालापि सुशाला सा नगरी सगरीत्यभूत् ।
वसुधा महिता तावद्युक्तानवसुधान्वयैः ॥७६
सर्वत्रैव सुधाधाराथ +चित्रादिमनोहरा ।
सुरसार्थिभिराराध्यामरेवासौ पुरी पुरी ॥८०
वर्णसाङ्कर्यसम्भूता विचित्रचरितैरिह ।
जनानां चित्तहारिण्यो गणिका इव भित्तिकाः ॥८१
वर्णाश्रमच्छवित्राणा मत्तवारणराजिताः ।
नृपा इव गृहा भान्ति श्रीमत्तोरणतः स्थिताः ॥८२
पयोधरसमाश्लिष्टा ध्वजाली विशदांशुका ।
तनुनीव नुनीते या विभ्रमैः श्रममङ्गिनां ॥८३

× वृक्षविशेषः काचश्च ।
+ मौक्तिकपुष्पं मुक्ता च ।
* अकलङ्का चासौ कृतिः, अकलङ्कस्य कृतिर्वा ।
** विद्याया आनन्देन विद्यानन्दनामाचार्येण च ।
+ चित्रप्रभृतिभिः चित्रानामवेश्यादिभिश्च ।

यत्र गन्धोदसंसिक्ताः कीर्णपुष्पाश्च वीथयः ।
हर्षोत्कर्षतया स्विन्ना रोमाञ्चैरिव मंडिताः ॥८४

विशदाचतया तन्ता सुभाषेव सुलोचना ।
दर्शनीयतमा काशी साशीर्वा व्यक्तमङ्गला ॥८५

मतिं क्व कुर्याम्भरनाथ पुत्री भवेद्भवान्नवमखर्वसूत्री ।
इष्टे प्रमेये प्रयतेत विद्वान्विधेर्मनः सम्प्रति को नु विद्वान् ॥८६

सौन्दर्यमात्रा त्वयि भो सुमात्रा प्रसूत ! मेसच्छकुनैश्च यात्रा ।
श्रीमन्तमन्तः शयवैजयन्तीत्यक्त्वान्यमिच्छेन्न धियो जयन्ति ॥८७

सुकन्दशम्पे च कलङ्किरात्री विषादिदुर्गे स्मरशर्मपात्री ।
विधेश्च संयोजयतोभ्युपायः परस्परं योग्यसमागमाय ॥८८

अदृश्यरूपा वितनोरतिर्व्यंश्रा (?) दभूत् सुभद्रा भरतस्य बल्लभा ।
वरिष्यति त्वान्तु सतीति सत्तम
चकास्ति योग्येन हि योग्यसङ्गमः ॥८६

प्रस्थिते मयि सुदक्क (?) सुस्रक्क्षेपिणी पथि पदोः प्रघणस्पृक् ।
साशिकापि भवती भवतीशादिक्सदिष्टशकुनैश्च गुणीशः ६०

सुरोचनान्यायसुरोचनेति समिच्छतः का पुनरभ्युदेति ।
विधाविधातुस्तुरिरुत्तरीतुमवर्णवादाख्यपयोनिधिन्तु ॥६१

यात्रा तवात्रास्तु तदीयगात्रावलोकनैर्लब्धफला विधात्रा ।
वामेन कामेन कृतेऽनुकूले तस्मिन् पुनः श्रीः सुघटानदूरे ॥६२

इत्थं वारिनिवर्णैरङ्कुरयन् संसदं तथैव रसैः ।
मुदि रोमानसमुच्छ्रितमसुष्य कुर्वन् स विरराम ॥६३

आर्द्रं भूमिपतेर्मनःस्थलमलं काशीति संस्रोतया,
तस्यैकादिनिपूरपूरितमभूत्क्षेत्रं पुनः साङ्कुरं ।
तस्या मानसपक्षि एव मुदितात्सम्फुल्लनेत्रोदरे,
सञ्जातापि मुदश्रुतेह शतशो मुक्ताफलाख्यानता ॥९४
हारं हृदोऽनुकूलं स समवाप महाशयः ।
जयः समादरात्तस्मायुपहारं वितीर्णवान् ॥९५
स पुनः परमानन्दमेदुरो मानवाग्रणीः ।
गन्तुमुत्सहते स्मैव नारीणां हितसाधनः ॥९६
विषमेषु हिते नैवं समेषु हितकारिणा ।
सन्देहधारिणाप्यारात्संदेहप्रतिकारिणा ॥९७
तदा सन्मूर्ध्नि रत्नेन मूर्ध्नि रत्नं तदापि सत् ।
सुहृग्गुणानुसारेणासुहृक्सिद्धान्तशालिना ॥९८
नत्वार्हतां पदाम्भोजे उन्नतेन मनीषिणां ।
प्रस्थितं सहसोत्थाय श्रीमतामग्रगायिना ॥९९
तस्य भूतिलकस्यापि सम्भुवा तिलकोचितः ।
समाधेयस्य तत्त्वस्य बाधारहितता कृता ॥१००
प्रवालजलजाताभ्यां चरणौ चरणोत्सुकौ ।
मिषेणोपानहोस्तस्याप्यभूतां वर्मितावितः ॥१०१
अमानवचरित्रस्य महादर्शं किलेक्षितुं ।
सूर्याचन्द्रमसावास्यं रेजाते कुंडलाच्छलात् ॥१०२
सज्जीकृतं स्वीचकार परं परिकरं नृपः ।
शोभते शाचिषां सार्थैस्तेजस्वी तपनोऽपि चेत् ॥१०३

स्वर्गश्रियः प्रेममुक्तापाङ्गसन्तानमञ्जुला ।
पतन् पार्श्वे मुहुर्यस्य चामराणां च यो बभौ १०४
स्वर्णदीसलिलस्यन्दः स्वर्णशैलतटे यथा ।
स्फुरत्कान्तिचयोहारस्तस्योरसिलुठन्बभौ ॥१०५॥
साधुप्रसाधनं यस्य समालोक्य विशांपतेः ।
दधुर्नार्योऽरयश्चैवं कन्दर्पं* स्विदप + त्रपाः ॥१०६॥
प्रसक्तिर्मनसो वक्ति कार्यसम्पत्तिमत्र वा ।
इत्यनन्यमनस्कारैः प्रस्थानं कृतवान् जवात् ॥१०७
पुरन्ध्रीजनदत्ताशिर्विकाशिकुसुमाञ्जलिं ।
श्रयन् गोपपतिः प्राप गोपुरं स शनैः शनैः ॥१०८
अत्याक्षीद्दूरतः सद्भिः सेवितः सदनाश्रयं ।
†अनीतिप्रथितं राजा नीतिमान् पुरमप्यसौ ॥१०६
समुदङ्गसमुदगात् मार्गलं मार्गलक्षणं ।
नरराट् परपराद्वैरी सत्वरं सत्वरञ्जितः ॥११०
अस्मत्खरखुराघातैः खिन्ना किमिति मेदिनी ।
आलिङ्गन् प्रययौ वाजिनिवहोऽनुनयन्निव ॥१११
उपांशुपांशुले व्योम्नि ढक्काढक्कारपूरिते ।
बलाहकबलाधानात् मयूरामदमाययुः ॥११२
सुमंदन्मरुदावेल्लत्केतुपंक्तिः समुज्वला ।
इलां चालयितुं रेजेऽवतरन्तीव स्वर्णदी ॥११३

---

* कन्दर्पं कामं, कं नाम दर्पं गर्वमिति च ।
+ निर्लज्जाः वाहनवर्जिताश्च । † ईतिरहितं ।

स विश्रमां च विटपैरूपश्लिष्टपयोधरां ।
तत्याज तरसा भूपः स्निग्धच्छायां वनावनीं ॥११४

चतुर्दश × गुणस्थानमुखेन शिवपू ॐ र्गता ।
शुक्लेन + वाजिना तेनाराट् त्रिमार्गानुगामिना ॥११५

स्वश्रेष्ठं स्मरसोदरं जयनृपं तन्नागतं सादरं,
यत्नाद् गोपुरमण्डलात् स्वयमथोत्सर्गस्वथावाधिपः ।
वन्नानीयसुपुष्कराशयतनोर्धामप्रभृत्युज्वलं,
रक्त्यादात्स्वपुरेऽयमान्तवरदोऽरं कृत्यपः श्रीधरः ॥११६

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भु जः स सुपुवे भूरामलोपाव्हयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
नव्यां पद्धतिमुद्धरत्सुकृतिभिः काव्यं मतं तत्कृतं,
सर्गस्य द्वितयेतरस्य चरमां सीमान्तमेतद्गतं ॥११७

इति श्री वाणीभूषण-ब्रह्मचारि भूरामल शास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये तृतीयः सर्गः ।

× चतुर्दशवल्गनायुक्तेन मुखेन, नावद्धा गुणस्थानद्वारेण च ।
ॐ काशी मुक्तिश्च ।
+ श्वेतघोटकेन शुक्लध्यानेन च ।

अथ चतुर्थः सर्गः

यावदागमयतेऽथ नरेन्द्रान् काशिकानरपतिर्निजकेन्द्रात् ।
आदिराज इदमाह सुरम्यमर्ककीर्तिमचिरादुपगम्यः ॥१

तात! शातकरमेव निवेद्यं कौतुकेन समुदा ह्रियतेऽद्य ।
श्रूयतां श्रवणयोरनुजेन न श्रुतं च भवतामनुजेन ॥२

यत्स्वयंवरविधानकनाम कर्त्तुमिच्छति मुदा गुणधाम ।
सोऽप्यकम्पननृपस्तनुजाया यामनुस्वयमिहातनुजाया ॥३

वीक्षितुं यमधुनाखिलकायः प्रस्थितः सुमनसां समुदायः ।
श्रीवसन्तमिव किं पुनरेष मानवाङ्गभवपल्लवलेशः ॥४

उक्तपत्ररसनो रविरीतिस्तावतैव हि समुद्गिरतीति ।
गम्यतां किमिति सम्प्रति तत्रास्माकमङ्गविधिना गुणिभर्त्रा ॥५

आह कोऽपि विनिशम्य रसालां वाचमाचरितचित्त इवालात् ।
का स्वयंवर नु या खलु शाला यं कमेव वृणुते खलु बाला ॥६

आस्तदा सुललितं चलितव्यं तन्मयावसरणं बहुभव्यं ।
यश्चतुष्पथक उत्कलिताय कस्यचिद् व्रजति चिन्न हिताय ॥७

फेनिलेन परिशोध्य शरीरं सन्निवेद्य भगवत्पदतीरम् ।
दैवदानववलायितकस्य स्यात्परीक्षणमहो किल कस्य ॥८

हे महीश महनीय नयन्तु दृक्पथं भुवि धियोभिनयन्तु ।
श्रीमतः प्रथम इत्यधिकारः किं विधोः शरदि नप्युपचारः ॥९

याष्यतीव हिमवान् स्विददीनं भोज्यमस्तु लवणेन विहीनं ।
वंचितास्स्म किमुपायपदेते श्रीमतामनुचरा वयमेते ॥१०
यामि यात यदि वश्चिदुदेति भूपवित्तु जनतावशगेति ।
सानुकूलवचनं निजगाद चक्रवर्तितनयोऽपि यदादः ॥११
सांप्रतं सुमतिराह निशम्य स्वामिभाषितमिवेदमसम्यक् ।
निर्निमिन्त्रणतया न भवद्भिर्यातुमेवमुचितं गुणवद्भिः ॥१२
तत्र दुर्मतिरुपेत्य जगाद शंकुशोधननिभं सहसादः ।
ईदृशेऽभिनयके प्रतियाति किन्न तस्य हि निमन्त्रणतातिः ॥१३
गम्यतां पुनरितीह निरुक्तिः साष्टचन्द्रनरपोग्रहयुक्तिः ।
स्वम्बरं प्रचरितुं धृतसत्तां गन्तुमेष च सभामभवत्तां ॥१४
गच्छतां तु + तरुणाहितसक्तिश्छाययां भिददतीत्यनुरक्तिं ।
पद्धतिर्ननु सुलोचनिकेवा मोददा सफलकौतुकसेवा ॥१५
पाणिनीय + कुलकोक्तिसुवस्तुपूज्यपादविहितां सुदृशस्तु ।
सर्वतोऽपि चतु × रङ्गततामिः काशिकाम् ययुरमीर्धिपणाभिः ॥१६
आग्रतं भरतभूपतुजं तं चैत्यकाशिपतिरुत्तमसन्तं ।
सोपहारकरणः प्रणनाम प्रोक्तवानपि यदेव ललाम ॥१७
पादपद्मरुचयः शुचयोऽपि आव्रजन्तु भवतोऽनुनयोऽपि ।
सेवकस्य च कुटी रमयन्तु सौरभाश्रयणमाशु नयन्तु ॥१८

+ तरुणैराहितासक्तिर्यत्र सा, पक्षे तरुणा वृक्षेण ।

+ हस्तसंकेतप्रापणीया, पाणिनेरियं पाणिनीया चासौ कुलकोक्तिश्च ।

× चतुर्भिरङ्गैस्तताभिः, चतुरङ्गैर्हयैस्तताभिः ।

यौवनादिमसारिद्धवदुर्मेः स्यात्स्वयंवरविधिदु हितुर्मे ।
श्रीमतां नयनमीनयुगस्यानन्दहेतुरियमत्र समस्या ॥१६
इत्थमुक्तवति काशिनरेशे दुग्धवन्मृदुवचः श्रुतिलेशे ।
दूषणस्य विचचार जलौका एव दुर्मतिसदर्थितग्लौकाः ॥२०
दत्तमस्त्यपि निमन्त्रणपत्रमत्र येन च भवान् गिरमत्र ।
दुग्धतो हि नवनीतयुदेति गौस्तृणानि हि समादरणेऽति ॥२१
काशिकापतिरितो नतिमाप वायुनांघ्रिप इवायममापः ।
तत्र तस्य सचिवेन सदुक्तं वाच्यमेव समये खलु युक्तं ॥२२
संनिमन्त्रणमहान्यकृतिभ्यः कार्यकार्यपि तु मंत्रणमिथ्यः ।
स्वात्मना पुनरिती हिभवद्भ्यः प्रार्थ्यते सपदि भो निजसद्भ्यः ॥२३
यच्च कुङ्कुमितपत्रपदेनामन्त्र्यते स्वयमथायमनेनाः ।
श्रीमतां चरणयोः समुपेतः स्वामि एव मन किन्न तथेतः ॥२४
विज्ञभाषितमिदं सुमनोभिराश्रितं हृदयतो बहुशोभि ।
इत्यनेन रविरुल्लसितोऽभूज्जातुचिच्चनतमो धृगितो भूः ॥२५
राजकीयसदनं मतिमद्भ्यः प्राह सत्तनुपिताथ भवद्भ्यः ।
संविहाय हृदयं न गुणेभ्यः स्थानमन्यदुचितं खलु तेभ्यः ॥२६
स्नानसम्भजनभोजनपानानन्तरं मतिमुवाह निदानात् ।
अर्ककीर्तिरनुयोजनमात्रमागता वयमनर्थतयात्र ॥२७
याम एव सदसीह परन्तु भिन्नभिन्नरुचिमद्गुणतन्तु ।
सत्तनुर्ननु परं जनमञ्चेत्का वशा पुनरहो जनेमञ्चे ॥२८
सन्निशम्य वचनं निजभर्त्तुर्मानसं मुदितमेव हि कर्त्तुम् ।
प्राह भो प्रतिभवाम्यपहर्तुं तिष्ठतान्मदनुकः खलु मर्त्तुं ॥२६

अन्वमानिरविशेदमयोग्यमित्यतोऽपयश एव हि भोग्यं ।
तत्र चोक्तमितरेण जनेन सम्वदाम्ययनमेकमनेनः ॥३०
साधदीदमहमस्मदुपायात् दामनाम विकरोमि यथायात् ।
तच्च नैकहृदि येन पुनः स्यादुत्थितातिविकटेव समस्या ॥३१
तत्तदाप्य निगले हि विभूनामर्पणीयमिति मुक्तिरनूना ।
एवमन्यमनुजेन निरुक्तं दुर्मतिस्तु स बभाण न युक्तं ॥३२
तत्करोमि किल सा सहजेनारोपयेद्विभुगले तदनेनाः ।
चिन्तयन्तपुरुमित्यभिराध्यं धीमतामपि धिया किमसाध्यं ॥३३
युक्तिमेति पुरुषो यदि मुक्तिमाश्रितुं स्वयमतीन्द्रियसूक्तिं ।
तत्किमङ्गमिह नानुविधत्तेप्यङ्गनानुकरणप्रतिपत्तेः ॥३४
सन्निनाय सनिजं मतिकेन्द्रमुत्सहेऽत्र महनीयमहेन्द्रम् ।
योर्हतीह सुदृशोऽग्रिमसाजमेष एव खलु कञ्चुकिराजः ॥३५
सम्प्रवृज्य पुनराह तमेष भो सुभद्र ! भवतामधिवंशः ।
राजतामतिशयेन च राज-राजिरत्र बहुला सखिराज! ॥३६
माधवीप्रकृतिपूर्णमिवौकः कौतुकस्य नगरं खलु लोकः ।
आव्रजत्यपि यतः स्वयमेव श्रीमतां सुमुख किन्न मुदे वः ॥३७
प्रस्तरोच्चयमपात्पृथुसानोः सम्विवेचनमहो वसुभानोः ।
नैव साहजिकमस्ति यदेषा कर्त्तुमहर्त्तुं हृदा मृदुलेशा ॥३८
इत्यतः पृथुलराजसमूहात् संलभेत च वरं सुतनूहा ।
चेद्यदि स्खलितमत्र तदा किं कर्त्तुमर्हति भवान् सुविपाकिन् ॥३९
त्वद्विभुर्विभुषु वीक्ष्य वरार्हं तां ददत्त दुचिताय सदार्हन् ।
किन्तु किन्तदिह बुद्धमनेन नैव वेद्मि खलु वृद्धजनेन ॥४०

एतदुक्तमुपयुञ्ज्य जगादाथो महेन्द्रमतिराट् श्रुतवादान् ।
इत्यनेन हि भवादृगभीक्षा स्मादृशां भवितुमर्हति भिक्षा ॥४१
भाग्यवल्लिफलमेतदमुष्या अस्मदीयकरकार्यमनुस्यात् ।
यत्किलोपवनरक्षणतातिर्मालिहस्ततल एव विभाति ॥४२
हेऽपयोगगहनोदधिनावश्चित्तवृत्तिरधुना श्रुविका वः ।
कस्त्वदीश दुहितुर्भुवि योग्यः केन सन्मणिरसानुपभोग्यः ॥४३
इत्यमुष्य विनियोगमुवेतः कंचुकी समनुकूलितचेतः ।
प्राह चक्रिसुत एव विशेषस्तत्समो भवतु को न रवेशः ॥४४
इत्यवेत्य रविना ‡ निजगाद सत्तमोस्तु भवतामभिवादः ।
सन्तु दीर्घजनुपोऽत्र भवन्तः पूरयन्तु कुशलं भगवन्तः ॥४५
एवमस्ति पुनरादिसुतोपि तोषमेष्यति दुराग्रहलोपी ।
दापयामि भवते परितोषं सज्जनाक्षयमितः कुरु कोषं ॥४६
फुल्लदा न इतोभिजगाम यस्य दुर्मतिरितीह च नाम ।
सानुकूल इव भाग्यवितस्ति तद्भविष्यति यदिच्छितमस्ति ॥४७
पृष्टतः स्मरति कञ्चुकि आर्यः कीदृगस्ति मनुजोयमनार्यः ।
कस्य को वशकृदस्ति विचार्य सौहृदं तु सुहृदामथ कार्यं ॥४८
प्रत्युपेत्य स जगौ रविमेवं फुल्लदास्यकुसुमः सकृदेव ।
तद्भविष्यति यदेवमुदेवः ईशिता तु जगतां पुरुदेवः ॥४९
इत्यनेन वचसा हृदि मोदमप्युपेत्य गदितं च वचोऽदः ।
कौतुकेन भरतेशसुतस्यै-वं परस्परमनेकसदस्यैः ॥५०

‡ अर्ककीर्तिर्मनुष्यो दुर्मतिः ।

केनचिद्गदितमस्मदधीशः स्यादहो नववधू स मयीसः ।
मोदकान्यपि तदामहदस्मद्भाग्यमित्यनु पुनर्भविता स्मः ॥५१
इत्यमुक्तवति तत्र परस्मिन्नाह कोपि मदनोदयरश्मिः ।
केवलं न भविता मृदु भुक्तिः सम्भविष्यति च गीतनियुक्तिः ॥५२
येन कर्णपथतो हृदुदारमेत्य पूरयति सोमृतसारः ।
भूरिशः सरस एव सहासः सोन्वपूरिपरमो भुवि रासः ॥५३
निर्मलाम्बरवती मृदुतारा स्फीतचन्द्रवदनीयमुदारा ।
दृष्टुमपि हि सुरोचनिका वा प्रस्फुरज्जलजवत्पदभावा ॥५४
दर्शयत्यपि निजं पुलिनं तु वारिपूरवरमार्दववीर्या ।
आपगामगतलज्जमिवाङ्कं सङ्गमान्तरवती युवतीर्या ॥५५
वारिजे कमलिनीमलिनागः भूरि चुम्बतितरां धृतरागः ।
दीर्घकालकलितामिव रामा माननं सपदि कामुकनामा ॥५६
× पक्ववालसहिता खलु शालिकालिभिर्द्रुतमुपाद्रियते वा ।
याऽप + दन्तवचना जरती वा राद्घावृतपयोधरसेवा ॥५७
भूरि धान्य❀ हितवृत्तिमतीतन्नि† जरत्वमधिगन्तुमपीतः ।
सञ्चिका शयति या जडजातमप्युद❀ कमनुदयात्यथ वातः ॥५८
नीरमुज्वलजलोद्भवनिष्ठं प्रोल्लसत्तममरालविशिष्टं ।
सोमशोभिनभसो भयुतस्य तुल्यतामनुदधाति हि तस्य ॥५९

× परिपक्वैः शिरोभिः, श्वेतैः केशैर्वा ।
+ विपन्निवारिका, दन्तरहितमुखा च ।
❀ अनेकप्रकारेण परोपकारकर्त्री, अनल्पधान्यसंगाहिका च ।
† जलाभावं देवत्वं च । ❀ उद्धतमहं, भाविसमयं च ।

शीतरश्मिरिह तां रुचिमाप यां पुरा न हि कदाचिदवाप ।
इत्यतः पुलकितेव तमिस्राभ्यामपुष्टतरतां च भुवि स्राक् ॥६०
वीक्ष्य लोकमधिधिष्ण्यान्यधनेशमापतापमधुनात्र दिनेशः ।
तेन स्नास्य लघिमापि परेषामुन्नतेरसहनात् स्वयमेषा ॥६१
कन्यकां+ व्रजति भोक्तुमिवेष सन्निपत्यजडजेषु दिनेशः ।
अज्ञविश्वपथदर्शक एव दुष्प्रयोगवत्संस्मृतये वः ॥६२
भैरवश्यमपि यत्र नभस्तु भैरवस्य धरणीतलमस्तु ।
वाहनैः प्रमुदितैस्ततमेतत् कं निशासु कुमुदैः समवेतं ॥६३
स्वर्गतोऽपि समुपेत्य धरायामन्नमत्ति यदि पूर्वजमाया ।
वक्तुमाशु शरदो महिमानमस्तु किं वचनमत्र तदानः ॥६४
आश्विनो[] पलपनेन हि निष्ठा कार्तिका§ श्रितिरितोऽस्त्ववषिष्ठा ।
कौशरस्य समुपेत्य शुचित्वं शारदोदयरयेऽस्तु कवित्वं ॥६५
भरूपकरणायाथ वायसस्थितिहेतवे ।
अस्यां समानभावेन यतिवाचीव चान्वयः ॥६६
हलि* जनो बहुधान्यगुणार्जने मतिमुपैति च विप्लवलोऽवनेः ।
व्रजति वेदमतीत्य पुनर्वचः शिखिजनो‡न्यत एव तथा स च ॥६७

\+ कन्यानामराशि पुत्री च ।
[] आशु इनोपलपनेनेश्वरभजनेन आश्विनप्रारम्भेण च ।
§ का, अर्तिका श्रितिः कार्तिकाश्रितिश्चेति ।
* कृषीवलः, चाण्डालादिश्च ।
‡ केकिवर्गः हिन्दुलोकश्च ।

स्वर्गोदारमिदं चणं सुमनसामीशोपलब्धादरं,
यत्रोद्दामसुधाकरोद्भयविधिः सत्वप्रतिष्ठाक्षमः ।
वर्त्तेतापि पुनीतसारमधुरा पद्ममालयानां ततिः,
तिष्ठन्ती स्वयमापतानवनवारम्भाप्यमन्दस्थितिः ॥६८

(स्वयंवरमतिश्चक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाव्हयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
कान्ताप्तिप्रतिपत्तिसाधनतया सर्गश्चतुर्थोऽसकौ,
तत्प्रोक्तस्य समाप्तिमेति सरसः काव्यप्रबन्धस्य कौ ॥६९॥

इति श्रीवाणीभूषण-ब्रह्मचारि-भूरामलशास्त्रि-विरचिते
अर्ककीर्तिसमागमननामकः चतुर्थस्सर्गः ।

अथ पंचमः सर्गः

श्री स्वयंवरमवेत्य तदारात् देहदीप्तिकृतकामनिकाराः ।
शस्त्रशास्त्रविदि लम्भितपाराः प्रापुरत्र कुलजाः सुकुमाराः ॥१
दिक्षु शून्यतमतां वितरीतुं सत्तमैर्नृपसुतां तु वरीतुं ।
दर्शकैरपि परैरपहर्तुं तानितं तदितरैः परिकर्त्तुं ॥२
वात्ययात्यधिनि तूलकलापे तादृशी स्मरशरार्पितशापे ।
वेगिता तु समभूत्कृतचारे सा भुवामधिभुवां परिवारे ॥३
प्रेरितः सपदि चित्तभुवा यदंचति स्म न हि कोऽत्र युवा यः ।
कौतुकेन सह सम्पदलोपि न स्थितः सधरणेश्वकणोपि ॥४
कन्यका यदपकर्षणविद्याः ईश्वरा अपि विमुक्तनिषद्याः ।
काशिमाशु सकलाः समवाप राजतेऽतिविमलाः खलु यापः ॥५
सामदामविनयादरवादैर्धामनाम च वितीर्य तदादैः ।
आगतानुपचचार विशेषमेष सम्प्रति सकाशिनरेशः ॥६
तामपेक्ष्य वसुधा वसुरूपां प्रस्थितास्तु सकला दिगनूपाः ।
तत्तदङ्गिसमुपाङ्कितवाधानिर्वृतिं तु हरितामिति वाऽधात् ॥७
तैरकम्पनभुवा तुलितानि वीक्ष्य चित्रखचितानि भसानि ।
भूमिपैर्दिनमनाथिनिशापिततस्फुरच्छयनभवादृशाणि ॥८
दूतहूतिमुपगम्य समस्तैः सोऽपरेद्युरिह तत्सुखमस्तैः ।
सारिताभरणभूषणसारैर्मण्डपोऽप्यलमकारि कुमारैः ॥९

आत्मताद्रुपनयन्निह भूपान दर्पकोऽतिकुशलान् समरूपान् ।
स्वस्य नाम बहुरूपमिदानीमाह सार्थकमनुत्तरमानी ॥१०
रूपयौवनगुणादिकमन्यैः स्वं जनोऽथ तुलयन्निह धन्यैः ।
रक्तिमेतरमुखं सरटोक्तं नैकरूपमयते स्म तथोक्तम् ॥११
सस्मयौ सपदि काशिसु भूमावेव देव ! जगतां नृपभूमा ।
ऋद्धिरस्तु वरदानरधातुस्सापितान्समयते स्म तु यातु ॥१२
सातिसंकटतया नरराजां लंघनाशयविलंबनभाजां ।
सन्ददौ विचलदञ्चलपाकाऽऽह्वानननन्तु नृपसौधपताका ॥१३
आसनेषु नृपतीनिह कश्चित्सन्निवेशयति स स्म विपश्चित् ।
द्वास्थितोरविकरानवदात उत्पलेषु सरसीव विभातः ॥१४
भोग उत्तमतमो भुवि दारास्तेषु रत्नमियमेव ससारा ।
तत्र भोगिपदयोगिकलापः युक्तमेव पुनराशु समाप ॥१५
सत्तरङ्गतरलैर्निजिकेन्द्रादागता हयवरैस्तु नरेन्द्राः ।
तावतैव हि हयाननवर्गः प्राप्तवानभिनिबोधनिसर्गः ॥१६
मानिनोऽपि मनुजास्तनुजायामागता रसवशेन सभायां ।
जायते सपदि तत्र किमूहः स्वागतः खलु विमानिसमूहः॥१७
चित्रभित्तिषु समर्पितदृष्टौ तत्र शश्वदपि मानवसृष्टौ ।
निर्निमेषनयनेऽपि च देव व्यूह एव न विवेचनमेव ॥१८
सेवकेऽपि समभूद्गुणवर्गः पाटवाभरणविभ्रमसर्गः ।
तं स्म येन जनतामनुतेऽरं नायकं कमपि सुन्दरवेरं ॥१६
यत्कुलीनचरणेषु च तेषुच्छायया परिगतेषु मतेषु ।
उद्गतः सुमनसां समुदायः काल एव सुरभिः समियाय ॥२०

मासि मासि सकलान्विधुबिम्बान् स्मात्मभूस्तिरयते श्रितडिम्बान् ।
सन्निधाय विबुधः समनीषामाननानि रचितुं स्विदमीषान् ॥२१
नो वृषाङ्कविभवेन पुराथ पञ्चतामुपगतो रतिनाथः ।
सन्ति साम्प्रतमिमाः प्रतिमास्तु सृष्टिदृष्टिविषयाः कतमास्तु ॥२२
ईदृशे युवगणेऽथ विदग्धे का क्षती रतिपतावपि दग्धे ।
नानुवर्तिनि रवौ प्रतियाते दीपके मतिरुदेति विभाते ॥२३
वेशवानुपजगाम जयोऽपि येन सोऽथ शुशुभेऽभिनयोऽपि ।
लोकलोपिलवणापरिणामः नीरमीरयति च स्म स कामः ॥२४
राजमान इह राजनि एतैर्बाहुजैः सदसि तत्र समेतैः ।
जल्पितं जगति नामनिजं यत्क्षत्रमत्र न पुरस्सरमेतत् ॥२५
द्राक् पपात तरणाविवपद्मानन्ददायिनि जये स्मयसद्मा ।
दृष्टिरभ्युदयभाजि जनानां तेजसाञ्च निलये भुवनानां ॥२६
स्थातुमत्र हृदयं तरुणानामातिथेयविलसत्करुणानां ।
द्वन्द्विताऽजनि बृहद्गुणराजोस्सोमकुसुमसायकभाजोः ॥२७
राजराजिरिति दूषणभृष्टिरुत्तरोत्तरगुणाधिकसृष्टिः ।
स्मैति या भुवनभूषणकृत्तां मौक्तिकावलिरिवायतवृत्ता ॥२८
या सभा सुरपतेरथ भूतासौ ततोऽपि पुनरस्ति सुपूता ।
साऽधरा स्फुटममर्त्यपरीताऽसौ तु मर्त्यपतिभिः परिणीता ॥२९
तत्र कश्चन कविर्गुरुरेक एक एव हि कलाधरटेकः ।
अत्र सन्ति कवयो गुरवश्च सर्व एव हि कलापुरवश्च ॥३०
मादृशा खलु दृशागुणगीता कापि नापि परिषत्परिपीता ।
ज्ञायते च न भविष्यति दृश्याभूत्रगाति शयिनी बहुशस्या ॥३१

सौष्ठवं समभिवीक्ष्य सभाया यत्र रीतिरिरिति सारसभायाः ।
वैभवेन किल सज्जनताया मोदसिन्धुरुद्‌भूज्जनतायाः ॥३२

काशिभूपतिरहो बहुदेशाभ्यागताः कथममी सुनरेशाः ।
वर्ण्यभावमनुयान्तु सुतायामित्यभूत्स्थलमसावकितायाः ॥३३

तत्तदाशयविदाथ सुरेण भाषितं नृपसकुचिचरेण ।
राजराजिचरितोचितवक्त्री विश्वमेव सदसीह भवित्री ॥३४

भूरि भूशकलवासिनराणां वंशशीलविभादिवराणां ।
वेत्सि देवि (!) पदमर्हसि तत्त्वं मौनमत्र न हि ते खलु तत्त्वं ॥३५

इत्यमुष्य पदयोः रज एषा शासनं किल बभार सुवेशा ।
देवतापि नु +मया खलु बुद्धिर्मस्तकेन विनयाश्रितशुद्धिः ॥३६

आगता सदसि सा खलु बाला गानमानविलसद्‌गलनाला ।
दृष्टिसृष्टिविषयेषु विशाला आदरानुगतमानवमाला ॥३७

या विभाति सहजेन हि विद्या तन्मयावयविनी निरवद्या ।
एतदीयचरितं खलु शिक्षा वा जगद्धितकरी सुसमीक्षा ॥३८

केशवेश इह ×पन्नगसूत्री सा श्रुतिस्तु भवताच्छ्रुति ‡पुत्री ।
वक्त्रमत्र खलु +सोमविचारं हास्यमस्यति [शितांशुकसारं ॥३९

ओष्ठ एव †मरुणाम्बरजल्पस्सत्कुचो भवति ||कुम्भककल्पः ।
दृष्टिरेव लभते चणिकत्वं हस्तयुग्ममथ पल्लवतत्त्वं ॥४०

+नाम्ना । ×सर्पः पक्षे नागदत्ताचार्यः । ‡ वेदः । + चन्द्रः पक्षे सोमनामाचार्यः । [चन्द्रमाःपक्षे श्वेताम्बराचार्यः । † लोहितीकृताकाशः पक्षे रक्ताम्बराचार्यः । || घटः कुम्भकनामवायुश्च ।

सन्त्रयीतुवलि* पर्वविचारा श्रोणिरेव हि ¶गुरूक्तिरुदारा ।
कामतन्त्रमथवास्ति जघन्यं शून्यवादमुदरं वद धन्यं ॥४१
अन्ततां स्फुटमनेकपदेन यान्ति सम्प्रति गुणाः प्रमदेन ।
नास्तिकत्वमथ दुर्गुणभारः संतनोति सुतरामतिचारः ॥४२
उल्लसत्कुचयुगव्यपदेशादेतदीयहृदये तु विशेषात् ।
वाच्यवाचकयुगन्धरमेतद्राजते कनककुंभयुगं तत् ॥४३
यत्सुवर्णकलितं ललितं स्याद्वृत्तरूपचरणश्रुतमस्याः ।
ऊरुयुग्ममिदमेव तु सत्यं वृत्तभावमनुविन्दति नित्यं ॥४४
आयतं जगति वृत्तसुरूपं वैधधर्मपथयुग्मनिरूपं ।
भ्राजते भुजयुगं खलु देव्या या समस्ति चतुरैरपि सेव्या ॥४५
एतदीयरदनच्छदसारौ पूर्वपक्षपरपक्षविचारौ ।
वक्तुरप्यपरवक्तुरुमाङ्गैः शोभितौ स्वधृतपक्षसुरागैः ॥४६
सत्यतारकपदप्रतिमानौ यौ समीक्षितपरस्परदानौ ।
निश्चयेतरनयौ हि सुदृत्या नेत्रतामुपगतौ प्रतिपत्या ॥४७
सात्रिसूत्रि अपि तत्र कुतस्स्याच्चेत्कुतं नगलकन्दलमस्याः ।
वाद्यगीतनटनोचितसारैस्तच्छ्रुतात्समवकृष्य विचारैः ॥४८
तां गभीरचरितां स्फुटमध्यात्मश्रुतिं द्व्यणुकमञ्जुलमध्या ।
द्रागनङ्गसुखसारविधात्रीमेति नाभिमतिसुन्दरगात्री ॥४९
भात्यसावुदिततारकवृत्ताऽङ्केन किञ्च कलितोचितसत्ता ।
हारयष्टिरपि सद्गलनाले ज्योतिषां श्रुतिरिवाद्य सुकाले ॥५०

* त्रिवलियुक्ता, वेदविचारिका च ।

¶ स्थूलतरा, बृहस्पतिनिषाणी च ।

साऽवदन्नृप ! सुमङ्गलवेलासौ शुचस्तु भवतादवहेला ।
ईदृशामिह महीमहितानां वृत्तमङ्ग विवृणोमि हितानाम् ॥५१

त्वत्सहोदरनिदेशविधात्री तत्पुनर्भवदनुग्रहपात्री ।
एकया व्यवहृता यदि मात्रा भिद्यते नृप न जातु विधात्रा ॥५२

श्रीपयोधरभराकुलितायाः संगिरा भुवनसम्विदितायाः ।
काशिकानृपतिचित्तकलापी सम्मदेन सहसा समवापि ॥५३

मोदनोदयमयः प्रतिभार्दैः प्रस्तुतं स्तुतमनिन्दितपादैः ।
काशिभूमिपतिरारभमाणः सोऽभवत् सपदि सत्पथशाणः ॥५४

दुन्दुभिर्ध्वनिमसावनुतेने व्योमसर्पिणमिमं खलु मेने ।
मोदनोदनिधिगर्जनमेप किन्तु मानवमहापरिवेशः ॥५५

निर्जगाम नृपनाथतनूजा स्त्री न यामनुकरोति तु भूजा ।
पार्श्वतः परिमितालिविधानादेवतेव हि विमानसुयाना ॥५६

यापि कापि उपमा सुदृशः स्यात्सैव ‡नित्यमपकारपराऽस्याः ।
सैव +वाककविवरैरुदिता या सङ्गतास्ति न परा मुदितायाः ॥५७

कौतुकाशुगसुलास्यविधाने रङ्गभूमिरियमित्यनुमाने ।
सूत्रधार इह सौविद एवासौमहेन्द्रयुतदत्तसमाव्हा ॥५८

भूषणेष्वरुणनीलसितानामश्मनां द्विगुणयत्यभियाना ।
अङ्गसंगमितभाभिररेपान् ×कुङ्कुमेणमदचन्दनलेपान् ॥५९

---

‡ अयोग्या, पकारवर्जिता वोपमा, उमेत्यर्थः ।

+ कथिता कविभिः सैवाथवा उकारेण रहिता, उमैव मा लक्ष्मीरिति । × अनल्पान् ।

†अन्दुभिस्तु पुनरंशुकराजैः सान्द्ररत्नलसदंशुलभाजैः ।
नावकाशममुकां नृकलापः क्वापि सम्यगिति पातुमवाप ॥६०
पूर्वमत्र जिनपुङ्गवपूजामाचचार नृपनाथतनूजा ।
यत्र भूत्रयपतेरथ भक्तिः सैव सम्भवति सत्कृतपक्तिः ॥६१
तत्र मुक्तिललना वरमारादादरात्समभिषिच्य च +वारा ।
सा तया स्वतनुमाशु सिसेच प्रस्तुताथ रुचिरेऽवसरे च ॥६२
×कौतुकानुकलितालिकलापाऽऽमोद+पूरितधरामृदुरूपा ।
तत्स्वयंवरवनं निजगामासौ वसन्तगणनास्वभिरामा ॥६३
पुष्परूपधनुषा स्मर एनं जेतुमर्हतु जयं गुणसेनं ? ।
शक्रचापममुकाय ददाना स्वान्दुरत्नरुचिजं मृदुयाना ॥६४
नित्यमेतदवलोकनकर्त्री दृष्टिरस्तु न विकारसवित्री ।
भूभृतामिति सचामरचारः पार्श्वयोरिह बभौ स विहारः ॥६५
दृष्टिराशु पतिता विमलायां नव्यभव्यरजनीशकलायां ।
कौमुदादरपदातिशयायां प्रेक्षिणी ननु नृणामुदितायां ॥६६
नो हृदेव न दृशैव विशोकैः किंतु पूर्णवपुषैव हि लोकैः ॥
मज्जितं सुदृशि तत्र मदेन भूपणानुगतबिम्बपदेन ॥६७
सन्निमेषकदृशा खलु पातुं रूपमम्बुजदृशो ननु जातु ।
जृंभणाच्छलितयाऽरमशक्तैराननं विवृतमित्यनुरक्तैः ॥६८
प्रौढतामुपगतानि विभूनां मानसानि खलु यानि च यूनां ।
*ताम्रचूडपरिवाद्यकरावैर्जाग्रतिन्तु गतवन्त्यनुभावैः ॥६९

† भूषणैः । + जलेन । × विनोदपूर्णसखियुक्ता, पक्षे पुष्पानुगतषटपदयुक्ता । + हर्षः सुगन्धश्च । * वाद्यविशेषः कुक्कुटश्च ।

वीक्ष्यतामथ विभाकरमूर्तिं, संयुयुस्तु पुनरुत्थितिपूर्तिं ।
लोमकानि सहसा सकलानि ‡बाल्यभाञ्जि अपि सम्मति तानि ।।७०
स्वान्तपत्त्रिणि यतोऽत्र वरतुं श्रीदृशस्तनुलतामभिसतुं ।
जृम्भिताननवतामिह यासौ प्रेरिकैव चटकी †समियासौ ।।७१
दृक्संक्रमिताप्सरस्सु॥ यूनामनिमेषकता* मवापदूना ।
आलिसु सुधाधुनीं पुनरेनाम्प्राप्य []सफरतामितेत्यनेनाः ।।७२
युवमनसीति वितर्कविधात्री सुकृतमहामहिमोदयपात्री ।
सदसमवाप मनोहरगात्री परिणतिमेति यया खलु धात्री ।।७३
विजित्य बाल्यं वयसात्र विग्रहे महेशसाम्राज्यमहोत्सवे च हे ।
कुचच्छलेनोदयिमोदकद्वयं स्मराय दत्तं रतये पुनः स्वयं ।।७४
जितात्करत्वेन विपयात्तमग्रजं निजं भुजाभ्यां कलितं विभाव्यते ।
श्रियो निवासोऽयमहो कुतोन्यथा कुतश्च लोकैः कर एप गीयते ।।७५
अहो महोदन्वति यत्र सम्भवा भवावलिं संस्कुरुते रते रमा ।
रमा समासादितसंक्रमासकौ स कौ ×क भव्यो रसराजसागरः ।।७६
स्मरो नरोऽसौ †विजयैकतत्परो निधर्पकुण्डीनचतुण्डिकेत्यरम् ।
न रोमराजिर्मुशलीति ते पपुः तदेतदस्यामद मन्दिरं वपुः ।।७७
येनाप्यमुष्याश्चरणद्वयस्य यत्साम्यसौभाग्यमवाप्तमस्य ।
साम्राज्यमासाद्य सरोजराजेः पद्मः प्रसिद्धः खलु सत्समाजे ।।७८

---

‡ केशत्वयुक्तानि शिशुत्वसहितानि च ।
† भ्राजिष्णौ । ॥ जलयुक्तसरोवरेषु स्वर्गवेश्यासु वा ।
* रुषतां पद्मो देवत्वं वा निमेषाभावतां वा ।
[] वृद्धरुषतां जन्मसाफल्यं च ।
× पृथिव्यां । † विजया भङ्गा तल्लीनः विजयपरायणश्च ।

संग्रह्य सारं जगतां तथात्रासौ निर्मितासीद्विधिना विधात्रा ।
इतीव क्लृप्ता उदरेऽपि तेन तिस्रोऽपि रेखास्त्रिबलिच्छलेन ॥७९
आस्येन चास्याश्च सुधाकरस्य स्मितांशुभास्तातुलया धृतस्य ।
ऊनस्य नूनं भरणाय *सन्ति लसन्त्यमूनि प्रतिमानवन्ति ॥८०
जित्वा त्रिलोकीं विशिखत्रयेण मुक्तं पुनर्व्यर्थतया स्मरस्य ।
दृग्देशवेशाच्छरयुग्यमेतन्नासापदेशास्तिलपुष्पतूणं ॥८१
क्षेत्रे पवित्रे सुदृशः समस्य भ्रूभङ्गदम्भादपि दर्पकस्य ।
चापार्थमारोपितशस्यनासावंशस्फुरत्पत्रयुगं स्वभासा ॥८२
यन्मूर्धजैः सार्द्धमधीरदृष्ट्यास्तुलैंपिणस्सा च मरीचसृष्ट्यां ।
स्वबालभारस्य च बालभावं वदत्यदः पुच्छविलोलनेन ॥८३
कामोऽभिरामोऽपि मृतो महेश नये नयेनापि तु जीव्यते सः ।
रसोऽधरस्यास्य पुनीततन्तुः मुधा सुधां ते विबुधाः पिबन्तु ॥८४
का कोमलाङ्गी बलये धराया †धाकोऽप्यपूर्वप्रतिभोऽमुकायाः ।
पाकोऽथवा पुण्यविधेरनन्यः नाकोऽनुयोत्रैव समस्तु धन्यः ॥८५
+वयोऽभियुक्तेयमहोनवालता*कराधरांघ्रिष्वधुना प्रवालता ।
उरोजयोः कुड्मलकल्पकालता रदेषु मुक्ताफलताऽथवाऽऽगता ॥८६
जितापि रम्भा †विधुजन्मदात्री कुतोऽथ *साचाघनसारपात्री ।
सुवृत्तभावादि बलेन चोरुयुगेन तन्व्याः सुकृतायतोरुक् ॥८७
×किमिन्दिरासौ ननु साकुलीना कलाविधोः सा न कलंकहीनाः ।
रती सतीयं ननु सा न दृश्या प्रतर्कितं राजकुलैः स्विदस्यां ॥८८

---

* उडूनि । ‡ प्रभावः । + नवयौवनपूर्णा, पक्षिसंकुला च ।
* बाल्यवर्जिता, नूतनलता च ।
† कर्पूरः । * पुण्यवती, कर्पूरानुत्पादिका च । × लक्ष्मीः ।

सभावनिर्धौ तु विभाविचारतः स योऽपि नाकः समुदेति मानवान् ।
रसातलन्तूत्तलसातलं पुनर्जगत्त्रयं चैकमयं समस्तु नः ॥८६
शूरा बुधा वा कवयो गिरीश्वराः सर्वेऽप्यमीर्मङ्गलतामभीप्सवः ।
कः सौम्यमूर्तिर्ममकौमुदाश्रयोऽस्मिन्संग्रहे स्यात्तु शनैश्चराम्यहम्॥६०
अभ्यागतानभ्युगपम्य सुभ्रुवः श्रीदक्परीदक्ततया धवान्भुवः ।
साऽभूत्समन्तादनुयोगनर्तिनी ह्रीणापि हृष्टापि तु चक्रवर्त्तिनी ॥६१
कराधिकत्वेन यथोत्तरं तरां प्रवर्तमानेऽपि विधौ समुत्तरा ।
अपूर्वरूपाम्बुधितोऽपि साऽभवद्दृग्गुत्तमापारमितेव सुभ्रुवः ॥६२
वीक्ष्य शिक्षणकृतादरणीयाऽथ न गणनीयतया गणनीयान् ।
असुमत्वात्सुमताशुतयापि कौशरभावात्सुवृत्ततापि ॥६३
कुरीन् तरुणाश्रितां वरत्तुं विवरणार्थमुदितामुपकर्त्तुं ।
सम्पल्लवललितां सभावनीमनुबभूव कारिकां पावनीं ॥६४
वाग्वालिकायाः स्फुटदन्तरश्मिरभिव्रजन्त्यामिव संपरीतिः ।
समुज्ज्वलाकालतया बभूव सुधावधीनासदृशीदृशीति ॥६५
मनो ममैकस्य किलोपहारः बहुष्वथान्यस्य तथाऽपहारः ।
किमातिथेयं करवाणि वाणिः हृदेऽप्यहृद्येयमहो कृपाणी ॥६६
जयेति मातः प्रणयं ममाप्त्वा सम्प्लावयेऽहं सहसा समाप्त्वा ।
एकेन सम्बद्धमुदोऽलमेतैः किं राजकैर्भूरितया समेतैः ॥६७
सुवृत्तभाजो ग्रहणाय वामां भुवीत्यपूर्वामपरस्य हा मां ।
राज्ञामतः पंचदशीं धिगेव किमभावं सा गुरुवाग्युगेव ॥६८
भयान्विताहं परिपत्तयातः कुतस्तु पारं समुपैमि मातः ।
बालस्य वाऽऽलस्य सहोनतातः मिदंघ्रिरुक्तः खलु पंकजातः ॥६९

बिधानमाप्त्वा कमलं करिष्णोरप्यभ्रमालोकतया चरिष्णोः ।
सम्मेदमापाऽऽदरमुद्रणाशा देव्या मुखाम्भोरुहमुद्रणासा ॥१००
कः सौम्यमूर्तीति जयेति सूक्ती शुक्तीशुभे त्वकवलोपयुक्ती ।
सत्कर्तुमेवोदयते समुद्रः न कोऽपि नायात इतोस्त्यशुद्रः ॥१०१
किमिष्यते मेकगतिश्च सूक्ता श्रीराजहंस्यास्तव वारिमुक्ता ।
पथाप्यथादीयत इष्टदेशः खलोपयोगाद् गवि दुग्धलेशः ॥१०२
मुदश्रुसन्तानयुगस्तु कश्चित्त्वया यदैवाङ्गसमस्ति नश्चित् ।
परेष्वपि स्पष्टमुदश्रुवाहा सभा भवन्त्या न किमादरार्हा ॥१०३
अभूदियं भूरि नभास्वतस्तु सभा पुनः सत्समवायवस्तु ।
हृतान्धकालास्तु सुते नवीना तदास्ययोगादथ कौमुदीना ॥१०४
त्वमिष्यते सप्रतिपद्धरातरेऽद्वितीयतामञ्चकराधरे वरे ।
समृद्धये शीघ्रमनङ्गदर्शिकेऽथ मादृशामत्र दशा हि हर्षिके ॥१०५
स्वङ्गीयूनां कामिकमोदामृतधारां,
यच्छन्ती यद्वद्विकलानां कमलाऽरम् ।
बन्धूकौष्ठीनामिकमापालय गर्भं,
भव्यं स्वङ्गं यन्नवगोराजिरशोभं (सौराररशोभं) ॥१०६
(इत्येतच्चक्रबन्धारावृत्तैः स्वयंवरारम्भ इति स्वविषयःनिर्दिष्टः)
श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुपुवे भूरामलोपाव्हयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
प्रोक्ते तेन जयोदये गुणमयेऽलङ्कारसम्पन्नकौ,
सर्गः सम्व्रजति स्वयंवरविधिः श्रीपंचमश्चासकौ ॥१०७

इति श्री वाणीभूषण-ब्रह्मचारि-भूरामल - शास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये स्वयंवरवर्णनो नाम पंचमः सर्गः

अथ: षष्ठः सर्गः

सासौ विदेरितारान्नृपपुत्रेषु स्म वैजयविचारा ।
सुदृगमुषु दृगन्तशरैर्विलसति किल तच्चिणकोणधरैः ॥१
कमुपैति सपदि पद्मा शिवसद्मा किन्न गुणभृद्गमां ।
इत्येवमभिनिवेशात् द्वन्द्वमतिस्तेषु परिशेषात् ॥२
विनयानतवदनायाः सुमतिसखीनामतो यथा छाया ।
क्रमतो वसुधामहितानाह नृपानत्र पार्श्वमिता ॥३
विनयानतवदनाया स्म दक्षिणाबुद्धिरत्र तनयायाः ।
वरदासान्वसभायात् प्रतिपक्षहरा भुवि शुभाषाः ॥४
बहुलो †हतया दयितान् सखी स्वयं शुद्धभावनासहिता
क्रमशो ‡वसुधामहितानाहामुष्यै तु + पार्श्वमितान् ॥५
अन्ववदत् सा कञ्चुकिसूचितमपि साम्प्रतं पदैः ललितैः ।
सूत्रार्थमिव च विद्यानन्दमतिश्लोकसंकलितैः ॥६
सुनमिसुविनमिप्रभृतीन्दक्षेतरखेचरात्मजाँस्तु सती ।
सुदृशं सुदर्शयंती प्राह प्राक् पाणिनाऽवन्ती ॥७
गगनाञ्चानां कोटिर्येषामेषा प्रथक्कथा मोटी() ।
कंचिद् वृणीष्व यञ्चित्धावति ते स्वजनजितविपक्षैः ॥८

---

† अनेकतर्कणायुक्ततया बहुलाया स्त्वया च ।
‡ वसुधया महितान् वसु-धामहितान् च ।
+ समीपं स्वर्णकरपाषाणं च ।
() सविस्तरा ।

नगौकसश्चारवर्वे× पक्षद्वयशालिनः खगाः सर्वे ।
मन्त्रोक्तपदा एवं+विक्रममुपयान्ति च मुदेवः ॥९
किममीषां विषयेऽन्यत्पवित्र※कटिमण्डले च निगदामि ।
•सुरतानुसारिसमयैर्वामानवविस्मयायामीः* ॥१०
⊛वैद्योपक्रमसहितान्तत्र न भोगाधिभुव इमान्सुहिता ।
तत्याज सपदि दूरान्मधुराधरपिंडखर्जूरा ॥११
चालितवती स्थलेऽत्रामुकगुणगतवाग्वि तु सुनेत्रा ।
कौतुकितमेव वलयं साङ्गुष्ठानामिकोपयोगमयं ॥१२
यानजना अनपन्ताम्बरचारिभ्यो धराचरकुलं तां ।
कमलेभ्यः कुमुदशिवं शशिकिरणाहासभासमिव ॥१३
अनुकूले सति चरभे विदाम्मुखाब्जानि रेजुरिह सत्या ।
प्रतिकूले म्लानान्यपि तस्मिन् मूर्त्तेः प्रभावत्त्याः ॥१४ ॥
चक्रिसुतादीँश्च रसाद्राजतुजोभूचरानभादरसात् ।
सा स्थललक्षणसुगुणादिभिः क्रमादाह च प्रगुणा ॥१५
भरतेपतुगेप तवाभरतेः स्मरवत्क्रिमर्ककीर्तिरयम् ।
अम्भोजमुखि ! भवेत्सुखि आस्यं पश्यन्सुहास्यमयं ॥१६
को राजावनिभाजां येन कृतोमुष्य नाधुना विनयः ।
अतुलप्रभावतोऽस्माद्भयान्वितो※भानुरपि कदयः ॥१७

× अन्यूनावयवे । + पराक्रमं, पक्षिस्वभावं च । ※वज्रतुल्यमध्ये । •स्त्रीप्रसंगः सुरभावश्च । * वामानां नविस्मयाय वा मानवानां विस्मयाय । ⊛ विद्याविलासयुक्तान्, वैद्यकृतचिकित्साधारान् वा ।
※ प्रभया युक्तः भयभीतश्च ।

भुवनेन मातुमुचितं चितमस्य मरालबालवाक्सुहिते ।
तत्तुल्यनामधारिणि वारिणि सञ्चरति रतितुलिते! ॥१८
अयमन्वर्थकनामा राजीव कुलप्रसादकृद्धामा ।
यद्दर्शनेन *कैरवकदम्बको म्लानिमानभवत् ॥१९
इत्येवमर्ककीर्त्तेः पल्लवमतिहल्लवं स्म जानाति ।
स्मरचापसन्निभभ्रूः कटुकं परमर्कदलजाति ॥२०
भ्रूभङ्गमङ्गजाया लिङ्गं तदनादरेऽम्बिका साऽयात् ।
तस्मिन्पर्वणि तमसा रभसा दमितोऽभितोऽर्कयशाः ॥२१
गिरमपरस्मिन्निष्टे महाशये साशये न निर्दिष्टे ।
सारयति स्माभिनये शृणु इति सुकेशेशयेष्टशये ॥२२
अयमिह कलिङ्गराजः कलिङ्ग इव ते पयोधरासारं ।
पश्यति शस्यतिलांके नश्यतु तृष्णाप्यमुष्यारं ॥२३
सुन्दरि कलिङ्गजानां कलिङ्गजानां शिरःश्रियाश्रयतात् ।
पीवरपयोधरद्वयरयेण येन स्थितोदयता ॥२४
कोपापेत्ती करजितवसुधोऽयं भूरिधाकथाधारः ।
शैलोचितकारि च भवानिह+कम्पमुपैति रिपुसारः २५
×चतुराणां चतुराणामतुच्छतुष्टिं न यन्नयन्तु सभाम् ।
तनुतेऽनुतेजसा स्वां ÷कलिङ्गराजाभिधां सुलभाम् ॥२६

---

* वैरिवर्गः कुमुदसमूहश्च ।

\+ ककारं पकारमिनि यानि यथा कोषापेत्तीत्यत्र पोषापेत्तो ।

× अन्वयकृदन्ततद्धितोणादिभेदेन चतुःप्रकारशब्दयुक्तां मधुरभाषिणीं ।

÷ कलिङ्गश्चतुर इति ।

स्फुटमिह कलिङ्गतानां राजानममुं विचार्य सद्धीतिः ।
पातयति स्म न दृशमपि पातयतिं तर्कयन्तीति ॥२७

सुरभिममुं यान्यजना निन्युः स्थानान्तरं तरां जवतः ।
लक्ष्मीवतः सुमनसां प्रमुखादति मारुता हि ततः ॥२८

वागाह तदनुबाहुर्निजबाहुर्निवारितारिपरिवारं ।
स्वपुपं गुणैकवपुपं स्मरवपुपं निस्तुषमुदारं ॥२९

स्मररूपाधिक एषोऽस्ति कायरूपाधिपोथ च मनोज्ञा ।
रतिमतिवर्तिन्यस्यादस्यासि च वल्लभा योग्या ॥३०

काष्ठागतपरमार्थं विभूतिमान् तेजसा दहत्यवशः ।
तेनास्याशयरूपं स्वतो भवति भस्मशुभ्रयशः ॥३१

यत्पादयोः पतित्वान्यभूपकरकुड्मलं व्रजति बाले ।
रत्नत्रयसंसूचकचित्रकरुचिमवनितलभाले ॥३२

अनुनामगुणममुं पुनरहोरहोवेदिनीमनीषाभिः ।
नत्वापसापदोषाप्यनङ्गरूपाधिकं× भाभिः ॥३३

नमति स्म स जन्यजनो भगीरथो जन्हुकन्यकां सयशाः ।
सुकुलाद् भूभृत इतरं कुलीनमपि भूभृतं सुरसां ॥३४

उक्तवती सुगुणवतीदरवलिताङ्गं तदामि मुख्येन ।
अन्यमनन्यमनोज्ञं पश्यावनिपं सुमुख्येनं ॥३५

काञ्चीपतिरयमार्ये काञ्चीमपहर्त्तुमर्हतु तवेति ।
काञ्चीफलवदिदानीं द्विवर्णतां विभ्रमादेति ॥३६

× अनङ्गरूपा गुह्यस्थानगता आधिपीड़ा यस्य सोऽनङ्गरूपाधिस्तथा स्वार्थे कप्रत्ययः ।

निर्दहति महति तेजसि भूमिपतेर्दारुणा× हितप्रान्तान् ।
अशनिशनिपितृप्रमुखान् स्फुलिंगानेमिस्थत्थाँस्तान् ॥३७

दुग्धीकृतेऽस्य मुग्धे यशसा निखिले जले मृषास्ति सता ।
पयसो द्विवाच्यतासौ हंसस्य च तद्विवेचकता ॥३८

रणरंणोर्ध्वू सरितं क्षालितमरिदारदृग्जलेनेति ।
पद्युगमस्यान्यमुकुटमणिकिरणैश्चित्रतामेति ॥३९

गुणसंश्रवणावसरे विजृम्भणे नानुसूचिनीं शस्तां ।
उचितं चक्रुरिलापतिमितरं जन्यानयन्तस्तां ॥४०

अंसोपरिस्थशिविकावंशैर्मितमिङ्गितं च चारायाः ।
पुरतस्थभूपभूषामणिषु प्रतिमावतारायाः ॥४१

पुनरनुकाचिलराजं जनोकया तर्जनीकयात्र सती ।
देव्या तदावदाता जगदे जगदेकरूपवती ॥४२

अयिकाबिलराजोऽयं शस्यद्युतिमत्त्वमस्य पश्य वपुः ।
सखिचूडामणिमेनं यथाभिधं कविकुलानि पपुः ॥४३

द्विडकीर्तिः कालिन्दी सुरसरिदस्याथ कीर्तिरवदाता ।
सुभटास्तयोः प्रयागे सुखाशया सन्निमज्जन्ति ॥४४

कामशरैरनुविद्धान्सुगव्हरां पार्वतीं श्रितान् स च तान् ।
हिमनिर्मलगुण एकस्ततान तानप्रसिद्धगुणान् ॥४५

एतत्कीर्तेरग्रे तृणायितं चन्द्ररश्मिभिश्च यतः ।
जीवति किलंणशावोऽसावोजस्के तदङ्कगतः ॥४६

× भयङ्कराणां वैरिणां प्रान्तान्, दारुणा काष्ठेनाहिताः प्राप्ताश्च प्रान्तास्तान् ।

द्राक्षादिसाररसनाद्रसनाभिके सरसमेतत् ।
द्विगुणय च दशनवसनं निवसनमुपगम्य तद्देशे ।।४७
अस्यावलोक्य वदनं स्वपदाङ्गुष्ठाग्रदृक् सुजनचक्रे ।
त्रपयेव सम्भवन्ती द्रागाशयमाविरा चक्रे ।।४८
कस्य यमस्य कृते वरमविलक्षणदानवीरमिति सरात् ।
तत्यार्जनमिदानीमतिसरलदृगञ्चला बाला ।।४६
व्यसनादिव साधुजनो मतिमनिविशदांतश्च तामकृशः ।
अपकर्षति स्म शिबिकावाहकलोकश्चकोरदृशं ।।५०
अभिमुखयन्ती सुदृशं ततान सा भारती रतीन्द्रवरे ।
वसुधा सुधानिधाने मधुरां पदबन्धुरामपरे ।।५१
अङ्गाधिपतिः सोऽयं लावण्यासारसारपूर्णाङ्गः ।
यस्यावलोकने खलु मदनश्चानङ्ग एवाङ्गः (?) ।।५२।।
पततो नृपतीन् पदयोरुदतोलयदेव पाणियुग्मेन ।
तन्मौलिशोणमणिगणगुणितास्य करांघ्रिरुक्तेन ।।५३।।
मद्गजवमथुभिरुदिते तुपारवारेऽरिणोऽनुकम्पन्ते ।
म्लायन्ति तद्वधूनां मुखारविन्दानि जगदन्ते ।।५४।।
विनयभृदुन्नतवंशः सुलक्षणोऽसौ विलक्षणोक्तजनुः ।
बिलसति च न लसद्यास्यो लावण्याङ्कोऽपि मधुरतनुः ।।५५।
एतन्नृपगुणवर्णनमास्वादयितुं हृदीव दृग्युगलं ।
वालान्यमीलदम्बुजमालाजयनामसम्पदलं ।।५६।।
चक्षुर्जगत्प्रदीपात्ततश्च तामुदयिनीं सुवंशां साः ।
भानोरिव सोमकलां कुमुद्वती कन्दसुकृतांशाः ।।५७।।

तद्दिशि संसक्तकरा नरान्तरं संशशंस मृदुवचसा ।
अपघनघटनातिशयैर्वागपि जितरतिपतिं किल सा ॥५८॥
सिन्धुपतिं धुरमेनं धीराणां बन्धुरं च सहजेन ।
सिन्धुमिवातिगभीरं वन्धुनिबन्धाधरे वीर ॥५६॥
निपतन्ति रणे मुक्ताः सूक्तारिपुसम्पदः श्रमलवा वा ।
हलगजकुंभेभ्यो यत् प्रतापतो हन्त भयभावात् ॥६०॥
लिखिता यशःप्रशस्तिर्विशालवक्षः शिलासुसंपश्य ।
निजनिजकराग्रटङ्कोट्टङ्कै ररिर्योवर्तर्यस्य ॥६१॥
समरं विचिन्तयन्नमिरसादसौ कामिनीकुचं जगति ।
मृष्ट्वा कठिनकठोरं करतलकण्डूतिमुद्धरति ॥६२॥
इति विश्रुतगुणगणनागणनामविचारसारमग्नमनाः ।
चालयति चालयति का शिरस्तिरः स्म भ्रमाद्रि मनाक् ॥६३॥
बहुगुणरत्नात्तस्माद्देवा इव यानवाहकाश्च वलात् ।
पुरुपोत्तमयोग्यामपनिन्युः कमलामिवापमलां ॥६४॥
विस्मेरथा न च मनाक् नृपेपु सजपेपु रागिणी भुवि या ।
पुनरन्यभाणि तनयाऽनया नयान्निर्णयाय धिया ॥६५॥
अयमिह वंगाधिपतिर्गंगेव तरङ्गिणी यशः स्फूर्तिः ।
अवतरिता भुवि यस्याखण्डतयासंप्रसृतमूर्तिः ॥६६॥
तरल × तरीपविशिष्टोऽनुकर्णधाराशुगेन‡ सन्तरति ।
नरतिलकोरणजलधिं युक्तोऽरित्रेण❀ विशदमतिः ॥६७॥

× खड्गः नौका च । ‡ वाणो वायुश्च । ❀ परवारनिवारकः ढाल इति भाषायां, नौकाप्रवहणकाष्ठश्च ।

पाहीति न निगदन्तं दृष्ट्वाऽधरमात्मनोऽपि सरुपन्तं ।
राज्ञोऽस्य संपराये सन्तिष्ठन्ते प्रतीपाये ॥६८॥
युवतिस्तनेषु रंगे रणे च रिपुमस्तकेषु नरशस्यः ।
स्फीतिं भीतिं क्रमशः कुरुते +करवार एतस्य ॥६९॥
अधरं रसालरसिकः पीत्वा तव गुणविवेचनाकृषिकः ।
कुर्यात्कौतुकतस्तन्नामव्यत्ययमथो शस्तम् ॥७०॥
एतद्गुणानुवादादासादितसम्मदेव सा तनया ।
हसितवती तदवसरे तदवज्ञानैकहेतुतया ॥७१॥
गन्धाधिकृतावयवां सुमञ्जरीं वांघ्रिपाद्वनपजातः ।
नृवरेण स्पृहणीयां यान्यजनस्तां निनायातः ॥७२॥
पुनरवददेव तां साधिदेवताऽसाग्रसारणेयंदोः ।
जयति रिपुततिन्तु झगिति विनिभालयभालयमकेन्दो ॥७३॥
जगतामनुरागततिस्तनावहो पीत ÷ नाञ्चना लसति ।
अयमस्तिरति प्रतिमे काश्मीरपती रतीशमतिः ॥७४॥
असकौकलादवादः सुभागसामर्थ्यतोऽपि भागवति ।
निजतेजसाऽजगाची दुर्वर्णं वा सुवर्णयति ॥७५॥
यान्ति कृताञ्जलिभावं जीवनदं जीवदाभियाऽऽतङ्कात् ।
यद्घटितादयमर्हति स राजरुक्पूर्वरूपत्वं ॥७६॥
काश्मीरजनरभर्त्तुर्घनसारसमन्वयं समुद्धर्त्तुं ।
अपघनरुचोचिताया कथमत्र रुचिं सुदृक् साऽयात् ॥७७॥

+ हस्तसम्पातः खड्गश्च । ÷ केशरविलेपनं ।

स्त्रीभावचालितपदां यांचामिव निर्धनाञ्जनो धनिनं ।
सुदृशं निनाय शिबिका-धुर्यगणोऽतः परं गुणिनं ॥७८॥
भूयो बभाण बालां बालप्रमितोग्रदारकान्तिमसौ ।
तनये मन एतस्मिन् कुरु कुरु देशाधिपे नृपतौ ॥७९॥
पुरुषोत्तमस्य वाहनमस्य समालोक्य युक्तमिति लसति ।
भुवि दर्पमर्पयित्वा सुदूरमहितत्वमपसरति ॥८०॥
आजिषु यत्करवालैर्हयखुरक्षोदितासु सम्पतितं ।
वंशान्मुक्तावीजं पल्लवितोऽतो यशो द्रुरितः ॥८१॥
प्रेयान् गभीरहृत्वात्समुद्रवत् सज्जनक्रमकरत्वात् ।
लावण्यखचितदेहो न दीनतालम्बनस्तेऽहो ॥८२॥
श्रुत्वास्य समुद्दिष्टं खलु ताम्बूलावशिष्टमुच्छिष्टं ।
निष्ठीवति स्म सति कासारसविषमधुरदोर्लतिका ॥८३॥
तामपरं निन्युरतो विमानधुर्यास्तु नृपतिमभिरामां ।
मिथ्यात्वात् सम्यक्त्वं यथामतिं करणपरिणामाः ॥८४॥
एकैकमपूर्वगुणं हित्वा परमपरमवनिपं यान्ती ।
पुनरप्यभाणि बुद्धया सा यस्या अद्भुता कान्तिः ॥८५॥
त्वममुष्यापि सवर्णालिमन्यया हे सुकेशि वर्णनया ।
कर्णाटाः साधूनां यस्य गुणा वर्णनीयतया ॥८६॥
तनुते तपतु मेतत् प्रतापतपनो द्विपक्षस्थले सुजनि ?
नयनोत्पलवारिजलैः प्रपां ददात्यरिवधूव्रतिनी ॥८७॥
न हि भवति भवति मदनः प्रवर्तमानेऽत्र कान्तिमत्तन्तुः ।
दश्यतमोऽयं बाले कुसुमेपुरदृश्य इह किन्तु ॥८८॥

वाणीति सदानन्दा भद्रा कीर्तिश्च वीरता विजया ।
रिक्तार्थिका च लक्ष्मीः पूर्णा त्वं ज्योतिरीशस्य ॥८६॥
प्रचकार चकोराक्षीस्वलघ्रवणपूरयोजनोद्भूतिं ।
तद्गुणश्रवणसम्भवदरुचितया कर्णकण्डूतिं ॥६०॥
शिवकावाहकलोकोऽपकर्षति स्माङ्गजा ततोऽप्यहितात् ।
मुनिजन इव संसारात् निजचेतोवृत्तिमिति सुहितां ॥६१
उद्दिश्यापरमूचे सदसोऽङ्कं सासुरी च कृतसूचेः ।
रसिकासि कामिकान्ते + किममुष्मिन् कान्तिभरतान्ते ॥६२
मालवरिष्टो मालवपतिर्नृपोऽमुष्य मञ्जुगुणवस्तु ।
मालतिकोपमिततनोपरत्र भो मालवोऽप्यस्तु ॥६३
न क्षतमेत्यपि समरी यावज्जनरञ्जनव्रती समरीन् ।
रक्तवतश्च विरक्तान् कृत्वा सत्वानुत च भक्तान् ॥६४
पश्यैतस्यैतादृक् रूपं शुचिरुचिरमग्रतो गण्यं ।
इतरस्य जनस्य पुनर्लावण्यं भवति लावण्यं ॥६५
कुन्ददती संसदि यद्वैरिमुखं भवति अपि कुमुदवन्धुः ।
शनकैः कुमर्पयित्वाऽमुष्याग्रे तदपि मुदवन्धुः ॥६६
विलसति *कर्कन्दुगणः किमिति न कुमुदाशयश्च× संकुचति
विनतो भवति †समुद्रो राज्ञि किलास्मिन् पुनलसति ॥६७
निभृते गुणैरगुण्यैरावन्धमिवापनैणदृक् च तथा ।
स्युर्दैवे विपरीते परुषाण्यपि पौरुषाणि वृथा ॥६८

+ रतितुल्ये । * बन्धुवर्गः कमलवृन्दं च ।
× वैरी कैरवदेशश्च । † सम्पत्तिशाली वारिधिश्च ।

ये ये तु समायाता अवधराधीश्वराः परेऽप्यनया ।
सर्वेऽपि कीर्तितास्ते देवतया चतुरया तु रयात् ॥९९

समुदयमापापि तु न क्वचिदेवं पार्थिवेषु तेषु पुनः ।
चपलात्मनो मनस्या मेघेश्वरवाञ्छया तस्याः ॥१००

तत्तद्विरागमुदितं शिबिकाधस्थानवाहिनो ददृशुः ।
अध्युषितनृपतिमलिनाननानुलिङ्गादतश्च कृपुः ॥१०१

अखिलानुल्लंघ्य जनान् सुलोचना जयकुमारमुपयाता ।
माकन्दचारकमिव पिकापि का सा मधौ ख्याता ॥१०२

सा देवी राजसुता चेतो यत्तदनुकूलकं लेभे ।
मेघेश्वरगुणमाला वर्णयितुं विस्तराद्रेभे ॥१०३

अवनौ ये ये वीरा नीराजनमामनन्ति ते सर्वे ।
यस्मै विक्रान्तोऽयं समुपैति च नाम तदखर्वे ॥१०४

सद्वंशसमुत्पन्नो गुणाधिकारेण भूरिशो नम्रः ।
चाप इवाश्रितरचक एष च परतचकः काम्रः ॥१०५

जलदासारनिपाते जातेऽपि च भूतले मुहुस्तरसा ।
तेजस्सारदमनु सा प्लुष्टं दैवतमथास्य रसात् ॥१०६

धवलयति क्ष्मावलयं वृद्धद्वारास्य भोऽमृतपुरधरं ।
गुणगणनाङ्कनिपातः क्षणोति कठिनीं च कीर्तिमरेः ॥१०७

भुजगोऽस्य च करवीरो द्विषदसुपवनं निपीय पीनतया ।
दिशि दिश मुञ्चति सुयशः कञ्चुकमिति हे सुकेशि रयात् ॥१०८

करवारवारिधारायमुनास्य+ ह्लादिनी यशःख्यातिः ।
वृद्धोदया प्रयागं सरस्वतीमं निबध्नाति ॥१०६

सुन्दर्यासक्तमनाः कोदण्डभृदेष विश्वसिद्धयशाः ।
अयमिव सहसामुष्य च शत्रुर्मुक्तादिवर्णवशात्× ॥११०

देशान्तरेऽस्ति कीर्तिः बहुवृद्धे मा गिरौ पुनर्महिला ।
नवयौवनात्वमुचिता निःशत्रोः शूरता शिथिला ॥१११

शोणोऽधरस्तु बाले सरस्वती तन्मयं मुखं चाथ ।
चित्रं जडतातिगतोऽसौ जातो वाहिनीनाथः ॥११२

वाजिनं भजति तु भजति मुञ्चति कोपं च मुञ्चति अरातिः ।
त्यजति क्षमां त्यजत्यपि वर्द्धे र्पोऽस्मिन् यथा ख्यातिः ११३

त्रिभुवनपतिकुसुमायुधसेनायाः स्वामिनी त्वमथ चेयान् ।
भरताधिपबलनेता तस्मात्ते स्याज्जयः श्रेयान् ॥११४

तव चैष चकोरदृशो दृश्योऽवश्यं च कौमुदाप्तिमयः ।
सोमाङ्गजो हि बाले सतां वतंसः कलानिलयः ॥११५

एतस्या खण्डमहो मयस्य बाले जयस्य बहुविभवः ।
बलमण्डो भुजदण्डो वसुधाया मानदण्ड इव ॥११६

सर्वत्र विग्रहे योऽनन्यसहायो व्यभात् स चेह स्यात् ।
तव विग्रहेऽद्य मदनं सहायमिच्छत्यधीरतया ॥११७

यदि चेज्जयेषिणी त्वं दृक्शरविद्धं ततः शिथिलमेनं ।
अयि बालेऽस्मिन् काले सृजावबन्धाविलम्बेन ॥११८

+गंगा । ×मौक्तिकादिवर्णतावान्, जयः, सर्वेषु छन्दशब्देषु प्रथमाक्षररहितश्च शत्रुः, यथा सुन्दर्यासक्तामना इत्यत्र दर्यासक्तमना इत्यादि ।

मालां जयस्य निगले वदति क्षेप्तुं किल स्मरः स्मर मां ।
निषिषेधापत्रपता द्वयोश्च साज्ञामुवाह समां ॥११९
हृद्गतमस्या दयितं न तु प्रयातुं शशाक तत्राक्षि ।
सम्यक्कृतस्तदानीं तयाक्षिणि लज्जेति जनसाक्षी ॥१२०
भूयो विरराम करः प्रियोन्मुखस्सन् स्रगन्वितस्तस्याः ॥
प्रत्यायर्यो दृगन्तोऽप्यर्द्धपथाच्चपलतालस्यात् ॥१२१
अभ्यर्च्यो भवति पुमानित्येव विशेषदर्शिनी मनु मां ।
स्वीकृतवती स्थलेऽत्राप्युत्पलविजिगीषु मृदुनेत्रा ॥१२२
मोदकमिति तु जयमुखं सख्यास्यं सूपकल्पितं तादृक् ।
रसितवती सामि पुनः क्षुधिते वसुलोचना यादृक् ॥१२३
इत्यत्र कुमुद्वत्याः कर इन्दीवरसुमालया स्फीतः ।
ननु संध्ययेव सख्य! जयस्य मुखचन्द्रमनुनीतः ॥१२४
तस्योरसि कम्प्रकरा मालां बाला लिलेख नतवदना ।
आत्माङ्गीकरणाक्षरमालामिव निश्चलामधुना ॥१२५
सम्पुलकिताङ्गयष्टे रुद्गीवाणीव रेजिरे तानि ।
रोमाणि बालभावाद्वरश्रियं दृष्टुमुत्कानि ॥१२६
वरमाल्यस्पृशि हस्ते जयस्य सिप्रं चकार सहृदयभूः ।
सूत्रमिव भाविकन्या-दानजलस्याचिरं सद्भूत् ॥१२७
हृदये जयस्य विमले प्रतिष्ठिता चानुविम्बिता माला ।
मग्नामग्नतयाभात् स्मरशरसन्ततिरिव विशाला ॥१२८
अभिनन्दिनि तदवसरं गगनं स्वगनन्दिगन्धर्वेऽनुसजत् ।
दुन्दुभिनिनाददम्भाज्जहास हा सत्वरं त्वरजः ॥१२९

जय इह सुलोचनाया एतदुदन्तं दिगङ्गना नेतुं ।
दुन्दुभिनादः सहसा समजायत समुदितो हेतुः ॥१३०
अखिलानां भूमिभुजां मुखश्रियः सोमसूनुमुखपद्मे ।
अनुकर्त्तुमिव च पद्मां सत्वरमधुना समाजग्मुः ॥१३१
प्रान्तपाति मधुलिड् मधुपानां स्वश्रियः खलु मुदश्रुनिभानां ।
वीक्ष्य मेलमनयोरिह शातमभ्रतस्ततिरहो निपपात ॥१३२
अभ्याप सुस्नेहदशाविशिष्टं सुलोचना सोमकुलप्रदीपं ।
मुखे सुसत्तां सुतरां समाप सदञ्जनं चापरपार्थिवानां ॥१३३
नृव्रातोऽभिनवं मदं समचरत् धारान्तु वन्द्यावलिः,
पंचाश्चर्यपरंपरा समभवत्स्वर्लोकतः सद्रुचा ।
पद्मावाप्तिसमात्तमुच्चमणिभिः सम्पत्तिमर्थिष्वयं,
यच्छन्सन्नृप आप वस्त्रपगृहं रिष्टोरुचर्चो जयः (वडरं चक्रं) ॥१३४
(इति चक्राराणामग्राक्षरैः नृपपरिचय इति सर्गविषयनिर्देशः कृतो भवति)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाव्हयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरीदेवी च यं धीचयं ।
अव्येऽस्मिन्नरराजराजिभिरसौ शस्ते प्रणीतेऽमुना,
सर्गः श्रीजयभूमिपालचरिते षष्ठः समाप्तोऽधुना ॥१३५

इति श्री वाणीभूषण-ब्रह्मचारि-भूरामलशास्त्रि—विरचिते जयोदय महाकाव्ये षष्ठः सर्गः

अथ सप्तमः सर्गः

अथ दुर्मर्षणः स्वस्य नाम कामं समर्थयन् ।
दौरात्म्यमात्मसात्कुर्वन्नूनाह द्रोहकरं वचः ॥१

पद्मया जयकण्ठेऽसौ मालाऽमलगुणालया ।
मुधा बुधा भ्रमन्त्यत्र प्रत्यक्षेपि* क्रियापदे ॥२

इदं करमिदं वेद्मि नैव किन्तु स्वयम्वरं ।
मालां किलाक्षिपद्बाला परानुज्ञानतत्परा ॥३

निजाहंकारतो व्याजोऽकम्पनेनायमूर्जितः ।
अहो मायाविनां माया मा यातु सुव्रतः स्फुटि॥ ४

अङ्गजामीरयन्नेतन्नाम्ना प्रागेव धूर्तराट् ।
अद्यावमानं कृतवान् युगान्तस्थायिनन्तु नः ॥५

कुतोऽन्यथामुकस्यैत्रासाधारणतया गुणः ।
भूरिभूपालवर्गेऽपि वर्णितोऽस्ति विदाननात् ॥६

इत्येवं घोषयन्नुच्चैराव्हयन्नात्मदुर्विधिं ।
वचः फल्गु जजल्पेति प्राप्य चक्रितुजोऽग्रतः ॥७

चक्रवर्ति×सुतत्वेन मणि† काद्यभिमानतः ।
त्वया व्यवहर्तव्याद्य कीर्तिरेव= परं विभो ॥८

---

* प्रतिक्षिप्तेति यावत् ।

× सार्वभौमः कुम्भकारश्च । † रत्नं पातिली च ।

= यशः कर्दमं च ।

वृद्धिस्थाने गुणादेशात् सहस्रांशुककीर्तनं ।
सम्यगुल्कलितं राजन्नत्र कान्ततया ÷ त्वया ॥९

त्वामर्ककीर्तिमुत्सृज्य सोमात्मजमुपाश्रिता ।
पद्माभिधाविधासौ तु मुधाहो प्रकृतेर्बुधा ॥१०

सौंदर्यसारसंसृष्टिं भूभूपां कन्यकामिमां ।
कः किलार्हति भूभागे त्वयि भूतिलके सति ॥११

ईदृशो भूरिशो भृत्यास्तव भो भारताङ्गभूः ।
यस्मै दत्त्वा यमाशंसी कन्यारत्नमकम्पनः ॥१२

कन्यासौ विदुषी धन्या गुणोत्तणविचत्तणा ।
कुलेन्दोच्छन्दसि च्छन्द उपेक्षां किन्तु नार्हति ॥१३

प्रत्येतु नैनमेकोऽपि बभूव कपटं पटुः ।
अहो धूर्तस्य धूर्तत्वं धूर्तवज्जगदश्विति ॥१४

अन्यथानुपपत्याहं गतवाँस्त्वदनुज्ञया ।
स्वातन्त्र्येण हि को रत्नं त्यक्त्वा काचं समेष्यति ॥१५

कम्पनोऽयं जराधीनो भजते दण्डनीयतां ।
अधुनाशु ततो भूमौ हे कुमार यमातिथिः ॥१६

कल्यां + समाकलय्योग्रामेनां भरतनन्दनः ।
रक्तनेत्रो जवादेव बभूव त्तीवतां गतः ॥१७

दहनस्य प्रयोगेण तस्येत्थं दारुणेङ्गितः ।
दग्धश्चक्रिसुतो व्यक्ता अङ्गारा हि ततो गिरः ॥१८

÷ राजनामस्थाने रजक इति नाम स्त्रीकृतं । + मदिरां वारुणीं च ।

प्रत्यङ्मुखे सखे स्यन्दे रोषो मे प्रागिहोदितः ।
हन्तुं किन्तु सकं मन्तुं युक्तः स्यादिति सम्वृतः ॥१६
अहो प्रत्येत्ययं मूढ आत्मनोऽकम्पनाभिधां ।
नावैति किन्तु मे कोपं भूभृतां कम्पकारणं ॥२०
गाढमुष्टिरयं खड्गः कवलोपसंहारकः ।
सम्प्रत्यर्थी × च भूभागे इयात्सत्वमितः कुतः ॥२१
राज्ञामाज्ञावशोऽवश्यं वश्योऽयं भो पुनः स्वयं ।
नाशं काशीप्रभोः कृत्वा कन्यां धन्यामिहानयेत् ॥२२
धारापातस्तु दूरेऽस्तु यन्मे सत्कन्धरात्मनः ।
तदेतद्राजहंसानां गर्जनं हि विसर्जनं ॥२३
निःसार इह संसारे सहसा मे सदार्चिषः ।
नाथ सोमाभिधे गोत्रे भवेतां भस्मसात्कृते ॥२४
तस्य मे पुरतस्तावत्स्थिते + पत्वेन वा जने ।
के खड्गं रेफसं* लब्ध्वा तर्पा भवतु जीवने ॥२५
वात्यययात्ययभृन्मेघस्तं विजित्य जयोऽसकौ ।
मेघेश्वराभिधां लब्ध्वा गुरूणां गर्वितां गतः ॥२६
अद्य युद्धस्थले धैर्यं दृश्यतेऽमुष्य तेजसः ।
मम वा यमवाक् सन्धाकारयाऽऽयुधधारया ॥२७
नार्थक्रियाकरो वीरपट्टो माणवसिंहवत् ।
गुरूणा कल्पितत्वेन युक्त एव पुनः सतां ॥२८

× सम्यक्प्रत्यर्थी वैरी, सम्प्रति अर्थीति च ।

+ गर्विष्ठत्वेन षकारत्वेन च । * भयंकरं रकारं च ।

तुलाधिरोपितो यावदवमानाश्रयोऽपि सन् ।
जडोऽपि नावनौ तिष्ठेत् क्व पुनश्चेतनः पुमान् ॥२९
दीपस्तमोमये गेहे यावन्नोदेति भास्करः ।
स्नेहेन दीप्यतां तावत्कादृशा स्यात् पुनः प्रगे ॥३०
सद्योपि कृतविद्योहमुद्योगेन जयश्रियं ।
मालां चोपैमि वाहां हि नीतिविद्योभिनन्दति ॥३१
अनवद्यमतिर्मन्त्री चित्तवित्तं प्रबुद्धवान् ।
अत्रान्तरे ह्यपृष्ठोपि समिच्छन्स्वामिनो हितं ॥३२
सृष्टेः पितामहः स्रष्टा चक्रपाणिस्तु रक्षकः ।
संहर्तुमुद्यतः सद्यस्ताभनां प्रथमाधिपः ॥३३
यासि सोमात्मजस्येष्टामर्ककीर्तिश्च शर्वरीं ।
हन्ताप्यनुचरस्य त्वं क्षत्रियाणां शिरोमणिः ॥३४
कुमाराद्य यमाराते जातु चिन्नात्र शंसयः ।
मुक्त्वा क्षमामिदानीन्तु जयं जयसि जित्वरः ॥३५
सेवकस्य समुत्कर्षे कुतोऽनुत्कर्षता सतः ।
वसन्तस्य हि माहात्म्यं तरूणां कुसुमश्रियां ॥३६
राज्ञो राजश्रियाः श्रीमन् नाथ सोमाभिधे भुजे ।
अत्यये च तयोश्चासावकिञ्चित्करतां व्रजेत् ॥३७
प्रजायाः प्रत्युपायेऽस्मिन्नपायमुपपद्यते ।
भवादृशो भ्रमादन्यः प्रत्ययः को निरत्ययः ॥३८

आत्मजः कोपवानत्र भरतस्य क्षमापतेः ।
समञ्चषि श्रीकुमार ! ‡दीपतुत्थकथां वृथा ॥३९
दरिद्रो वास्तु दीनो वा कुलीनः केवलं भवेत् ।
स्वयंवरसभायान्तु बालावाञ्छा वलीयसी ॥४०
चक्रं च कृत्रिमं चक्रे चक्रिणो दिग्जये जयं ।
जय एवायमित्यस्मात्तस्यापि स्नेहभाजनं ॥४१
पूज्यः पितुस्तवाप्येषोऽकम्पनः पुरुदेववत् ।
कृत्येऽस्मिँस्तु महानेवं गुरुद्रोहो भविष्यति ॥४२
लज्जाय जायते नैषा सती दारान्तरोत्थितिः ।
जयतेऽप्यजयत्वेन त्वनः कल्पान्तसंस्थितिः ॥४३
नानुमेने मनागेव तत्थ्यमित्थं †शुचेर्वचः ।
क्रूरश्चक्रिसुतो यद्वत् पयः पित्तज्वरातुरः ॥४४
आहूयमानः स्वावज्ञां ब्रुवन्कर्मानुगं मनः ।
प्रत्युवाच वचो व्यर्थमर्थशास्त्रज्ञतास्मयी ॥४५
क्षमायामस्तु विश्रामः श्रमणानान्तु भो गुण ।
सुराजां राजते वंश्यः स्वयं माञ्चक्रमूर्धनि ॥४६
विनयो नयवत्येवातिनये तु गुरावपि ।
अमापणं जनः पश्येन्नीतिरेव गुरुः सतां ॥४७
स्वयंवरं वरं वर्त्म जाने नानेनमग्रहः ।
किन्तु मन्तुमिदं ग्राह्यतया कारितवान् कुधीः ॥४८

‡ अञ्जनं । † मन्त्रिणः ।

साधारणधराधीशान् जित्वापि स जयः कृतः ।
द्विपेन्द्रो नु मृगेन्द्रस्य सुतेन तुलनामियात् ॥४९
नो सुलोचनयानोऽर्थो व्यर्थमेव न पौरुषं ।
द्व्यर्थभावविरोधार्थं कर्मशर्मवतां मतं ॥५०
श्रेयसे सेवकोत्कर्षः सदादर्शोऽस्तु नः पुनः ।
ईर्षा यत्र समाधिः सा सेव्यसेवकता कुतः ॥५१
हितेच्छुश्चेद्गणोच्छूनामग्रतो व्यग्रतोत्तरं ।
इत्येवं वाक्क्रमस्माकं साकं मा वद भावद ॥५२
मारकेशदशोविष्टोऽवमत्य श्रीमतामृतं ।
प्रत्युतादग्रदोपोऽभूद् भूविना मरणाय सः ॥५३
यः कलग्रहसद्भावसंयुक्तोऽत्र समाहितः ।
योगवाहतयान्योऽपि बुधवत्क्रूरतां श्रितः ॥५४
प्राप्य कम्पनमकम्पनो हृदि संजगाम खलु मंत्रिसंसदि ।
विग्रहग्रहसमुत्थितव्यथः पान्थ उच्चलति किं कदा पथः ॥५५
प्रेपितश्चर इतोऽवतारणकरणेऽर्कपदयोः सुधारणः (?) ।
मौलिशोणमणिभिः समन्तुविदश्रुकज्जलत आलिखद् भुवि ॥५६
नीरपूर इव संचरंश्चरच्छिद्रपूरणविचारतत्परः ।
प्राप भूभृदुपदेशतः पुनः सज्जवारिनिधिमित्युनुस्वनः ॥५७
कोपराध इह मङ्गलेऽभितः क्षम्यतामिति विमत्युपार्जितः ।
विश्वपालनपरो नरो यतस्त्वं कुमार जनमारणोद्यतः ॥५८
सदुदयप्रलयमानयञ्चनमद्य सद्य इव भो बृहन्मनः ।
देववादमुपशम्य तन्महादेवतामुपगतो भवानहा ॥५९

कः सदोप उपसंक्रमोऽत्र यच्चक्रवर्तिसुविनोदनोदयः ।
संप्रसीद कुरु फुल्लतां यतः कम्पितास्तु स्वरदण्डभावतः ॥६०
दूतसंलपितमेवमेव तत्स्नेह उष्मकलिते जलं पतत् ।
तस्य चेतसि सुरोषणे जयत्तां चटत्कृतिमथोदपदयत् ॥६१
भारती परमसारतीरया शर्करेव तव तर्करेखया ।
चारतीर्थ (?) खलु कारतीरयाद् दर्शनेऽपि रसनेऽपि मेऽनया ॥६२
काशिकाधिकरणो महानितः सम्भवत्यपि समेथमानितः ।
साम्रतोर्मिरुचितैव हे चर त्वं पुनः परमुदासि किंकरः ॥६३
यन्यतेऽथ मदपत्य सेजसा सार्पिताकमलमालिकाऽञ्जसा ।
मूर्च्छितास्तु न जयाननेन्दुनातावतार्ककरतः किलामुना ॥६४
साम्प्रतं मुखलताप्रयोजनात् पश्य यस्य तनुजा सुरोचना ।
त्वद्दशांवरदरंगतः प्रभु दूत रे वृषभ इत्यसावभूत् ॥६५
दुश्चिकित्स्यमवधारयन्बुधः साचिजल्पितमनल्पितक्रुधः ।
सामतः स तु विरामतः सदुत्साहपूर्वकमितः किलामृदु ॥६६
किन्तु भूरिबलतैव साधनमिष्यतेऽत्र विजयस्य सज्जन ।
स्वानुजेन भवतः पिता जितः केवलेन सरथाङ्गवानितः ॥६७
चेतसीति च गतो मदम्भवान्कच्चिदस्मि भटकोटिलभ्यवान् ।
स्वानुजेन भवतः पिता जितः नैककेन किमु चक्रवानितः ॥६८
कच्चिदस्मि भटकोटिलभ्यवाँश्चेतसीति च गतो मदम्भवान् ।
नानुजेन भवतः पिता जितः केवलेन किमु चक्रमानितः ॥६९
सेवकः स उदितो विभुर्भवान् किन्न वेत्ति समऽतिमानवान् ।
जीतिरेव च परीतिरेव वा तस्य ते च तुलना कुतोऽथवा ॥७०

अर्कतापपरिणतावतर्कतासंयुतेन दधता यथार्थताम् ।
मेघमानित ऋतौ विनश्यता भातु तूलफलता त्वयोद्धता ॥७१
शम्पया स च बलाहकस्तया युक्त एव भविता प्रशस्तया ।
हेतवार्कपरिहारहेतव इत्युदीर्य स विनिर्गतोऽभवत् ॥७२
अभ्युपेत्य निजगौ वचोहरः प्रेरितैणपतिवक्त्रयक्षरः ।
दुर्निवार इति नैति नो गिरश्चक्रवर्तितनयो महीश्वर ॥७३
भूरिशोऽपि मम संप्रसारिभिरौर्ववन्नृप समुद्रवारिभिः ।
किं वदानि वचनैः स भारत भूपभूर्न खलु शान्ततां गतः ॥७४
अर्क एव तमसावृतोऽधुना दर्शयस्व इह हेतुनाऽमुना ।
एत्यहो ग्रहणतां श्रियः प्रिय इत्यभूदपि शुचा सविक्रयः ॥७५
सम्वहन्नपि गभीरमाशयमित्यनेन विपमेन सज्जयः ।
केन वा मलयजेन सिन्धुवत्क्षोभमाप निलयाऽथ यो भुवः ॥७६
पन्नगोऽयमिह पन्नगोऽन्तरं इत्यवाप्तबहुविस्मयाः परं ।
सन्तु किन्तु सपतत्पतेरलमास्य उत्पलमृणालपेशलः ॥७७
हृच्छुचन्तु महनीय नीयते ऋक् सुधा किमिति नात्र पीयते ।
न्यायिनां यदनपायिनां प्रभुः सर्वतोऽपि भवितैव शर्मभूः ॥७८
किं फलं विमलशील शोचनाद्दत्तसात्त्विकतया सुलोचनाम् ।
तं वलीमुखबलं बलैरलं पाशबद्धमधुनेक्षतां खलं ॥७९
नीतिरेव हि बलाद्बलीयसी विक्रमोऽध्वनि मुखस्य को वशिन् ।
केशरी करियरीति कृद्रयाद्धन्यते स शबरेण हेलया ॥८०
नीतिमीतिमनयो नयन्भयं दुर्मतिः समुपकर्षति स्वयं ।
उल्मुकं शिशुवदात्मनोऽशुभं योऽन्हि वाञ्छति हि वस्तुतस्तु भं ॥८१

ज्ञातवानहमिहेतदर्थकं प्राग्घि सामकरणं निरर्थकं ।
प्रस्तरेऽशनि धनोचितेऽशकिन् टङ्क एव गरराट् क्रमेत किं ॥८२
स्थीयतां भवत एव पद्मया यो जितो भवतु सद्विषन्नमया (?) ।
अस्मि संप्रसितमां पुरोहितः संप्रणीत पृथुतेजसाञ्चितः ॥८३
संप्रयुक्तमृदुसूक्तमुक्तया पद्मयेव कुरु भूमिभुक्तया ।
संवृतः श्रममुषा रुषा रयाच्चक्षुषि प्रकटितानुरागया ॥८४
सोमसूनुरुचितां धनुर्लतां यः पुनः प्रवर इष्यते सतां ।
श्रीकरं च करवाणभूषितां शुद्धवंशजनितां गुणान्वितां ॥८५
तस्य शुद्धतरवारिसञ्चरे शौर्यसुन्दरसरोवरान्तरे ।
ईक्षितुं श्रियमुदस्फुरद्भुजा शौचवर्त्मनि गुणेन नीरुजा ॥८६
राजमाप इव चारघट्टतः भेदमाप कटकोऽपि पट्टतः ।
यस्ततस्तुदररूपधारकः सम्भवन्निह स सूपकारकः ॥८७
सोमजोज्ज्वलगुणोदयान्वयाः सम्बभुः सपदि कौ मुदाश्रयाः ।
येऽर्कतेजसवशंगताः परे भूतरं कमलतां प्रपेदिरे ॥८८
तत्र हेमसहिताङ्गदादिभिः स्वैः सहस्रनयनैः सुराडभी ।
निर्जगाम सुतरामकम्पनस्तत्सहायमरिवर्गकम्पनः ॥८९
श्रीधरार्यमसुहृत्सुकेतुकादेवकीर्तिजयवर्मकावकान् ।
दूरगानयस्योत्थसम्मदास्सद्बलेन जयमन्वयुस्तदा ॥९०
किञ्च मेघसहितप्रभोऽग्रणीखेचरः कतिपयैः खगाग्रणी ।
मेघनाथकृतयेव तं ययौ सम्बले स्वयमिहोच्चलद् ययौ ॥९१
सम्विदम्बर इहालिभिः किणधारिणः किल पुनीतपक्षिणः ।
स्वैरमाविहरतोऽस्य दक्षतां शिक्षितुं स्वयमपूरिपक्षता ॥९२

नाथवंशिन इवेन्दुवंशिनः ये कुतोऽपि परमपत्तशंसिनः ।
तैरपीह परवाहिनीधुताकृच्छ्रकाल उदिता हि बन्धुता ॥९३
भूरिशः स्खलितदुर्हृदायुधा अस्ति नीतिरियमित्यमी बुधाः ।
मेरुवत्स्थिरतरास्तनुर्निजावर्मयन्ति च वरं स्म बाहुजाः ॥९४
स्वीयबाहुबलगर्विता भुजास्फोटनेन परिनर्तितस्वजाः ।
सम्बभूवुरधिपाः सदोजसः बद्धसन्नहनकाः किलैकशः ॥९५
सम्मदाद्व्रणपरैर्हि निर्घृणैः प्रस्फुरद्विगतमंगव्रणैः (?) ।
सुष्ठु शौर्यरससम्मितैस्तदा रेजिरे परिधृताउरश्छदाः ॥९६
हृदाप्यदङ्गमनुपङ्गतोऽङ्गना वीक्ष्य सन्नहनरोधिसन्मनाः ।
कस्य चित्खलु मनोभवोद्भवदङ्कुरैर्द्रुतमितस्तिरोऽभवत् ॥९७
रेजिरे रदनखण्डितौष्ठया हस्तपातकलितोरुकोष्ठया ।
निर्गलत्सघनधर्मतो यया तेऽञ्चिताः खलु रुपा सरागया ॥९८
निर्गमेऽस्य पटहस्य निःस्वनः व्याप्य दिशो नभसि सत्वरं घनः ।
येन भूभृदुभयस्य भीमयः कम्पमाप खलु सत्वसञ्चयः ॥९९
सत्तरङ्गमतुरङ्गमञ्जुला निर्मलध्वजनिफेन चञ्चुलाः ।
मत्तवारणमदप्रवाहिनी निर्ययौ जयनृपस्य वाहिनी ॥१००
अश्रुनीरमधुना सकज्जलमादधौ रिपुवधूपयोधरः ।
दिक्कुलं खलु रजोऽन्वितं तदुत्पानमस्य गमनेऽरयो विदुः ॥१०१
स्यन्दनैस्तु यदकृष्यतात्र भू वाजिराजशफटङ्कणाप्यभूत् ।
दानवारिभिरपूर्यतासकृत् मत्तहस्तिभिरमुष्य हेर्थकृत् ॥१०२
स्वर्णदीपयसि पङ्ककूपतश्चन्द्रमस्यपि कलङ्करूपतः ।
गीयते मदमितीन्द्रसद्गजमस्तके जयबलोद्धतं रजः ॥१०३

वस्तुतस्तु जडतापकारिणिसैन्ययानजनिताप्रसारिणी ।
धूलिरपि खलु धूमतां दृशि व्याप्तकाष्ठमुदितेऽस्य तेजसि ॥१०४
कवचं समुवाह तावतापयशः संघटितोपदेहवत् ।
परिवार इतोऽर्ककीर्तिकः समलिश्यामलमायसोचितं ॥१०५
अपि मन्दमुखेन धारितः नृवराज्ञावशवर्तिनाशितः ।
कवचो नवचन्द्रमण्डलं विगलन्राहुरिवावलोकितः ॥१०६
अपरः परिमोहिणा कथं कथमप्यत्र चिरादुपाहृतम् ।
भृतिकेन भटोरुपाऽपिषत् कवचं हस्ततलद्वयेन तत् ॥१०७
प्रियनर्मभृतो हटात् हृतो वनितायाः करतोवरासिराट् ।
वलयं प्रलयं नयन्भयं शुचमुत्पादयति स्म घट्टितः ॥१०८
जगराग्रनिघट्टनेन वा सहसा त्रुट्यदुदारहारकम् ।
अवलोक्य शुशोच कामिनस्तनुसम्भ्वर्मयनद्धणेऽङ्गना ॥१०९
वलसंवलसंग्रहं मयोऽनयदेवं जयदेव विद्विपः ।
द्रुतमुत्पतनं स्वपृष्ठगं पटहादुद्विजितोऽतिभैरवात् ॥११०
संमूर्च्छितां हयशफा हतिभिर्भवन्ती,—
मुर्वीं दिशो ध्वजपटैरुत वीजयन्ति ।
इत्यश्विनीसुतसमानयनाय नाम,
धूलिर्जगाम सहसैव सुधाशिधाम ॥१११
अनुकूलमरुत्प्रसारितैरुपहूताः किल केतनाञ्चलैः ।
अतिवेगत उद्यदायुधा अभिभूपानरयः प्रपेदिरे ॥११२
परकीयबलं प्रतिप्रभोः कटको निष्कपटस्य विद्विपन् ।
अधिकत्वरयातिसाहसी गतवानोतुरिवाभिमूषकं ॥११३

मदान्धो गौरवाढ्यः सम्पर्कस्तस्थौ ततोऽमुतः ।
लाघवेन स्फुरत्तेजा हरिवत्करिपूष्यतिः ॥११४

सम्म्राजस्तुक् खलु चक्राभं बलवासं,
मकराकारं रचयन् श्रीमद्भमाधीट् च ।
रणभूमावभ्रे च खगस्तार्क्ष्यप्रायं,
यत्नं संग्रामकरं स्मांसति च प्रायः ॥११५

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
स्वाङ्मिथ्याभिनिवेशिनां विवरणप्रोद्धारणे हृत्तमः,
सञ्छेदिन्ययमेति सर्ग उदिते पिष्टोऽधुना सप्तमः ॥११६

इति श्री वाणीभूषण—ब्रह्मचारि—भूरामल-शास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये सप्तमः सर्गः ।



अथ अष्टमः सर्गः

चमूसमूहावथ मूर्तिमन्तौ परापराब्धी हि पुरः स्फुरन्तौ ।
निलंतुमत्र समीहमानौ सञ्जग्मतुर्गर्जनया प्रधानौ ॥१
साध्ये किलालस्य कलां निहन्तुं निशम्य सेनापतिशासनन्तु ।
अताडयत्तत्पटहं विपश्चित्कृतागसश्चित्तमिवाशु कश्चित् ॥२
यूनोरयूनोरपि तावताशु बभूव सा तुल्यतयैव कासू ।
करं नरस्याप्यधरं परस्यासौ केवलं तत्र भिदानि दृश्या ॥३
दूरात्समुत्क्षिप्तभुजध्वजानां रेजुः पताका इव पद्गतानां ।
क्रुधायुधर्थं सरतां रणे खात् तिर्यग्गता या ततयासि लेखा ॥४
य एकचक्रस्य सुतोऽत्र वक्रः स्यान्नश्चतुश्चक्रतयैव शक्र ।
जयो जयस्येति समुन्नताङ्गाश्चीच्चक्रुरित्यत्र जवाच्छताङ्गाः ॥५
नभोऽत्र भो त्रस्तमुदीरणाभिर्भवद्भटानामतिदारुणाभिः ।
सुभैरवैः सैन्यरवैः करालवाचालवक्त्रैरिव पूत्रकाल ॥६
आयोधनं धीरबुधाधिवासं विभीषणं चेति भयातुराशः ।
रजोऽन्धकारे जलजाधिनाथश्छन्नो न किं गोपतिरप चाथ ॥७
उद्धूतसद्धूलिघनान्धकारे शम्पा सकम्पा स्म लसत्युदारे ।
रणाङ्गणे पाणिकृपाणमाला चुक्रुजुर्न्वन्तु शिखण्डिबालाः ॥८
रविं च विच्छाद्य रजोऽन्धकारः नभस्यभूत्प्राप्ततमाधिकारः ।
युद्धचत्प्रवीरक्षतजप्रचारः सायं श्रियस्तत्र बभूव सारः ॥९
सर्वंगमाक्रान्ततमाश्च वीरैर्निषधिकामाहुरिवाथ धीरैः ।
भेरीप्रतिध्वानविधानजन्यां रजस्वलाः सम्प्रति दक्षकन्याः ॥१०

समुच्चयौ मंगजगं गजस्थः पत्तिः पदार्तिं रथिनं रथस्थः ।
अश्वस्थितोऽश्वाधिगतं समिद्धं तुल्यप्रतिद्वन्द्वि बभूव युद्धं ॥११
द्वयोः पुनश्चाहतिमुज्जगाद प्रवत्तयोरायुधसन्निनादः ।
प्रोल्लासयन्सङ्गमरुप्रसिद्ध-च्छत्राङ्कवद्वीरनटान्समिद्धः ॥ ॥१२
भ्रष्यत्स्फुटित्वोल्लसनेन वर्मनाज्ञातमज्ञातरणेत्थशर्म ।
प्रयुद्ध्यता केनचिदादरेण रोमाञ्चितायां च तनौ नरेण ॥१३
नियोधिनां दर्पभृदर्पणालैर्यद्व्युत्थितं व्योम्नि रजोंघ्रिचालैः ।
सुधाकशिम्बं खलु चन्द्रबिम्बं गत्वा द्विरुक्ताङ्कतयाललम्बे ॥१४
एके तु खड्गाद्रणसिद्धिशिङ्गा परं स्म शूलाँस्तु गदाः समूलाः ।
केचिच्च शक्तीर्निजनाथभक्तियुक्ता जयन्तीं प्रतिनर्तयन्ति ॥१५
सदश्वराजा शफसन्निपातैः फणामणिप्रोतधरोऽधुना तैः ।
फणीश्वरस्त्यक्तुमनीश्वरोऽस्ति किमत्र सुश्रान्तशिरः प्रशस्तिः ।१६
युद्धातिचार त्वरमाणसादिवरैरधीता द्विरदास्तदादि ।
प्रवभ्रमुः स्वैरितयोज्झितैलाः कल्पान्तवातैरिव गण्डशैलाः ॥१७
जंघामथाक्रम्य पदेन दानवरस्तदन्यां तरसाऽऽददानः ।
विदारयामास करेण पत्तिं सुदारुणो दारुवदेव दन्ती ॥१८
उत्क्षिप्य वेगेन तु तं जघन्यद्विपं रदाभ्यामपि दन्तुरोन्यः ।
शृङ्गाग्रलग्नाम्बुधरस्य शोभां गिरेर्दधानः खलु तेन सोऽभात् ॥१९
शिलीमुखश्यामगुणैरगण्यैः शिलीमुखैर्विक्षतमोऽग्रगण्यैः ।
व्यलोकि लोकैः समरे स धन्यः अहृष्टरोमेव मतङ्गजोऽन्यः ॥२०
इतोऽयमर्कः स च सौम्य एष शुक्रः समन्ताद्ध्वजवस्त्रवेशः ।
रक्तः स्म कौ जायत आयतस्तु गुरुर्भटानां विरवः समस्तु ॥२१

केतुः कबन्धोच्चलनैकहेतुस्तमो मृतानां मुखमण्डले तु ।
सोमो वरासिप्रसरः स ताभिः शनैश्चरोऽभूत्कटको घटाभिः ॥२२
मितिर्यतः पञ्चदशत्वमाख्यन्नत्रलोकोऽपि नवाङ्किकाख्यः ।
क्वचित्परागो ग्रहणं च कुत्र खगोलताभूत् समरे तु तत्र ॥२३
मतङ्गजानां गुरुगर्जितेन जातं प्रहृष्यद्धयहेषितेन ।
अथो रथानामपि चीत्कृतेन छन्नः प्रणादः पटहस्य केन ॥२४
वीरश्रियं तावदितो वरीतुं भर्तुर्व्यपायादथवा तरीतुं ।
भटाग्रणी प्रागपि चन्द्रहासयष्टिं गलालङ्कृतिमाप्तवान् सः॥२५
निपातयामास भटं धरायामेकः पुनः साहसितामथायात् ।
स तं गृहीत्वा पदयोश्च जोपं प्रोत्क्षिप्तवान्वायुपथे सरोपं ॥२६
दृढप्रहारः प्रतिपद्य मूर्च्छामिभस्य हस्ताम्बुकणा अतुच्छाः ।
जगर्ज कश्चित्त्वनुबद्धवैरः सिक्तः समुत्थाय तकैः सखैरः ॥२७
निम्नानि गंधर्वशफैः कृतानि यत्राथ कौसुम्भकभाजनानि ।
भृतानि रक्तैर्यमराज्ञिशान्तसम्व्यानरागार्थमिव स्म भान्ति ॥२८
इतस्ततो वातविधूतकेतुवान्तांशुकैर्व्याप्ततमेऽम्बरं तु ।
संज्ञातमे तच्च विभिन्नमस्तु रवैर्भटानामिह भैरवैस्तु ॥२९
पराजितो भूवलये पपात परो नरो मर्मणि लब्धघातः ।
आच्छादये तावदुपेत्य वक्त्रं ह्रीसम्भवश्रिध्वजवस्त्रमत्र ॥३०
वक्षःस्थलेभ्यो मृदुहारचारा भिन्नेभ्य आरात्पतिता विचारात् ।
सरक्तवान्ता दशना इवाभूः पत्तराजोऽथ यकैस्तताभूः ॥३१
पुरो गतस्य द्विपतो वरस्य चिच्छेद यावत्तु शिरो नरस्य ।
कश्चित्तदानीं जिनपश्चिमेन विलूनमूर्धा निपपात तेन ॥३२

धर्मेण सम्यग्गुणसंयुतेन समीरितावाणततिस्तु तेन ।
विशुद्धिवन्नीतवती भटेशान् निर्वाणमेषा हृदि सन्निवेशा ॥३३
खगावली रागनिवाहिनीहाथस्पर्शमात्रेण नृणां मदीहा ।
हृदि प्रविष्टा गणिकेव दिष्टान्यमीलयन्नेत्रनिकोणमिष्टा ॥३४
विलूनिमन्यस्य शिरः सुजोपं पतत्किलोत्पत्य ततोऽधिपोपं ।
वक्रोडुपं किंपुरुषाङ्गनाभिः क्लृप्ता भवित्री भुवि राहुणाभीः ॥३५
वज्रं त्वजस्रं प्रतिपातिजिष्णोः शैलानुकर्तुः करिणः सहिष्णोः।
मुक्ता निकम्भान्निरगुर्विशेषाद्रिश्रियः साम्प्रतमश्रुलेशाः ॥३६
लोलाश्चलास्त्रक्समितासियष्टिर्यमस्य जिह्वा द्विपते प्रणष्टिः ।
बभूव वीरस्य हृदुन्नयन्ती सौभाग्यसाम्राज्यसुवैजयन्ती ॥३७
अप्राणकैः प्राणभृतां प्रतीकैरमानि आजिप्रततासतीकैः ।
अभीष्टसम्चारयतीविशालासौ विश्वसृष्टुः खलु शिल्पशाला ॥३८
प्रणष्टदण्डानि शितातपत्रच्छत्राणि रेजुः पतितानि तत्र ।
सम्भोजना योजनभाजनानि परेतराजा विनियोजितानि ॥३९
चराश्च फूत्कारपराः शवानां प्राणा इवाभूः परितः प्रतानाः ।
पित्सन्सपत्राः पिशिताशनायायान्तस्तदानीं समरोवरायां ॥४०
मृताङ्गनानेत्रपयःप्रवाहो मदाम्भसा वा करिणामथाहो ।
प्रवर्ततेऽदस्तु ममानुमानमुद्गीयतेऽसौ यमुनाभिधानः ॥४१
रणश्रियः केलिसरः सवर्णोकरीशकर्णाक्ततया सपर्णा ।
वक्त्रैर्भटानां कमलावकीर्णा श्रीकुन्तलैः शैवलसावतीर्णा ॥४२
अजस्रमाजिस्त्वसृजा प्रपूर्णा किलोल्लसत्कुङ्कुमवारिपूर्णा ।
यशःसमारब्धपरागचूर्णा स्म राजते सा समुदङ्गघूर्णा ॥४३ युग्मं

दृष्ट्वा स्वसेनामरिवर्गजेनाऽऽयुधक्रमेणास्तमितामनेनाः ।
रोद्धुं च योद्धुं जय ओजसोभूः श्रीवज्रकाण्डाख्यधनुर्धरोऽभूत् ॥४४
विद्याधरेषु प्रतिपत्तिमाप सुवंशजः सद्गुणवान् सचापः ।
शरास्ततोधीतिपरा भवन्ति स्वर्लोकमेवर्जुतया व्रजन्ति ॥४५
विद्याधृतां कम्पवतां हृदन्तः किरीटकोटेर्मणयः पतन्तः ।
देवैर्द्विरुक्ता रभसात्समन्तयशोनिषेवैर्जयमाश्रयन्तः ॥४६
जयेच्छुरादूषितवान्विपक्षं प्रमापणैकप्रवणैः सदक्षः ।
हेतावुपात्तप्रतिपत्तिरत्र शस्त्रैश्च शास्त्रैरपि सोमपुत्रः ॥४७
यदाशुगस्थानमितः स धीरः प्राणप्रणेता जयदेव वीरः ।
अरातिवर्गस्तृणतां बभार तदाथ काष्ठाधिगतप्रकारः ॥४८
सोमाङ्गजप्राभवमुद्विजेतुं सपीतयोऽर्कस्य तदाऽऽनिपेतुः ।
स एष सूर्येन्दुसमागमोऽपि चिन्त्यः कुतः कस्य यशो व्यलोपि ॥४९
हयं स नामानमयं जयश्चारुह्य प्रतिद्वन्द्वितयात्र पश्चात् ।
आदिष्टवानेव नियोद्धुमश्वारोहान्निजीयानरमिष्टदृश्वा ॥५०
प्रवर्तमानन्तु निरन्तरायं निरीक्ष्य सोमोदयकारि सायं ।
अच्छायमर्कोदधदेव कायं छन्नीभवत्त्वं गतवाँस्तदायं ॥५१
धनुर्लतायाः गुणिनस्तु खिन्नः सुलोचकाग्रैकशरेण भिन्नः ।
अपत्रपः सन्नपरस्तु वीरसम्भोगमन्तः स्मृतवानधीरः ॥५२
तेजोनिधौ सोमसुते प्रतीपा वह्निष्णुके मृत्युमुखे समीपात् ।
अशक्नुवन्तो युगपत्पतङ्गा इवानिपेतुर्दहनेऽनुषङ्गात् ॥५३
परं रणारम्भपरा न यावद् बभ्रुश्च काशीशसुता यथावत् ।
निष्कम्पङ्गमागत्यतरामितोऽघं हेमाङ्गदाद्या ववृषुः शरौघं ॥५४

संस्थापनार्थं प्रवरस्य यावत्प्रपत्पतिप्रासनमुद्दधार ।
प्रत्यर्थिनोलङ्करणाय कण्ठे तस्यार्पयामास शरं सचारं ॥५५
पाणौ कृपाणोऽस्य तु केशपाश आसीत्प्रशस्यो विजयश्रियाः सः ।
भुजङ्गतो भीषण एतदीयद्विपद्हृदो वा कुटिलोऽद्वितीयः ॥५६
लब्ध्वामुना शास्त्रपथामथाङ्कं विभूषयन्वा कृपणो नृणाङ्कं ।
दिगम्बरेषु स्वमपास्य कोपं मध्यस्थमाकारमगाददोषं ॥५७
भिन्नारिसन्नाहकुलात्स्फुलिंगानसिप्रहारैरुदितान्कलिङ्गाः ।
स्फुरत्प्रतापाग्निकणान्विवाहुर्जयस्य यः सम्प्रवलत्सुबाहुः ॥५८
यशस्तरोरङ्कुरका समन्ताद् बभुः स्फुटन्तोऽरिकरीन्द्रदन्ताः ।
रक्तैर्निपक्तेचरथांगकृष्टे रणाङ्गणेऽस्मिन्नपि जिष्णुमृष्टेः ॥५९
बभूव भूयोप्यबलाधिकारी परम्परा वृद्धिमयस्तथारिः ।
एवं स जातः कमलानुसारी जयस्तदानीमपि हर्षधारी ॥६०
अप्रेक्षमाणः प्रहतं स्वसैन्यमन्तर्गतं किञ्चिदवाप्य दैन्यं ।
तमःसमूहेन निरुक्तमूर्तिमिभं तदाङ्गीचकरार्ककीर्तिः ॥६१
द्विपं द्विपच्छायतघण्टिकाभिः सुघोषमुत्तोपवतां सनाभिः ।
बलादलंकृत्य बभूव भूपः जयः प्रतिस्पर्द्धिनयस्वरूपः ॥६२
बकाः पताकाः करिणोऽम्बुवाहाः शरा मयूरास्तडितोऽसिका हा ।
ढक्कानिनादस्तनितानुवादः सुधीरणं वर्षणमुज्जगाद ॥६३
जयश्रियं श्रीधरपुत्रिकाया विधातुमानन्दपरः सपत्नीं ।
जयोऽभवच्चक्रिसुतेऽथ सद्यो गजं निजं प्रेरयितुं प्रयन्नीः ॥६४
हिमे तमश्छेत्तुमिवोद्यतस्य रवेस्तुषारा इव ते जयस्य ।
आक्रामत(संगच्छत)श्चक्रपतेस्तुजं द्रागग्रे निपेतुः पुनरष्टचन्द्राः॥६५

मिथोऽपि सम्मेलनकं समूर्जमस्मै जनो वाजिनमुत्ससर्ज ।
अहो पुनः प्रत्युपकर्त्तुमेव मुदा ददौ वारणमेष देवः ॥६६
सुवर्णरेखाङ्कितमेव बाणं ततो जये भुञ्चति सम्प्रमाणं ।
मध्ये शरं रीतिधरं विसर्ग्यस्तत्याज मत्याजवनोऽरिवर्ग्यः ॥६७
शुण्डावता तस्य सता हता वा नवद्विपास्ते चपलस्वभावाः ।
यथाकथंचित्पदकाश्रयेण नयाः परेषां जिनवाग्भयेण ॥६८
काराप्रकारायितमारुरोहा न संपुनश्चक्रपतेः सुतोहा ।
स्वयं सखीकृत्य तथाष्टचन्द्रान्प्रस्पष्टतन्द्रान्युधिकष्टचन्द्रान् ॥६६
उरीचकाराध्वकलङ्कलोपि अरिंजयं नाम रथं जयोऽपि ।
खरोध्वना गच्छति येन सूर्यस्तेनैव सोमोऽपि सुधौघधूर्यः ॥७०
तेजोप्यपूर्वं समवाप दीप इव क्षणेऽन्तेऽत्र जयप्रतीपः ।
निस्नेहतामात्मनि सम्ब्रुवाणस्तथापदे संकलितप्रयाणः ॥७१
उत्तेजयामास स वा समस्तविद्याधृतामीशमितो वचस्तः ।
तवालसत्वं स्विदनन्यभासः क्षमेनमेहोसु न मेऽवकाशः ॥७२
जयाज्ञयाक्रम्य तदैव मेघप्रभेण विद्याधिपतिं न येऽघः ।
प्रवर्तमानस्सहसामृणारिवरेण मत्तेभमिव न्यवारि ॥७३
समुत्स्फुरद्विक्रमयोरखण्ड-वृत्या तथाश्चर्यकरः प्रचण्डः ।
रणोऽनणीयाननयोरभाद्वै म दीव्यशस्त्रप्रतिशस्त्रभावैः ॥७४
तौ पृष्ठतो द्रष्टुमशक्नुवानौ जयानुजानन्तपदाग्रसेनौ ।
परस्परं सिंहसुतौ नियोद्धुं उग्रं रभाते स्म यशः प्रबोद्धुं ॥७५
हेमाङ्गदः किश्च वली भुजेन परस्परं वव्रजतुस्तु तेन ।
उभाविभेन्द्राविव बाहुमूलवलेन नद्धौ समरं सतूलं ॥७६

परेण विद्यावलयोः स्वपक्षमभूज्जयः सन्तु लयन्विलक्षः ।
स्थानं चकम्पेऽहिचरस्य तावद् भव्यस्य दैवं लभते प्रभावः ॥७७
गुरुः समागत्य तमांसभद्रं स नागपाशं शरमर्द्धचन्द्रं ।
ददौ यतश्चावसरेऽङ्गवत्ता निगद्यते सा सहकारिसत्ता ॥७८
शरोऽपि नाम्नावसरोऽथ जीत्या बभूव भृत्या प्रसरः प्रतीत्या ।
मन्दादिकेभ्यः सुविधाविधानः कुतो ग्रहत्वेऽपि रविः समानः ॥७९
आसीत्तदेतद्बलिसम्प्रयोगेऽपि स्फीतिमाप्तो ग्रहणानुयोगे ।
जयश्रियो देवतया प्रणीतहेतिप्रसङ्गोऽथ जयस्य हीतः ॥८०
सन्धानकाले तु शरस्य तस्य स्वीचक्र एव स्वहृदा स वश्यः ।
जयेति वाचा कथितं च देवैर्जगुस्तदेव क्रियया परं वै ॥८१
रथसादथसारसाच्चिरब्धपतिना सम्प्रति नागपाशबद्धः ।
शुशुभेऽप्यशुभेन चक्रितुक्तत्तमसासन्तमसारिरेव मुक्तः ॥८२
विपथादेव जयोऽस्मात्प्रससादन जातु विजयतो यस्मात् ।
स्वास्थ्यं लभतां चित्तं ह्यादायायोग्यमिह च किमु वित्तम् ॥८३
अर्कस्तूदर्कचिच्चिन्तो जयश्च विजयान्वितः ।
जनोऽभिजनसम्प्राप्तो वर्द्धमानाभिधानतः ॥८४
अश्वसन्तन्तुसंस्कृत्य निःश्वसन्तमुपाचरत् ।
आगत्य सोमसत्पुत्रश्चकारानाथमात्मसात् ॥८५
नीतिं नीतिविदो विदुः कुरुपतेः स्फीतिं तु शूरा नराः,
वीतिं गोचरवेदिनः सुसमये भाग्यप्रतीतिं प्रजाः ।
नानारीतिरभूत्तमां मतिरिति श्रीजीतिहेतः पुन,–
रर्हत्सद्गुणगीतिरेव सुदृशा क्लृप्ता प्रतीतिस्तु मे ॥८६

ईशं संगरसञ्चिताघहतये सम्यक्समर्च्यादरात्,
पुत्रीं प्रेक्षितवान् पुनर्मृदुदृशा काशीविशामीश्वरः ।
आहारेण विना विनायकपदप्रान्तस्थितां भक्तितो,
जल्पन्तीमपराजितं हृदि मुदा मन्त्रं मृधान्तार्थतः ॥८७
वीराणां वरदेव एव वरदे नेता विजेताऽभवत्,
श्री अर्हच्चरणारविन्दकृपयाभीष्टेन जातं तव ।
मौनं मुञ्च मनीषि मानिनि मुधा धामात्मनस्सम्व्रज,
तामित्थं समुदीर्य धाम गतवान् साकं तयाकम्पनः ॥८८
सकलः सकलज्ञमास्रवानपि सम्प्रार्थयितुं जनः स या ।
भगवान्भगवानभिष्टुतः विपदामप्युत सम्पदामुत ॥८९
सपदि विभातो जातो भ्रातो भवभयहरणविभामूर्तेः
शिवसदनं मृदुवदनं स्पष्टं विश्वपितुर्जिनसवितुस्ते
गता निशाथ दिशा उद्घटिता भान्ति निपूतनयनभूते
कोऽस्तु कौशिकादिह विद्वेषी परो नरो विशदीभूते
मङ्गलमण्डलमस्तु समस्तं जिनदेवे स्वयमनुभूते
हीराद्याहि कुतः प्रतिपाद्याश्चिन्तारत्ने सति पूते
कलिते सति जिनदर्शने पुनश्चिन्ता कान्यकार्यपूर्ते–
र्मोन भवन्ति तृणानि किमात्मञ्जगति झगिति हि कणस्फूर्तेः
निःसाधनस्य चार्हति गोप्तरि सत्यं निर्व्यसनाभूस्ते
तमसि च किं दीपैरुदयश्चेच्छान्तिकरस्य सुधास्यूतेः
अर्हन्तमागोहरमगादधुना समर्थयितुं नरां
कश्मलादाजिभवाज्जयोदरमावहन्स्मरसन्निभं

पश्चात्तपन्नपकृत्यमादरतो जिनस्य कृताहवं
वन्दना अर्कश्चकर च परम्पराध्वशमनाश्रवं ॥९०

(इत्यर्कपराभवचक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजस्स सुपुवे भूरामरोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
स्वोदाराच्चरधारयाऽमुककृतिः श्रीदुर्ह्रदां मूर्धनि,
सर्गं कम्पकरी व्यतीत्य जयते सा चाष्टमं ह्रादिनि ॥९१

इति श्री वाणीभूषण-महाकवि-ब्रह्मचारि-भूरामल-शास्त्रि-रचिते
जयोदयापरनामसुलोचनास्वयम्बरमहाकाव्ये
चित्राङ्कितेऽर्ककीर्तिपराभववर्णनो
नामाष्टमः सर्गः ॥



अथ नवमः सर्गः

मनसि साम्प्रतमेवमकम्पनः समुपलब्धयथोदितचिन्तनः ।
विजयनाज्जयनाममहीभुजः समभवत्समरेऽपि महीरुजः ॥१

परिणता विपदेकतमा यदि पदमभून्मम भो इतरा पदि ।
पतितुजोऽनुचितं तु पराभवं श्रणति सोमसुतस्य जयो भवन् ॥२

जगति राजतुजः प्रतियोगिता न गतिवर्त्मनि मेऽचतर्ति सुतं ।
झगिति सम्भितरेयमदो मुदे न गतिरस्त्यपरा मम सम्मुदे ॥३

परिभवोऽरिभवो हि सुदुःसह इति समेत्य समेऽत्ययनं रहः ।
किमुपधामुपधास्यति नात्र वा किमिति कर्मणि तर्कणतोऽथवा ॥४

प्रतिपदं विपदन्तकृदित्यदः प्रभृतिकं भृतिकत्वगुणास्पदः ।
निकटकं कटकप्रतिघातिनः समभवद् भवगर्तनिपातिनः ॥५

मम पराजयकृत्तु पुरारणं किमधुनाद्रियते मृतमारणं ।
किमित आगत आगतदुर्विधेर्मम समीपमहो सुमहोनिधेः ॥६

किमधुना न चरन्त्यसवाचराः स्वयमिताः किमु कीलनमित्वराः ।
रुदति मे हृदयं सदयं भवत्तुदति आत्मविघातकथाश्रवः ॥७

निजनिगर्हणनीरनिधाविति निपतते हततेजस आश्रितिः ।
गुणवतीव तती वचसां नराधिपमुखादियमाविरभूत्तरां ॥८

जयरवं वरवंशवतस्तव चरणयोरणयोधनयोस्तवः ।
बलवतां हृदयाय समुत्सवः स्तुतिकृतां रसनाभिनयो नवः ॥९

चरितमादरि तत्त्वविरोधि यत्प्रभवते भवते धृतसत्क्रियः ।
परिवदामि सदामितशासन न हि कदापि कदादरि मन्मनः ॥१०
युवनृपात्र कृपात्र प्रमाणके भवतु मय्युपयुक्तकृपाणके ।
भुवि भवान्विभविष्यति भो भवान्विपदगा पदगास्तु वयं न वा ॥११
यदपि चापलमाप ललाम ते जय इहास्तु स एव महामतेः ।
उरसि सन्निहतापि पयोऽर्पयत्यथ निजाय तुजे सुरभिः स्वयं ॥१२
यदपि पातयतीति तुरंगमस्तरलतावशतो विचलत्क्रमः ।
तदपि हन्ति हयं किमुदारदृक् भवति वृत्तमिदं चलतः सदृक् ॥१३
त्वमिह जीवनमप्यनुजीविनामिह कुतस्त्वदनुग्रहणं विना ।
मम समस्तु महीवलयेऽमृत सफरतापृथुरोमकताभृतः ॥१४
अपि हठात् परिषज्जनुषां मुदः स्थलमतिव्रजतीति विधुन्तुदः ।
जनतया नतया स समर्च्यते किमु न किन्तु तमः परिवर्ज्यते ॥१५
भवति विघ्नवतां प्रतिभासिता भवति वन्हिवदाश्रयनाशिता ।
अवनिमण्डन नः सुतरां तता जगति संभवताच्छ्रितवर्त्मता ॥१६
शिरसि हन्ति रसिन्नपि बालकः विगतबुद्धिबलेन नृपालकः ।
किमिति कुप्यति किन्तु समोदकं परिददातितमामुत सोदकं ॥१७
न खलु देवतुजोऽभिरुचिर्वशिन्स्फुरति सानुचराङ्गभुवीदृशी ।
इति मयानुमितं कथमन्यथा प्रथितवानभवं च विधे तथा ॥१८
मयि दयिन्नपि चेत्त्वदनुग्रहः शृणु मदीयहृदीयदहोरहः ।
त्वरितमचलतामुररीकुरु दिशतु भद्रमिदं भगवान् पुरुः ॥१९
हृदि तमोपगमात्प्रतिभाऽविशदिति तदालपितेन जयद्विपः ।
यद्दिव कौ कुरुते न दिनश्रियः समुदयः कृत नक्तलयक्रियः ॥२०

अपजितस्य ममेदमुपायनग्रहणमस्त्युचितं किमुतायनं ।
न हि भुवि क्रमविक्रमलक्षणं भवति केशरिणो मृतभक्षणं ॥२१
यमथ जेतुमितः प्रविचार्यते स जय आश्वपि दुर्जय आर्य ते ।
तरुणिमाक्षयदो यदि जायते जरसि किं पुनरत्र सुखायते ॥२२
युवतिरत्नमपत्नमवाप्यते तदधिकन्तु शमाय समाप्यते ।
सुखरैरपि सा ह्यनुमानिता यदि रमाभिगमाय विमानिता ॥२३
भरतभूमिपतेः कुलदीपक इति समङ्कितरौलसमीपकः ।
यदसमुद्रितशुद्धशिखाश्रयः समभवत्सहसाप्रतिभामयः ॥२४
ननु मनोविशिखं दिशि खल्विदं निदधदन्धकता मम संविदः ।
अहिततां हिततानवति श्रयत्यपि भवादृशि धिक् महिताशय ॥२५
मम समर्थनकृत्समभूत् तु सः किमु वदानि वदाभ्युदयद्रुपः ।
निपतते हृदयाय विमर्षणः किल तरोः कुसुमाय मरुद्गणः ॥२६
किमु न नाकिभिरेव निषेधितं यदि तर्कैः क्रियतेऽत्र जगद्धितं ।
कटकपद्धतिसुत्थरजः कृताऽभवदहोविनिमेषतयान्धता ॥२७
ननु मनुष्यवरेण निवेदितं मयि निवेदमनर्थमवेहितं ।
कथा मिवान्धकलोष्ठमपि क्रमः कनकमित्युपकल्पयितुं क्षमः ॥२८
स्तुतमता स्तुतदैवशं तु तन्मम मनो हि जनो हितकृत् कुतः ।
सुरवरः प्रतिकर्तुमपीश्वरः किमु भवेद्भुवि भावि यदीश्वरः ॥२९
मम पितामहतुल्यवया मयातिचलितस्त्वमधीश दुराशया ।
प्रतिधृतो जय आप्तनयस्तथा जनविनाशकृदेवमहं वृथा ॥३०
अनयनश्च जनः श्रुतमिच्छति परिकृतः परितोऽप्यधिगच्छति ।
अहह मूढतया नमया हितं सुमतिभाषितमप्यवगाहितम् ॥३१

अयि महाशय काशयशःश्रिया परिकृतोरिकृतोऽपि विचत्रिया ।
कुशलतातिशयेन समर्थितः स्विदहकं त्वकयास्मिकदर्थितः ॥३२
पथसमुद्‌घुतये यतितं मया परिवदिष्यति तत्सुहृगाशया ।
मम हृदेतदुदन्तमहोभिनत्ययियिवभो करपत्रवदिन्धनम् ॥३३
इति बलाहकमश्रुततोदरं विनतमुन्नमयन्नपि सत्वरम् ।
निभृतमाकलितुं किल मानसे क्षितिभृदात्महृदात्र समानशे ॥३४
क्षितिभृतो वदनादिदमुद्‌ययावमुकवारिमुचः प्रतिवाक्तया ।
क्व युवराज वराजगतां मता शुगिति येन सता भवता तता ॥३५
अलमनेन हृदाऽरमनेनसः स्वयमनागतवस्तुलसद्‌दृशः ।
कृतपरिक्रमिणो गतचिन्तिनः क्व कुशलं कुशलं कुरुताज्जिनः ॥३६
जठरवन्हिधरं ह्युदरं वदत्यपि च तैजसमक्षुमुगल्यदः ।
जनमुखे करकृत्कतमोऽधुना हृदयशुद्धिमुदेतु मुदे तुना ॥३७
ननु भवान् शुभवानदयः पुनः स दुरितोदय एव समस्तु नः ।
विधुरुदेति मुदेऽतिवियुज्यते तदथ कोकवयस्यभियुज्यते ॥३८
यदपि राशिरिहासि सुतेजसामपि कलानिधिरस्ति जयोऽञ्जसा ।
भवतुतावदमानवधारणाद्भुतमनैक्य कृदङ्कनिवारणात् ॥३९
जयमहीपतुजोविलिसत्त्रपः सपदि वाच्यविपश्चिदसौ नृपः ।
कलितवानितरेतरमेकतां मृदुगिरा ह्यपरानसमार्द्रता ॥४०
त्वदपरो जलबिन्दुरहं जनः जलनिधे ! मिलनाय पुनर्मनः ।
यदगमं भवतो भुवि भिन्नतां तदुपयामि सदैव हि खिन्नतां ॥४१
तव ममापि समस्ति समानता त्वमुदधिर्मयि बिन्दुकताऽऽगता ।
पुनरपीह सदा सदृशा दशा भवति शक्तिरहो मयि किन्न सा ॥४२

हृदनुतप्तमहो तव चेद्यदि किमुनतापमहो मयि सम्पदिन् ।
तदनुतापि ममार्प्यपजल्पनं भवितुमेति नभः सुमकल्पनं ॥४३
किमनुतापरमेण तवोदये स यदि ते वडवोऽपि न हानये ।
समयना समतां निखिलं दरमतिगभीरतया त्वयि सागरः ॥४४
अपि समीररयादि मया सदा विनिपतन्ति ममोपरि आपदाः ।
समुपकर्तु मये किमु कस्यचित् तृडपसंहृतये किमहं सरित् ॥४५
विनतिरस्ति समागमनाय मे समुपधामुपयामि तव क्रमे ।
न मनसीति भजेः किमु विन्दुनाप्यवयवा वयवित्वमिहाधुना ॥४६
त्वमपरोप्यपरोऽहमियं भिदा व्रजतु वृद्धिमदैक्ययुजा विदा ।
भवति सम्मिलने बहुसम्पदा विरहिता जगतामपि कम्पदा ॥४७
विघटनं न हि संघटनं च नः प्रतिनिभालयतां सकलो जनः ।
भवतु संस्मृतयेप्यसकौ दिवा स्म जयदेव गिरेति निरेति वा ॥४८
अवसरोऽचितमित्यनुवादिना करिपुरप्रभुणा मृदुनादि वा ।
निशमतीत्य विकाशिनि भृंगवत् रविहृदब्जद्रहापि पदं नवं ॥४९
हृदनयोरथ पारदसारदं सुजनयो द्रुतमैक्यमुपासदन् ।
मिलनमर्हति कर्हि न यत्पुनः स्फुटितकुम्भवदत्र धिगस्तु नः ॥५०
भरतबाहुबलिस्मरयोर्यथा रवियशः सुदगीश्वरयोस्तथा ।
मिलनमेतदभूत्किल नन्दनं कुलभृतां परिकर्मनिबन्धनं ॥५१
भरतपुत्रममुत्र सुखाशया स पुनरभ्रमुवल्लभके रयात् ।
प्रगतवानधिकृत्य नरैः समं यतिचरित्रपवित्रजिनाश्रमं ॥५२
यदिह लोकजितो गुणतो धृतौ खलु नृणां करकौ च समाहृतौ ।
जय जयेति गिरा न विलम्बितं पदयुगं शिरसा त्ववलम्बितं ॥५३

न हि तर्कोर्जितकैतव एव स स्नपनमापवितः प्रभुरेकशः ।
मुदुदिनाश्रुजलैरनुभावितं वपुरपीह निजं शुचिताश्रितं ॥५४
चरितमष्टदिनावधिपूजनं भगवतोऽखिलकर्मनिसूदनं ।
हृदयदृक्श्रवसामभिनन्दनं स्वशिरसीष्टजिनांघ्रिजचन्दनं ॥५५
अयमयच्छदधीत्य हृदा जिनं तदनुजा तनुजाय रथाङ्गिनः ।
सुनयना जनकोऽयनकोविदः परहिताय तनुश्च सतामिदं ॥५६
मनसि तेन सुकार्यमथार्यतः प्रतिनिवृत्य यथोदितकार्यतः ।
हृदनुकम्पनमीशतुजः सता क्रमविचारकरी खलु वृद्धता ॥५७
हृदयवद्गुणदोषविचारकं प्रवरवद् विपदां प्रतिहारकं ।
सुमुखनामचरं निदिदेश स भुवि निसर्गत एव सतां दृशः ॥५८
निगदनस्तु नमोऽर्कयशः पितुस्त्वरितमन्तिकमेत्य महीशितुः ।
भवितुमर्हति भूवलयेऽपरः सुमुख कार्यचणः कतमो नरः ॥५९
मम मनोरथकल्पलताफलं वदति शुक्तिजलक्ष्म स वोपलं ।
समभिपश्य नृपस्य मनीषितं नृवर साधय तस्य मयीहितं ॥६०
रविपराजयतः सरुषः स्थलं यदि तथा शुचिनः क्व कलादलं ।
मकरतोऽवरतस्य सरस्वति भवितुमर्हति नासुमतो गतिः ॥६१
सफलयत्नमनेन निजं तदा तरुरिवोत्तमपत्रकसम्पदा ।
इति स लेखहरः समुपेत्य ना विनतवागभवत्प्रभवेऽमनाक् ॥६२
जयतमां नृपु राजसुराज ! ते यशसि नो शशिनो मधु राजते ।
चरणयो मणयोऽरितिरीटजाः प्रतिवदन्तु रुजां पुरुजात्मजां ॥६३
चरमुखे मृतगाविति भूभृतः किल चकोररमा दृगगादतः ।
वदनतो निरगाच्छशिकान्ततः शुचितमापि च
वाक्सरिता ततः ॥६४

परिचयोऽरिचयोदयहारिणे शुभवतो भवतोऽस्तु सुधारिणे ।
क्व निलयोऽनिलयोग्यविहारिणः किमथ नामसमर्थविचारिणः ।६५

हृदयसिन्धुरभूदुपलालित इति सदीश गवा प्रतिपालितः ।
रयमयः सुतरामुदगादयं चरनरस्य च वारिसमुन्नयः ॥६६

लसति काशि उदारतरङ्गिणी वसतिरप्सरसामुत रङ्गिणी ।
भवति तत्र निवासकृदेष कः स शकुलार्भक ईशविशेषकः ॥६७

विनयतो विहरञ्जगदीक्षण ! तव भवन्नगरक्षणवीक्षणः ।
क्षणमिहाश्रमितोऽस्मि यदृच्छया न हि पुरेक्षितमीदृगहो मया ।६८

अवनिनाथ ! तमां त्वयि वीक्षिते क्व दृगुदेति पुनर्वलये क्षितेः ।
सुरभिताखिलदिश्युपकानने द्युतिरुताम्रतरुस्थपिकानने ॥६९

जगति तेऽलमुदेति तु साधुता स्तुतिपु मे चिदपैति च साधुता ।
परिहिताय जयेज्जनता नवं विरम भो विरमेति सुमानव ! ॥७०

मृदुलदुग्धकलाचरिणी स्वतः किमिति गोपति गोरुदितायतः ।
समभवत्खलु वत्सक वत्सकश्चरवरोप्युपकल्पधरोऽनकः ॥७१

असुखितास्तु न यूयमिह क्षिता-वपि च काशिनरेशनिरीक्षताः ।
नृवर ! कच्चिदसौ जरसाञ्चित इतरकार्यकथास्वथ वञ्चितः ।७२

शुचिरिहास्मदधीट्धरणीधर ! सति पुनस्त्वयि कोऽयमुपद्रवः ।
तपति भूमितले तपनं तमः परिहृतो किमु दीपपरिश्रमः ॥७३

दुहितरं परिणामयितुं स्वयम्वरसमाख्यनयं कृतवानयं ।
भवतु यत्र वरः स जगत्पितः स्वयमलज्जतया सुतयाश्रितः ॥७४

तदिदमश्रुतपूर्वमथ स्त्रियां स्ववशतां ददृदेवमपह्रियां ।
इतरनुस्त्वितरो हि समस्यते मनसि मे जनशीर्ष वशस्यते ॥७५

अनुचितं प्रतिपद्य भवत्सुजापरिकृताप्रतिरोद्धुमहो भुजा ।
स्मयवतानवतानवताहृता तदपि तेन कुतो धिषणा हृता ॥७६

जयमुपैति सुभीरुमतल्लिकाखिलजनीजनमत्तकमल्लिका ।
बहुषु भूपवरेषु महीपते मणिरहो चरणे प्रतिबध्यते ॥७७

भरतभूमिपतेरपि भारती सपदि दूतवराय तरामिति ।
श्रवणपूरमुपेत्य विलासिनी हृदयमाशु ददावकनाशिनी ॥७८

जयकुमारमुपैत्य सुलक्षणसुदृगतः प्रतिभाति विचक्षणा ।
मम महीवलयेऽपि वदापरः सपदि तत्सदृशः कतमो नरः ॥७९

रवियशा दुरितेन पुरीकृतः स भवता वत शीघ्रमुरीकृतः ।
सदरिरप्यसदादरिवन्नरः भवतु सम्भवतुष्टिवतां परः ॥८०

अहमहो हृदयाश्रयवत्प्रजः स्वजनवैरकरः पुनरङ्गजः ।
भवति दीपकतोऽञ्जनवत्कृति न नियमा खलु कार्यकपद्धतिः ॥८१

वृषधरेषु महानृषभो गणी यदिव चक्रधरेषु सताम्पृणी ।
जयपितृव्यजनः श्रणने नृणी सुनयनाजनकः प्रकृतेऽग्रणी ॥८२

सुमुख मर्त्यशिरोमणिनाधुना सुगुणवंशवयोगुरुणामुना ।
बहुकृतं प्रकृतं गुणराशिणा पुरुनिभेन धरातलवासिनां ॥८३

भुवि सुवस्तु समस्तु सुलोचना जनक एष जयश्च महामनाः ।
अयि विचक्षण लक्षणतः परं कटुकमर्कमिमं समुदाहर ॥८४

समयनानि अमूनि किल भ्रु वाण्युपहितान्यपि भोगभुवा तु वा ।
प्रकटयन्ति जयन्ति नरोत्तमाः स्वपरयोः प्रतिबोधविधौ क्षमाः ।।८५

पवनवद् भविना मयि सज्जन प्रचलितं ह्य ुररीकुरुते मनः ।
स्फटिकवत्परिशुद्धहृदाशयः स विरलो लभतेऽन्तरितं चयः ।।८६

इति कौ शरधरवाचमुत्तमां विनिशम्याथ समेत्यमुत्तमां ।
इह जवनाशनविप्रियस्य वामपि सहसाभ्युदियाय सुश्रवाः ।।८७

तेजस्ते जयतादपि मित्रान्महिमा तव महिमानविचित्रा ।
यद्यपि चक्रसमाहृय वस्तुर्भवति सतां प्रतिपाल इतस्तु ।।८८

वीरत्वमानंदभुवामवीरः मीरो गुणानां जगताममीरः ।
एकोऽपि सम्पातितमामनेकलोकाननेकान्तमतेन नेक ।।८९

समन्तभद्रो गुणिमंस्तवाद्य किलाकलंको यशसीति वा यः ।
त्वमिन्द्रनंदी भुवि संहितार्थः प्रसत्तये संभवसीति नाथ ! ।।९०

मानसस्थितिमुपेयुषः पदपद्मयुग्ममधिगत्यतेऽप्यदः ।
ईश्वरान्तरलिरेप मे मतः सौरभावगमनेन सन्धृतः ।।९१

कार्तिकेति हिमयात्रया दशा मत्कुलस्य परिविद्यते च सा ।
तेन किञ्च न लतान्तमिच्चतः श्रीसमतुं कममात्ययोवतः ।।९२

इत्युपेत्य पदपद्मयोरजः लिम्पितुं हि निजधामसत्प्रजः ।
तस्य पार्थिवशिरोमणेरगादेप सोऽप्यनुचरन्ति यं खगाः ।।९३

अभ्रान्तरमितमुपेत्य वारि भरं समुद्रात् स्वघटे हारि ।
स्वामिकर्णदेशेऽप्यपूरयद् गत्वा लघिममयस्तरामयं ।।९४

भर्तुश्चित्तमवेत्य सुन्दरतमं काशीविशामीश्वरः,
रङ्गन्तुङ्ग तरङ्गवारि रचिताम्भोराशि तुल्यस्तवः ।
तत्रासीच्छशलाञ्छनस्य रसनात्प्रारब्धपूर्णात्मनः,
नर्मारम्भविचारणे तत इतो लब्धं बबन्धात्मनः ॥९५

वैरस्यापचयप्रकारकरणः सर्गोऽष्टमाग्रेतनः,
पूर्तिं तदुगदिते समादधदितः श्रीसज्जनानां मनः ।

इति श्रीवाणीभूषण-महाकवि-ब्रह्मचारि-भूरामलशास्त्रि-रचिते
जयोदयापरनाम सुलोचनास्वयम्वरमहाकाव्ये
नवमः सर्गः समाप्तः

अथ दशमः सर्ग

नृपधाम्नि सुदाम्नि सुन्दरप्रतिसारः❀ खलु कार्यविस्तरः ।
+शयसन्नयनोचितोक्तिभृत् रचितोऽथान्तमितोऽपि तोषकृत् ॥१

समवेत्य तदात्ययान्तकं मृदुमौहूर्तिकसंसदोंऽशकम् ।
रसनारसनालिकात्र मे स सुतां दातुमथ प्रचक्रमे ॥२

×अवरोधमितोऽवदत् परं स तु जामातरमुज्वलान्तरं ।
स्वयमाप्त न यं रूचामयं दयिते सोदयमीप्सतां जयं ॥३

चतुराः प्रचरन्तु भो श्रिया प्रचुराः स्त्रीसमयप्रियाः क्रियाः ।
† ग्रहणग्रहमंगलोचितावयमातुन्म इतः श्रुताश्रिताः ॥४

समयात्समयाशयाः स्थितिं करसंयोजनकालिकीमिति ।
उपयुज्य पुनर्नृपासनं मुनिरन्तःपुरतो यथा वनं ॥५

जयमाह स दूतवाग्गुरुर्मम बालां कुलमप्यलङ्कुरु ।
स च पल्लवतान्मनोरथाङ्कुरकस्त्वच्चरणोदर्कस्तथा ॥६

स निशम्य च तत्प्रतिध्वनिं मृदुदूताननगह्वराद् गुणी ।
प्रजिघाय तमादराद् वदन् समये दास्यमये गुरोरदः ॥७

श्रुतदूतवचाः स चाप्यतः प्रभुरत्रागमयाम्बभूव तं ।
श्रुतकुक्कुटवाक् ❀प्रगेतरां शकटाङ्गस्तरणि यथादरात् ॥८

❀ कार्यसंरभः । + पाणिग्रहणोचितः । × अन्तःपुरं ।
† हस्तः । ❀ प्रभाते ।

नगरी न गरीयसा सुधासुरसेनैवमलङ्कृता बुधाः ।
शिशिरांशुमितेन वाससा समिताभूदधुना मृदीसा(?) ॥९
चरितैरिव भाविभिस्तदाश्रमभित्तिः शुचिचित्रकैस्तदा ।
उचिता खचिता विदग्धया वरवध्वोरनुभाविभिस्तया ॥१०
मणिपूर्णसुतोरणोत्थितैः किरणैः कर्बुरिताम्बरैर्हितैः ।
धनुरैन्द्रमियं पुरी यदेन्द्रपुरीं जेतुमहो उपाददे ॥११
अपरापरमादरेण तान् समपूपान् तनुते स्म तावता ।
विबुधैरपि खाद्यतामितानमृतप्रायतया प्रसाधितान् ॥१२
अवदत् ‡सवदर्शने पुरः सदनानां च मुखानि भूसुर !
अवलम्बितमौक्तिकस्रजां रुचिभिर्हास्यमयानि स प्रजा ॥१३
प्रसरन्मृदुपल्लवैष्टयाथ लताङ्गीकृतचित्रचेष्टया ।
बहुविभ्रमपूरिताशया नृप सद्मोपवनोपमं तया ॥१४
मृदुमोदमहोदधिश्रिया नवनीतोत्तमभावमन्वयात् ।
अमृतस्थितिगीतमावृते सुरभिस्थानमिदं स्म राजते ॥१५
स घनं घनमंतदास्वनत्सुषिरं चाशु शिरोऽकरोत्स्वनं ।
सततेन ततः कृतो ध्वनिः स ममानद्धममानमध्वनीत् ॥१६
प्रभवन्मृदुलाङ्कुरोदयं स्वयमित्यत्र तदानको ह्ययम् ।
सरसं धरणीतलं यदप्यकरोच्छब्दमयं जगद्वदन् ॥१७
तदुदात्तनिनादतो भयादपि सा सम्प्रति वल्लकीत्ययात् ।
विनिलेतुमिवाशुता दृशि प्रथुले श्रीयुवतेरिहोरसि ॥१८

---

‡ उत्सवः ।

प्रणनाद यदानकः तरामपि वीणा लसति स्म सापरा ।
प्रसरद्रससारनिर्झरः स निसस्वानवरं हि झर्झरः ॥१९
युवतेरुरसीति रागतः स तु कोलम्बकमेवमागतम् ।
समुदीक्ष्य तदेर्ष्ययाऽधरं खलु वेणुः सुचुचुम्ब सत्वरं ॥२०
शुचिवंशभवच्च वेणुकं बहुसम्मानया करेऽणुकं ।
विवरैः किमु नाङ्कितं विदुर्हुडकश्चेति चुकूज सन्मृदुः ॥२१
परिचारिजनास्यनिःस्वनः पटहादीच्छितनादतोऽघनः ।
भ्रमवत्प्रतिनादमेदुरः स्विदमेयो गगनोदरे चरन् ॥२२
स्मरतैरयिपीलनस्य मे सुहृदोऽनन्यतमे गुणत्तमे ।
मुहुरेव लगत्तदाप्यदः खलु तैलं हृदि सुभ्रुवोऽवदत् ॥२३
उपयुज्य वियोजितं नमत्तममुहूर्तनमिष्टसङ्गमम् ।
पदयोः सदयोपयोगयोर्निपपातापि नतभ्रुस्तयोः ॥२४
कलशीकलशीलाम्भसाभिषिषेचाथ धरामिहाशिषां ।
सुकृतांशुकृताशयेन वाकुलकान्ताकुलमाप्तसंस्तवां ॥२५
तदुरोजयुगेन निर्जिता इव नीता भुवि वारिहारिताम् ।
त्रपयेव न तैर्मुखैर्नवान्निदधुस्ताः सहकारपल्लवान् ॥२६
जरती जरतीतीष्टिहेतुना छिदिभृच्चामरमेव चाधुना ।
सुयशोर्हसति स्म संकचः पतदम्भःकणमुज्वलद्रुचः ॥२७
सुतनुः समभाच्छ्रियाश्रिता मृदुना प्रोच्छनकेन मार्जिता ।
कनकप्रतिमेव साऽशिताप्यनुशाणोत्कशनप्रकाशिता ॥२८
मुहुराप्तजलाभिषेचना प्रथमं प्रावृडभृत्सुलोचना ।
तदनन्तरमुज्जाम्बरा समवापापि शरच्छ्रियं तराम् ॥२९

क्रिमिहास्तु विभूषया सुता यदि भूषा जगतामसौ स्तुता ।
अपि तत्र तदायतां हितादियमालीभिरितीव भूषिता ॥३०
प्रतिमाविषयेऽनुयोगकृत्सुतनोर्भ्रूयुगमत्तरं सकृत् ।
इति कापि नकारमुत्तरं तिलकस्यच्छलतो ददौ परम् ॥३१
सकलासु कलासु पण्डिताः सुतनोरालय इत्यखण्डिताः ।
न मनागपि तत्र शश्रमुः प्रतिदेशं प्रतिकर्म निर्ममुः ॥३२
अलिकोचितसीम्नि कुन्तलाविबभूवुः सुतनोरनाकुलाः ।
सुविशेषकदीपसम्भवा विलसन्त्योऽञ्जनराजयो न वा ॥३३
निबबन्ध मृगीदृशः कचाञ्जगतो यौवतकीर्तये रुचा ।
विधत्वविधानवाससः समयान्कापि गुणनिवेदृशः ॥३४
स्फुटहाटकपट्टिकाश्रिया दिनरात्र्यन्तरसायसत्क्रिया ।
अलिकालकयोरिहान्तरा सममेवेति समद्युतत्तराम् ॥३५
न दृगन्तसमर्थिनीरसादिह लेखा खलु कज्जलस्य सा ।
समपूरि तु स्वन्त्रणक्रियानयने वर्द्धयितुं वयःश्रिया ॥३६
भुवि वंशमसौ च्चमो गलः स्वरमात्रेण विजेतुमुज्ज्वलः ।
ननु तेन हि सन्धयेऽर्पिता कुवलालीस्वकुलक्रमेहिता ॥३७
तकयोः प्रतिमल्लताहिते नयनाभ्यामतिमात्रपीडिते ।
अपि तत्समरुपर्णौ श्रुती व्रजतः स्मोत्पलकद्वयीं सतीं ॥३८
सुषमाप महर्पतां परैर्भुवि भाग्यैरिव नीतिरुज्ज्वलैः ।
सुतनोस्तु विभूषणार्यका खलु लोकैरवलोकनीयका ॥३९
मुकुरेच्छविदर्शिनी रसान्मुखमिन्दोः सविधं विधाय सा ।
कियदन्तरमेतयोश्च तदुविचरन्तीव तरामराजत ॥४०

सुतनोर्निदधत्सु चारुतां स्वयमेवावयवेषु विश्रुताम् ।
उचितां बहुशस्यवृत्तितामधुनालङ्करणान्यगुर्हितां ॥४१
गुरुमभ्युपगम्य पादयोः प्रणमन्त्याः सुपमाशये श्रिया ।
शिरसः खलु नागसम्भवं भवमत्राप तु यावकाख्यया ॥४२
तरुणस्य च तद्वदुच्छ्रिता भुवि पाणिग्रहणक्षणोचिता ।
अनुजीविजनैः प्रसाधनाभिजनैं(जनकैं)स्तावदमण्डिमण्डना ॥४३
त्रिजगत्तिलकायतामिति कृतवान् यन्त्रिकमङ्कमङ्कतिः ।
मिषतो स न भो भ्रुवोर्व्रतिन्तिलकेनाचरितं तदोमिति ॥४४
समवाप मनोभुवः स्तुतां रथसच्चारुचतुष्कचक्रतां ।
ननु गण्डगतावतारयोर्द्वितयं कुण्डलयोस्तदीययोः ॥४५
जगती जयवान्भुजोरसी समवर्पत्सुयशःसुतेजसी ।
सितशोणमणित्विषां मिषात्स्वविभूषाग्रजुषां प्रभोर्दिशां ॥४६
श्रियमति यथोऽर्थिसार्थकः खलु शंखादिकमानवान् सकः ।
स्विदपांशु चिराशयः शयो वरराजस्य समुद्रतां ययौ ॥४७
स्वसदोदयतामनाकुलामिह नक्षत्रकमालिकाऽमला ।
उपलब्धुमिवार्थिनीहिता वदनेन्दोः पदसीमनि स्थिता ॥४८
प्रतिदेशमवाङ्गिनामलङ्करणानां मणिमण्डलेश्वरं ।
निजरूपनिरूपिणे घृणाकरि अस्मै खलु दर्पणार्पणा ॥४९
ननु तस्य तनुर्विभूषणैः सहजप्रश्रयभूरदूषणैः ।
लसति स्म गुणैरिवोज्ज्वलैरधुनाऽसौ परिणामकोमलैः ॥५०
रथमेवमथोपढौकितः किमु पद्माङ्कमुदेन सोऽङ्कितः ।
रविवच्च विभासुरच्छविर्वदतीदं विभवाश्रयः कविः ॥५१

स पवित्र इतीव सत्क्रियासहितः सम्महितो वरश्रिया ।
शुचिवेशधरैः पुरस्सरैश्च सुनासीर इहाभवन्नरैः ॥५२
नरपोऽनुचरानतुल्वणां समयासन्नतरत्वशिक्षणां ।
निदिदेश समुल्लसन्मतः पथि सार्थं पृथु चक्रिरेऽस्यते ॥५३
अमुकस्य सुवर्गमागता नृपदूताः स्म लसन्ति तावता ।
पुलकावलिफुल्लिताननास्तटलग्ना इव वारिधेर्घनाः ॥५४
इति शृङ्खलिताह्वकारकैरवकृष्टो वरसन्नयस्तकैः ।
किल कण्टकिताङ्गको जनैः पृथुले पथ्यपि सोऽव्रजच्छनैः ॥५५
गुणकृष्ट इवाधिकारकः सुदृशः कण्टकिताङ्गधारकः ।
स न कैः शनकैर्व्रजन् क्षिताविह दृष्टो नितरां महीक्षिता ॥५६
अयि रूपममुष्य भूषिणः सुषमाभिश्च सुधांशुदूषिणः ।
द्रुतमेत च पश्यतेति वामृतकुल्येव ससारसारवाक् ॥५७
अथ राजपथान् जनीजनः स विभूषोऽरमभूषयद् धनः ।
सदनान्मदनात्मकः वरमागत्य निरीक्षितुं सकः ॥५८
दृशि एणमदः कपोलनेऽञ्जनकं हारलतावलग्नके ।
रसना तु गलेऽवलास्विति रयसम्बोधकरी परिस्थितिः ॥५९
अयने जनसंकुले रयादुपयान्त्याः कथमप्यहन्तया ।
सहसा दयितोपसङ्गतात् परिपुष्टं वपुराह विघ्नताम् ॥६०
निषिसेच पृथुस्तनी स्तनन्धयमुत्तार्य समागता पुनः ।
वलभीतलमेव भूयसा पयसा संश्रवता स्फुरद्यशा ॥६१
उरसः स्फुरणेन सम्मदात्स्तनकाभ्यां गलितेंऽशुके तदा ।
मृदुमङ्गलकुम्भसम्मतिमतनोत्तत्क्षणमागता सती ॥६२

मृदुमालुदलभ्रमान्मुखे दधती केलिकुशेशयन्तु खे ।
वरवीक्षणदक्षिणेऽप्यदात्तदलूयाफलमस्य सद्रदा ॥६३
परयोपपतिं समीक्ष्य तत्परिरम्भाभिगमोत्कयातयोः ।
समियद् वरसन्दिदृक्षया स्फुटमेकैकमदायि नेत्रयोः ॥६४
वरसाम्नयने तु तन्निभेनवतंसोत्पलके पुनः शुभे ।
भवतां सुदृशां विचित्पणमिति नो शुश्रुवतुः श्रुतीक्षणं ॥६५
त्वरितार्पितयावशादयोरभियान्त्या द्वितयेन पादयोः ।
रचितानि पदानि रामयाऽथ तदतिथ्यकृतेऽभिरामया ॥६६
असमाप्तविभूषणं सतीरधिभित्तिस्खलदम्बरंयतीः ।
पटहप्रतिनादसम्वशा खलु हर्म्यावलिरुज्जहास सा ॥ ६७
अभिवाञ्छितमग्रतो रयादभिवीक्ष्याशयसूचनाशया ।
निदधावधरेऽथ तर्जनीं वररूपस्मयिनीव साजनी ॥६८
गुणगौरसुवर्णसूत्रकं कलयन्ती करती नरं तकं ।
नयनान्तशरेण सापृषत् परकोदण्डधरापराऽस्पृशत् ॥६९
श्वशुरालयवर्तिनो निजे पतितां दृग्भ्रमरीं मुखाम्बुजे ।
अवरोद्धुमिवावगुण्ठतः सुदृगाच्छादयदप्यकुण्ठनः ॥७०
प्रतिदेशमशेषवेशिनः स्वयमत्युज्वलसन्निवेशिनः ।
प्रवरस्य वरस्य वीक्षणात् पुरनार्यः स्म भणन्त्यनः क्षणात् ॥७१
सुदृशो भुवि वृत्तसत्तमैर्नृपवृत्तैः कविवृत्तकैः समैः ।
जगतां त्रितयस्य सत्कृतं चित्तमूहेऽमुकमालिके सितं ॥७२
सुमनस्सुमनोहरँस्तरामिह मानुष्यकमेव देवराट् ।
परमो परमो हि विग्रहादयते कौतुकतोऽप्यनुग्रहात् ॥७३

परमङ्गमनङ्ग एति तत्सुदृशा योगवशादसावितः ।
भुवि नान्वभिधातुमीश्वरः खलु रूपं परमीदृशं नरः ॥७४
सखि एनमतीत्य सुन्दरं जगदाह्लादकरं कलाधरं ।
स्पृहयालुरहो कुमुद्वती स्वयमकार्यं भवेत्सतीत्यति ॥७५
मखभस्मभृनाङ्गलाच्छनः पतिरार्ये किमु यज्वनांसन ।
मखमस्य समाञ्चितुं सतः प्रभवेदाशु सुवृत्ततां गतः ॥७६
निलयः किल यः श्रियः श्रियस्तुरगास्यस्तु कुतोस्त्वविक्रियः ।
मदनश्च न दृश्य एषक यदनन्यो नतदाश्विनेयकः ॥७७
समुपात्तमुदश्रुभिः पुनर्दृशि मुक्ताफलता किमस्तु न ।
इममङ्ग जगत्त्रयोदरेऽमृतरूपं परिपीय सोदरे ! ॥७८
प्रथमं परिभूष्य काशिकामियमेतस्य सतो हृदाशिका ।
पृथुपुण्यविधिरुपासिकास्ति यतः श्रीश्च यदङ्घ्रिदासिका ॥ ७९
घटकन्तु विधातरं सतोरनुजानामि विचारकारिणं ।
जडमित्यनुजानतो वचः शुचि तावद् धरणौ विरागिणः ॥८०
अथ सोमजवाहिनीत्यतः खलु पद्मालयमालिनी ततः ॥
अनयोर्मिलनं श्रियं श्रयज्जनता सिद्धवरं व्यभावयत् ॥८१
सद्भिराशसितः प्राप भूमिभृद् भुवनं पुनः ।
एधयन्मोदपाथोधिं स राजा विशदांशुकः ॥८२
स वरोऽभीष्टसिद्धयर्थं समाचक्राम तोरणं ।
तत्त्वार्थाभिमुखो ज्ञानी यथा दृङ्मोहकर्म तत् ॥८३
सम्यग्दृगश्रितस्तावद्राजद्वारं समेत्य सः ।
प्राप्तश्चरणाचारित्वं सिद्धिमिच्छन्निजोचितां ॥८४

बन्धुभिर्बहुधादृत्य मृदुमङ्गलमण्डपम् ।
उपनीतः पुनर्भव्यो गुरुस्थानमिवालिभिः ॥८५
विशालं शिखरप्रोतवसुसञ्चयशोचिषां ।
निचयैस्तु शुनासीरव्योमयानं जहास यत् ॥८६
वाहिनीव यतो रेजे सुगन्धिनलिनान्तरा ।
उर्मिकाङ्कितसन्ताना मत्तवारणराजिका ॥८७
हीरवीरचितास्तम्भा अदम्भास्तत्र मण्डपे ।
बभ्रुः कन्दा इवामन्दाः पुण्यपादपसम्भवा ॥ ८८
अर्कसंस्कृतकुड्येषु संक्रान्तप्रतिमा नराः ।
विलोक्यन्ते स्फुटं यत्र चित्राङ्का इव मञ्जुलाः ॥८९
बिम्बितानि तु नेत्राणि जनानां स्फटिकाङ्गणे ।
प्रीत्यार्पितानि निःस्वापैः पुष्पाणीव पुनर्बभुः ॥९०
स्थण्डिलं मण्डपस्यास्या सङ्कटस्यान्तरुज्वलं ।
बभूव भूषणं वारांराशेरासैकतं यथा ॥९१
रम्भोचितोरुकस्तम्भा पयोधरघटोच्छ्रिता ।
गोमयोपहितास्या च वेदीनेदीयसीस्त्रियाः ॥९२
वेदीं मनोहरतमां समगान्नवीना–
मालोकितुं दृगमुकस्य मुदामधीना ।
तावद् विचारचतुरापि सुवाक्कवाटं
स्मोद्घाटयत्ययिपवित्रितचक्रवाट् (?) ॥९३
विश्वम्भरस्य तव विश्वसनेन लोकः,
संशर्म नर्म भुवि भर्म समेत्यशोकः ।

विघ्नश्च निघ्न इह भाति पुनर्विमोहः,
काहंकरो जिनदिनङ्कर शम्वरोह ॥६३
हे छिन्नमोह जनमोदनमोदनाय,
तुभ्यं नमोऽशमनशंसमनोऽदनाय ।
निर्वृत्यपेक्षितनिर्वेदनवेदनाय,
सूर्याय मे हृदरविन्दविनोदनाय ॥६४
मातः स्तवस्तु पदयोस्तव मे स एष,
यस्या अपाङ्गशरसङ्कलितो जिनेशः ।
लक्ष्मीहते यदि हते वरदर्शनन्ना,
मय्यप्यहो विभवकृत् भव सुप्रसन्ना ॥६५
हे धर्मचक्र तव संस्तव एष पातु,
पश्चाद् भुवि क्व परचक्रकथा तु जातु ।
दुष्कर्मचक्रमपि यत्प्रलयं प्रयातु,
सिद्धिः समृद्धिसहिता स्वयमेव भातु ॥६६
नित्यातपत्र परमत्र तव प्रतिष्ठा-
सत्यागमाश्रयभृतामसकौ सुनिष्ठा ।
छायां सुशीतलतलां भवतो घनिष्ठा,
मप्याश्रितस्य किमु तप्तिरिहास्त्वरिष्टात् ॥६७
हे शारदे सपदि संस्तवनं वदामः,
सज्ञाङ्कलाय जगतां तव वारिनाम ।
नैकान्तनिष्ठवचनाय तु सम्पदासि,
धीर्नः पुनर्भवति तेऽपि पदान्तदासी ॥ ६८

निर्यान्तमित्थमुदितेन किलावरोद्धुं,
हस्तौ नितान्तमुदितौ जगदेकयोद्धुं ।
संयोजनामुपगतौ हृदयैकधाम,
कोणात्कृतोऽपि दुरितौघमहो निकामं ॥९९
सम्पूततामतति तां वरराजपादै-
स्तस्मिन्सदम्बरवितान इतः प्रसादैः ।
तत्कालकार्यपरदारतरङ्गचारः,
‡शुद्धान्तसिन्धुरभवत्समुदीर्णसारः ॥१००
का चन स्मितसमन्वितवक्त्रतुल्यतामनुभवत्स्वयमत्र ।
लाजभाजनमदोऽप्युपयोक्त्रीसम्भ्रमौ तरुणिमोदयभोक्त्री ॥१०१
शातकुंभकृतकुम्भमनल्प—दुग्धमुग्धकमुरोरुहकल्पम् ।
जानती तमपि चाञ्चलकेनाच्छादयत्समुपपद्य निरेनाः ॥१०२
कुङ्किरोपितकफोणितयाऽरं प्राप्यसादधिशरावमुदारं ।
गण्डमण्डलमतोलयदेवा-नेन पिच्छलतमेन सुग्वा ॥१०३
सर्पिरर्पितमुखप्रतिमानं सेन्दुकेन्दुदयितप्रणिधानं ।
पाणिपद्ममृदुसद्मसुवेशाऽपूर्वमाप्य कुमुदे मुमुदे सा ॥१०४
उद्धृता न कदली लसदूर्वा पाणिनैव खलु सम्प्रति दूर्वाः ।
किन्तु मङ्गलमुदश्वपदेन गात्रतोऽपि चिदियन्तु हृदेनः ॥१०५
शर्करां तदपि काचिदिहाली प्रोद्दधार मधुराधरदाली ।
पश्यताधरमिदं न मदीयमोष्ठमित्थमधुनोक्तवती यत् ॥१०६

---

‡ अन्तःपुरं ।

संचकार समिधोप्यवलाका संगुणौघगणनाय शलाकाः ।
ताः मुयज्ञसदसो हयविलम्बादङ्गुलीरिव निजा बहुलम्बाः ॥१०७
तामृतीं द्रुतमनङ्गमयेऽत्तुं सम्बभूव सुसमग्रनये तु ।
श्रीपुरोहितवरस्य च देहीत्युक्तिमुक्तिरुदयद् विभवे ह्री ॥१०८
स्रक्करीत्यनुचरी स्मरसायाख्यातिजातिदरमादरदायाः ।
सूचिसूचितशिखां विनिखाया शोधयत्सुमनसां समुदायात् ॥१०६
प्रावृषेव संरसावयस्यया निर्ययौ घनघटासुदक्तया ।
चातकेन च वरेण केकितापन्नजन्यमनुना प्रतीक्षिता ॥११०
कुसुमगुणितदामनिर्मलं सा मधुकररावनिपूरितं सदंसा ।
गुणमिव धनुषः स्मरस्य हस्त-कलितं संदधती तदा प्रशस्तं ॥१११
तरलायतवर्तिरागता सा पुनरस्मिन्स्मरदीपिका स्वभासा ।
अभिभूततमाः समाजनानां किमिव स्नेहमिति स्वयं दधाना ॥११२
पुरतः पुरुषोत्तमस्य सेवाथ सुता भूभृत उग्रतेजसे वा ।
सुकलाशुकलाधराय शर्मनिधये प्रीतिजनन्यनन्यधर्म ॥११३
विलसत्सु महत्सु सत्सु तत्र दृगगाच्चारुदृशो जयोऽस्ति यत्र ।
कति सन्ति न पादपा मुदे नः पिकवध्वाः पुनराम्र एव ते न ॥११४
सरसेऽपघने घनेश्वरस्य न करालम्बनकृत्समागमिष्यत् ।
निमिषो यदि तत्र सन्निमग्ना दृगमुष्या अभविष्यदेव लग्ना ॥११५
अधिकं निममज्जसा पुरश्चावतरन्ती पुनराव्रजन्न पश्चात् ।
प्रसवाशुगसाधितापि शस्याप्यमृतस्रोतसि तत्र दृष्टिरस्याः ॥११६
दृक् तस्य चायात्स्मरदीपिकायां समन्ततः सम्प्रति भासुरायां ।
द्रुतं पतङ्गावलिवत्तदङ्गानुयोगिनी नूनमनङ्गसंगात् ॥११७

अभवदपि परस्परप्रसादः पुनरुभयोरिह तोषपोषवादः ।
उषसि दिगनुरागिणीति पूर्वा रविरपि हृष्टवपुर्विदो विदुर्वा ॥११८
नन्दीश्वरं सम्प्रति देवतेव पिकाङ्गना चूतकसूतमेव ।
वस्वौकसारा किमिवात्र साक्षीकृत्याशु सन्तं मुमुदे मृगाक्षी ॥११९
अध्यात्मविद्यामिव भव्यवृन्दः सरोजराजिं मधुरां मिलिन्दः ।
प्रीत्या पपौ सोऽपि तकां सुगौरगात्रीं यथा चन्द्रकलां चकोरः॥१२०
कमलामुखीमयमक्षिरश्मिभिः श्रीपरिफुल्लदेहां,
रसति स्मेयमिमं खलु रमणीधामनिधिं स्वाधारं ।
ग्रहणग्रहणस्यादौ परमो भविनोरभिविश्रम्भं,
भवतु कवीश्वरलोकाग्रहतो हावपरश्चारम्भः ॥१२१

(कराग्रहारम्भश्चक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामरोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
तस्योक्तिः प्रतिपर्वसद्रसमयी यं चेक्षुयष्टिर्यथा-
मुं सम्व्येति मनोहरं च दशमं सर्गोत्तमं संकथा ॥१२२

इति श्रीवाणीभूषण-महाकवि-ब्रह्मचारि-भूरामलशास्त्रि-रचिते
जयोदयापरनामसुलोचनास्वयम्वरमहाकाव्ये
दशमः सर्गः समाप्तः



अथ एकादशः सर्गः

रूपाभृतस्रोतु स एव कुल्यामिमामतुल्यामनुबन्धमूल्यां ।
लब्ध्वाक्षिमीनद्वितयी नृपस्य स लालसा खेलति सा स्म तस्य ॥१

प्रेम्णास्य पीयूषमयूखवन्तं समुज्ज्वलं कौमुदमेधयन्तं ।
पुरा तु राजीव दृशः किलोरीचकार राज्ञो दृगियं चकोरी ॥२

दृशे नृपस्यान्ततृपेऽथवाराग्रमात्रतोया सहसाऽसुधारा ।
सारात्पुनः स्फीतमुखेन्दुसारासुरीति कर्त्री समभूत्सुधारा ॥३

विलोकनेनास्य निशीथनेतुः समुल्वणे सन्द्रससागरे तु ।
द्रुतं पुनः सेति पदं वदोऽहमुच्चैस्तनं पर्वतमारुरोह ॥४

हृद्यागता मानवतां नृपस्य समुन्नतं वृत्तमिहाप्यपश्यन् ।
सामोदभावेन पुनर्निरापत्सतीति मुक्ताफलतामवाप ॥५

कालागुरोर्लेपनपङ्किलत्वाद् दृष्टिः स्खलन्तीव च सस्पृहत्वात् ।
तनौ चरिष्णुः सुदृशोऽप्यपूर्वा उरोरुहाभोगमगान्मुहुर्वा ॥६

पुनश्च निश्रेणिमिवैणशावदृशोऽवलम्ब्य त्रिवलिं यथावत् ।
स तृष्णया नाभिसरस्यथापि किलावतारः शनकैस्तयापि ॥७

या पद्मिणी मञ्जुलतासु नाभिव्यक्त्या मुदालम्बितरङ्गमाभिः ।
दृष्टिः सदाचारसमष्टिनावमधिष्ठितागादनिमेषभावं ॥८

सुवर्णसूत्राभ्युपलम्भनेन समारुरोहाथ ततः सुखेन ।
तुङ्गं पुनः सा परिधाय कायमहार्यमार्यप्रकृतेः समायं ॥९

कलत्रचक्रे गुरुवर्तुले दृक् भ्रान्त्वा स्खलन्तीति परिश्रमस्पृक् ।
स्थिरा बभूवाथ किलोरुहेमस्तम्भन्तु धृत्वा स्वकरेण सेमं ॥१०
भृङ्गीव दृक्हस्तिपुराधिपस्यावगाह्य सद्गात्रलतां च तस्याः ।
प्रसन्नयोः पादसरोजयोस्सा गत्वा स्थिराभूदधुना सुतोषा ॥११
समागतां वामपरम्परायाः पीत्वा स्रुतिं कोमलरूपकायां ।
तरङ्गभङ्गीतरलाभिनेतुर्जगाम जन्माथ च मानसं तु ॥१२
सुवर्णमूर्ती रचितापि यावत्समेति सैषा निरवद्यभावं ।
तेजस्तरैः संगुणिता प्रदृश्या न संस्पृहं कस्य मनोऽत्र च स्यात् ॥१३
अन्यत्र वाञ्छाविरहादिदानीं चेत्रेऽत्र वै शान्तिकसन्निधानी ।
श्रीमाननुष्ठानपरः स्मरो हि समस्ति नित्यामरताभिरोही ॥१४
नतभ्रुवो भोगभुजावभूतः समेत्यसौ श्रीवयसा निपूतः ।
अथोरगोगूढपदोऽपि सत्याः पयोधरत्वं युवतेर्भवत्याः ॥१५
प्रजापतेर्यः शिशुतामवाप्तोऽस्याविग्रहात्सः प्रथमोऽपि भावः ।
पलायते पुष्पशरस्य कर्मकरेण लब्धो वयसापि यावत् ॥१६
पादैकदेशच्छविभाक् प्रसक्तिभृतः स्वतः पल्लवतां व्यनक्ति ।
रामस्ति यः स्वस्य तु वाच्यतातत्परः प्रवालोऽपि स चाभिजातः ॥१७
पादारविन्दद्वितयाग्रदेशेऽनुरञ्जितः श्रीसुदृशः सुवंशे ।
विधेर्वशात्साधुदशत्वशंसः सोमः समस्त्वेष सतां वतंसः ॥१८
हैमं तुलाकोटियुगं च कस्मान्ममाप्यमूल्यस्य निवद्धमस्मात् ।
रुषारुणं श्रीचरणारविन्दद्वयं सुदन्त्या विभवन्तु विन्दत् ॥१९
शिरस्तु धत्तौ सुषुमाभिमान—जुषां रुषा सम्वपुषां धिया नः ।
तत्रत्यसिन्दूरकलासमस्यावशेन पादावरुणौ स्विदस्याः ॥२०

विशुद्धपार्ष्णी जयतः प्रयाणे श्रीराजहंसाम्बलतुल्यपाणेः ।
पादाब्जराजौ न हि चित्रमेतत्सेव्यावहो भूमिभृतोऽपि मे तत् ॥२१

जंघे सुवृत्ते अपि बुद्धिमत्याः स्वयं सुवर्णानुगते च सत्याः ।
मनोजनानां हरतो यदीमे विलोमतैवात्र तु सेमुषी मे ॥२२

मृगीदृशोऽस्याः प्रसृताच्छलेन प्रेङ्खाभरुस्तम्भमयीत्यनेन ।
रतेर्विधात्रा घटिता यदन्तः स्फुरत्पदाङ्गुष्ठनखांशुराजिः ॥२३

जाड्यात्तु गुर्वङ्कमधोविधायासक्तौ तपोभिः स्विदनिष्टतायाः ।
सहेत निस्सारतया समस्यां मोचोरुचारुर्भवितुं तु यस्याः ॥२४

मृगीदृशो जानुयुगे स्वयम्भाजिता यतः श्रीतरुणी च रम्भा ।
रम्भा पुनस्तिष्ठतु दूरमेव जातामुदेव स्तुतयाऽत्र देव ॥२५

अन्यातिशायी रथ एकचक्रः रवेरविश्रान्त इतीध्मशक्रः* ।
तमेकचक्रं च नितम्बमेनं जगज्जयी संलभते मुदे नः ॥२६

स्मरार्थमेकः परदर्पलोपी दुर्गः पुनर्दुर्लभदर्शनोऽपि ।
नितम्बनामा रसनाकलापच्छलेन शालः परितस्तमाप ॥२७

नौद्धत्ययुक् चापि कुतो जघन्यः पुरो नितम्बस्य गुरोर्भवत्यः ।
सदोरुवृत्ताभ्युदयीत्यशेषे विलोमता किन्तु पुनः कुदेशे ॥२८

सुखेक्षणप्रांगणतो हि तस्य नन्दीश्वरस्यात्र समागतस्य ।
सुपर्वधाम्नो वसुधाप्रशस्तिः श्रीसिद्धचक्रन्तु नितम्बमस्ति ॥२९

वक्रं विनिर्माय च शीतभासोऽमुष्मिन्भ्रमात्कुड्मलतामियाणेः ।
निजासनादाकुलतां प्रयाता न निर्ममे मध्यमितीव धाता ॥३०

* काम एवेंद्रः ।

गुरुर्नितम्बः स्विदुरोजबिम्ब उरुः कृशीयांस्त्वयमत्र डिम्बः ।
माभूत्त्वमाभूर्लभतेऽवलग्नं सैषा सुकाञ्ची गुणतो ह्यविघ्नं ॥३१
गुरोर्नितम्बाद्वलिपर्वणां तत् त्रयीमधीत्याखिलकर्मणांतः ।
जुहोति यूनां च मनांसि मध्यस्तारुण्यतेजस्यथ सन्निबध्य ॥३२
जगज्जिगीषाभृदनंगजिष्णुरथस्तथैतस्य वरं चरिष्णुः ।
परिस्फुरन्ती पथपद्धतिर्वास्मिन्विग्रहेऽतस्त्रिवलीति गीर्वा ॥३३
एनां विधायानुपमां भविष्यत्स्तनस्मरोऽस्याविधिरप्यशिष्यः ।
मध्यादतोऽध्यात्तसदंशभागस्तदङ्गुलीनां त्रिवलीति भागः ॥३४
सरस्वती या प्रथमा द्वितीया लक्ष्मी च सृष्टौ सुदृशां सती या ।
सर्गस्तृतीयोऽयमितीव सृष्टा चकार लेखास्त्रिवलीति कृष्टाः ॥३५
अस्या विनिर्माणविधावहुण्डं रसस्थलं यत्सहकारिकुण्डं ।
सुचक्षुषः कल्पितवान्विधाता तदेव नाभिच्छलतोऽस्ति ताताः ॥३६
सुदक्षिणावर्तकनाभिकूप-पदाद्वदाम्युत्तमकुण्डरूपं ।
स्मरस्य सन्तर्पणभृत्तदीय-धूमोच्छ्रितिर्लोमततिः सतीयं ॥३७
लोमोत्थितिः सौष्ठववैजयन्त्यां सुमेषु साम्राज्यपदं लिखन्त्याः ।
तारुण्यलक्ष्म्या गलिताथ नाभिगोलान्मपेः मन्ततिरेव भाभिः ॥३८
पयोधरोऽभ्युन्नमतीह वृष्टिः रसस्य भूयादिति लोमसृष्टिः ।
पिपीलिकालीक्रमकृत्प्रशस्तिः विनिर्गता नाभिबिलात्समस्ति ॥३९
बृहत्स्तनाभोगवशाद् विलग्नः कश्चिद्विभग्नोस्त्वित भावमग्नः ।
विधिर्ददावेनमिहोदरे तु लोमालिदण्डं तदुदात्तहेतुं ॥४०
साधुः स्मरः सज्जघनासनेऽतोनुतिष्ठति श्रीपरलोकहेतोः ।
कमण्डलुर्नाभिमिषेण भातु लोमावली सम्प्रति पिच्छिका तु ॥४१

बिलान्तरं श्रीमदुरोजभाजः गन्तुर्विलाद्वा स्मरसर्पराजः ।
समस्त्वसौ पद्धतिरेव शस्ता रोमावलीनाभिपदादधस्तात् ॥४२
अस्याः स्फुरद्यौवनभानुतेजः शुष्यन्महद्वाल्यजलान्तरायाः ।
विभात एतावधुनान्तरीपौ स्तनच्छलेनापि तु †नर्मदायाः ॥४३
यद्वावशिष्टं तदिहास्ति निष्टं स्फुटस्तनाभोगमिषादभीष्टं ।
संग्रह्य सारं जगतोऽङ्गसृष्टावस्या यदारम्भपरस्तु सृष्टा ॥४४
अस्याः स्तनस्पर्द्धितया घटस्य शिल्पादिवाल्पादिह पश्य तस्य ।
स चक्रभर्ता मणिकादिभारकर्तापि देवाकथिकुम्भकारः ॥४५
हृद्याप वैदग्ध्यमभूतपूर्वममान्तमस्मत्प्रणयं च तेन ।
समुत्सहाहारवर ‡ प्रभाविन्युच्छ्रुन्नतामेति कुचच्छलेन ॥४६
अस्याः किमूचे कुचगौरवन्तु श्रियोप्यपूर्वा इह सञ्जयन्तु ।
करं परं दाष्यति मादृशोऽपि यत्राखिलक्ष्मापतिदर्पलोपी ॥४७
हारावलीयं तरलाऽवलाया उत्तुङ्गयोः श्रीस्तनयोश्च भायात् ।
मध्यादिदानीं + यमकस्तुभाजोः सीतेव सम्यक्परिपूरिताऽजौ ॥४८
सुदक्षिणं क्षेत्रमिदं ×कुमार्या नितम्बतो वार्पधरादिहार्या ।
लावण्यगङ्गाभिसरत्यभङ्गाभिनाभिकुण्डं किमुत प्रसङ्गात् ॥४९
दधत्प्रवालोऽपि तु पत्रतां यः विङ्गैरभीष्टः कुपलाख्यया यः ।
निर्भीकलोकस्य गिरेति तु स्याच्छ्रयस्य सोऽप्यस्तु समोऽप्यमुष्याः

† आनन्ददायाः, नर्मदाया नाम नद्याश्च ।
‡ हारवरस्य मुक्तावल्याख्यस्य हारवरस्य नाम, संवर्द्धनशील पदार्थस्य च ।
+ यमकगिर्योः ।
× अविवाहितायाः, जम्बूद्वीपस्य च ।

विम्बो न पद्मोऽर्हति यत्र पाणेस्तुलान्तु लावण्यगुणार्णवाणेः ।
स्फूर्तिं पुनर्वाञ्छति पल्लवस्तु तत्रेति बाल्यं परमस्तु वस्तु ॥५१

सरोजसारं करमब्जयोनिः समर्पयामास स राजधानीं ।
इमामनुस्मृत्य जगद्विजेतुः स्मरस्य सद्दक्षिणतैकहेतुं ॥५२

अस्यैव सर्गाय कृतः प्रयासः पुरा सरोजेषु मयेत्युपाश ।
विधिश्च सौन्दर्यनिधेरुदारः करे च रेखात्रितयं चकार । ५३

स्फुरन्नखस्याङ्गुलिपञ्चकस्यापदेशतोऽस्याश्च करे प्रदृश्या ।
स हेमपुङ्खावहुपर्वसत्त्वाऽनङ्गस्य वै पञ्चशरीति कृत्वा ॥ ५४

करः स्मरैरावतहस्तिनस्तु शेषावतारो जगतं समस्तु ।
सौन्दर्यसिन्धोः कमलैककन्दोपमो भुजोऽसौ विशदाननेन्दोः ॥५५

पराजितास्यागलकन्दलेन मन्ये मुहुः पूत्करणास्यरीणा ।
मिषान्निपादर्षभमात्रगम्या मता विपञ्चीति जनैस्तु वीणा ॥५६

गानं कवित्वं मृदुता च सत्यमेतच्चतुष्कं सुदृशोऽधिकृत्य ।
गलेऽथ लेखात्रितयेण चागः ग्रहाणये किन्नु कृतो विभागः ॥५७

लावण्यसिन्धोरुदितः कबन्धोदयी न कण्ठः सुदृगाख्यबन्धोः ।
कम्बुश्च सम्बुद्धिमथोपहर्तुं जगज्जिगीषोः स्मरभूमिभर्तुः ॥५८

मन्ये मृगाङ्कं मुखमुल्लसत्वान्मृगैकदेशेक्षणलक्षितत्वाम् ।
छन्ना किलोच्चैस्तनशैलमूले छाया तु लोमावलिकानुकूले ॥५९

कुशेशयं वेद्मि निशासु मौनं दधानमेकं सुतरामघोनं ।
मुखस्य यत्साम्यमवाप्तुमस्या विशुद्धदृष्टेः कुरुते तपस्यां ॥६०

मुखं तु सौन्दर्यसुधासमष्टेः सुखं पुनर्विश्वजनैकदृष्टेः ।
‡स्त्वं श्रियः सम्भवति ह्रियश्चाशु खं च मे स्याद्विरसो न पश्चात्॥६१
*नवालकेनाधरताम्रवाले मुखेन याऽमानि सुदन्तपालेः ।
सुपा(धा)किनेमेमधुलेन साऽलेख्यथा सुधालेन विधौ सुधाले ॥६२
स्मितांमृताशोरपि कौमुदीयं रुचिः शुचिर्वाक्यमिदं मदीयं ।
वेलातिगानन्दपयोधिवृद्धिर्लोकस्य नो कस्य पुनः समृद्धिः ॥६३
पिकस्वनाया वदनाग्रजन्मा नवोदयं याति सदैव तन्मा ।
रदच्छदाभोगमिषादवन्ध्या समग्रतोऽसौ समुदेति सन्ध्या ॥६४
खण्डं गिरः पौंडविजित्पदायाश्चेदाश्रयिष्यन्कथमप्युपायात् ।
सुपर्वधामाभिभवामकान्ता❀ किमग्रहिष्यत्सुमनाः सुधां तां ॥६५
मन्येऽमुकं रागसुभागसत्वं बिम्बन्तु बिम्बस्य किलाधरत्वं ।
हेतुस्तु सम्वादपथीह देव मिथोऽस्तु ×नामव्यतिहार एव ॥६६
अव्यक्तलेखांकितमेति शस्तं नतभ्रुवश्चाधरपल्लवस्तं ।
यन्त्रं जगन्मोहकरं स्वभावात्समङ्कितं मन्मथमन्त्रिणा वा ॥६७
उच्चैस्तनाहार्यविहायुमायाः श्रीविद्रुमच्छायतया स भायात् ।
मरोस्तुलामेत्यधरोऽथवास्या यतः पिपासाकुलितश्च नास्यात् ॥६८
विराजमाना +ह्यमुना मुखेन सुधाकरेणापि तथा नखेन† ।
अवर्णनीयोत्तमभास्करावानिशा यथा ÷शस्यतमस्वभावा ॥६९

---

‡ आनुकूल्यं । * नवीनालकयुक्तेन, बालावस्थारहितेन च ।
❀ दुःखहन्त्रीं, अमनोहरां च ।
× परिवर्तनं ।
† मुकाररहितेन मुखेन खेन स्वर्गेणाकाशेन च ।
+ न विद्यते खं नाशो यस्य । ÷ अतिश्लाघनीया, बहुतमोमयी च ।

तान्ताममास्थाप्यमुना मुखेन विधोर्विधास्यालसता नखेन ।
कलं ददाना भवतात्स्वकीयं सुधाकरोऽहं खलु कौमुदीयं ॥७०
सुनासिका चञ्चुबृहच्छरीरः यदीष्यते सम्प्रति मारकीरः ।
दन्तावली दाडिमबीजभुक्तिः प्रवालशुक्तिः प्रथिताधरोक्तिः ॥७१
जित्वा त्रिलोकीं स्विदमोघवाणस्तूर्णीं द्विवार्णीं विफलान्तु जानन् ।
तत्याज लात्वाथ सुगन्धगम्या नासेति धात्रा रचितास्ति रम्या ॥
अपूर्वरूपाममुकां विधातुं श्रीमङ्गलोक्ती रुचितेव धातुः ।
अवत्य × विस्मापनदैवतायार्पितापि नासा खलु *गुल्गुलाया ॥७३
सारं सुधांशोस्समवाप्य मध्यात्कृतौ कपोलौ सुपुमंकसिद्धयाः ।
तज्जम्भपीयूपलवोपलम्भाद् रणं पुनस्तत्र कलङ्कदम्भात् ॥७४
जगन्ति जित्वा त्रिभिरेव शेषानुपायनीकृत्य पुनर्विशेपात् ।
दृग्भ्यामितः पञ्चशरः स्मरोऽतिशेते विधिं नौ सफलीकरोति ॥७५
कृत्वा ललाटेऽर्द्धमिहोडुशक्रं घनीभवत्सौधरसौघनक्रं ।
स्फुरद्रदव्याजसुधांशयोः सत्पादावथादात्तु कपोलयोः सः ॥७६
सकज्जले एव दृशौ तु तत्वावलोचिके अप्यति चञ्चलत्वात् ।
सुदूरदर्शित्वमिवोपहर्तुं श्रुतीतदन्ते निहिते चकर्तुः ॥७७
संस्कर्तुमुच्चैस्तनहेमकुम्भौ भ्रातर्विधाता यतते स्वयम्भो ।
तेजांसि तूत्तेजयितुं हि नासामिषेण भस्त्रा रचिता तथा सा ॥७८
दग्धं कुधाकामधनुर्हरेण पुनर्जनिं तद्विधिनाऽदरेण ।
प्राप्य भ्रुवोर्युग्भमिषेण सत्याः सुबालभावं लभते मृदन्याः ॥७९

× कामदेवः । * नैवेद्यविशेषः ।

कोदण्डयान्तायतलोचकान्तादपाङ्गबाणान्त्यजतीति कान्ता ।
अस्माकमत्रैव मनोहरन्ती +वैरस्य सत्वं ‡परमुच्चरन्ती ॥८०
मृगीदृशः कुन्तलसंग्रहेण परास्तपक्षः शिखिराड्रयेण ।
बिभर्ति युक्तं ÷ककुबन्तरन्तु प्रवर्तकाडम्बरभृत् समन्तु ॥८१
शेषो नतभ्रु वोऽनेन वेणिबन्धेन निर्जितः ।
वृतः शुचा रुचा पाण्डुरन्यथा समभूत्कुतः ॥८२
समं शिरोजैः सुरभिर्नतभ्रु वः स्वचामरस्यात्र तुलैषिणो भवत् ।
अनागसेवालतयापि चापलं वदत्यदः पुच्छविलोलनादलं ॥८३
मायापि माया न समर्थिता या कायाप्यकायात्र(न्य)जनीक्षितायां ।
सुरीतिकर्त्री च सुवर्णभावाद्ब्रुवीत्यहोऽसौ प्रवराऽवरा वा ॥८४
अस्या हि सर्गाय पुरा प्रयासः परः प्रणामाय विधेर्विलासः ।
स्त्रीमात्रसृष्टावियमेव गुर्वी गुर्वीत्यतोऽसौ पदसम्पदुर्वी ॥८५
इतः परा सम्प्रति मेनकापि समृद्धिधानामतिलोत्तमापि ।
सदापरम्भादरमित्यतस्तु जानेऽप्सरस्नेहविधानवस्तु ॥८६
सदुष्मणान्तस्थसदंशुकेन स्तनेन कृत्वा मुकुलोपमेन ।
चेतश्चुरायापटुता तुला वा स्वरङ्गनामानमिता रुचा वा ॥८७
असौ कुलीनापि पुनीतभावाच्चेतश्चुरा वा पटुता तुला वा ।
श्रीव्यञ्जनस्फीतिमतीव देहान्तस्थोष्मवृत्तेति पुनर्महा ॥८८

÷ शत्रुत्वस्य सद्भावं, पक्षे वै रस्य सत्वं सरसत्वं ।

‡ परमत् चरन्ती, परं उच्चरन्ती वा ।

+ सरस्वती दिशा च ।

कायादितो भान्ततया च मे कान्तित्येव कृष्णस्य सतां विवेकात् ।
जगुः स्वयं राजगणस्त्वपूर्वाभिमांलसन्मङ्गलमञ्जु दूर्वा ॥८६
वामामिमां वेद्मि तथाभिरामां नामापि यस्यः किल भातु सा मा ।
यद्वापदोरेव मदोज्झिता सामुष्यास्स्थितैवश्च ममाभिलासा ॥६०
पुन्नागपुत्रीयमहो पवित्री कृतावनिः कात्र तुला भवित्री ।
सा नागकन्यापि यतो जघन्या क्व किन्नरीणान्तु नु मैव धन्या ॥६१
ये येऽनिमेषा विचरन्तु ते तेऽप्सरस्सु नो मे तु मनोऽधिशेते ।
इमामिदानीं मम सौमनस्यं सुधाधुनीमेतितरामवश्यम् ॥६२
निर्माणकाले पदयोरुतात्रामुष्या यदुच्छिष्टमहो विधात्रा ।
प्रयत्नतः प्राप्य ततः कृतानि ख्यातानि पद्मानि तु पङ्कजानि ॥६३
सुवेपु शुम्मत्सरकैकदेव्याः कादम्बरीमुज्वलवर्णसेव्यां ।
स्तवीमि या कर्णपुटेन गत्वा मदप्रदा मन्मनसीष्टसत्वा ॥६४
अद्वैतवाग्यद्विजराजतश्चाधिकप्रभाव्यास्य मदोऽस्त्यपश्चात् ।
दिदेश बाणान्मदनस्य शुद्ध्या पिकद्विजोऽभ्यस्यतु तान्सुबुद्ध्याः ॥
चारुर्विधोः कारुरुता मृतात्मा स्वरुक् सदारूपनिधेरुतात्मा ।
पद्मोदरादात्ततनुः शुभाभ्यां विभ्राजते मार्दवसौरभाभ्यां ॥६६
गौरीदृशीयं वृषशर्मवास्तु कृष्णश्रियः किं महिषी ममास्तु ।
प्रसक्तयेऽनङ्गमयप्रभावा या रोहिताक्षेपु वरस्य सा वा ॥६७
करौ विधेः स्तस्त्ववरोधियापि सवेदनस्येयमहो कदापि ।
नमोस्त्वनङ्गाय रतेस्तु भर्त्रे स्मृत्मैव लोकोत्तररूपकर्त्रे ॥६८
यदेतदङ्गं नवनीतमस्ति श्रीकामधेनोरमृतप्रशास्तिः ।
कुतोन्यथा स्वेदपदाद्द्रवत्वं प्रयाति लब्ध्वा खलु धर्मसत्वं ॥६६

श्रियः स्वकीया सुधियश्च गुर्वी पत्राय सत्रान्तरियं स्विदुर्वी ।
कलांशमात्रग्रहणेन योग्या भोग्या समन्तादिह सा मनोज्ञ्या ॥१००
स्फुरत्कराग्रा मृदुपल्लवा वा चाधरश्रिया नाधिकलम्बवाचा ।
समस्तु सद्यः स्मितपुष्पिताऽऽभ्यां नवालतेयं फलिता स्तनाभ्यां ॥
कणीचिमेनां कुसुमेपु मान्यां समन्ततः कौतुतधृक् सुमान्यां ।
नखाच्छिखान्तं सुमनोभिर्न्तु चक्रेऽतिशस्ते स्तनकुड्मले तु ॥१०२
स्वच्छदलचणवतीयं सती उरोजश्रिया फलोदयवती ।
सत्सु लताख्यातास्विति जाने सौरभार्थमपि सुमनः स्थाने ॥१०३
शशिनस्त्वास्ये रदेपु भानां कचनिचयेऽपि च तमसोभानां ।
समुदितभावं गता शर्वरीयं समस्ति मदनैकवल्लरी (मञ्जरी) ॥१०४
मृचणं मृदिमलचणे रणे काद्रवेयमपि वक्रिमचणे ।
अञ्जनं जयति रूपसम्पदि एतदीयकवरीति नामदिक् ॥१०५
ईदृशीमपि तु पूतभारतामाप्य मे किमु न पूतभारता ।
यामि नीतिविदियामसारतां यामि नीतिविदियामसारतां ॥१०६
साम्प्रतं मम तु कामदारताङ्गीयमप्यततु कामदारतां ।
प्राप्य यामपि तु तामसारतां संसृतिस्त्यजति तामसारतां ॥१०७
अतो यौवनारामसिद्धिस्ततः श्रीफलाभ्यामिदानीमिहोद्भूयते ।
महाबाहुवल्लीमतल्लीतले यद्विलोक्यैव लोकोऽपि मोमूह्यते ॥१०८
इयं नाभिवापी रसोत्सारिणी लोमलाजीजलाजीव चञ्चयते ।
स्मरः सिञ्चकस्तत्पदन्यासहेतोर्वलिव्याजतः पद्धतिः स्तूयते ॥१०९
कर्मकरीति नाम्नास्यास्तुण्डिकेरी महौजसः ।
समाख्याता फलं लब्धुं बिम्बन्तु रदवाससः ॥११०

प्रीतिस्थः परमेषा हि गुणालङ्करणा सती ।
कुतोऽनङ्गाङ्गना तु स्याद्रतिरेवन्तु मे मतिः ॥१११
त्रिवर्गसर्गसम्पत्तिरनया प्रतिभासते ।
अस्माकमिति सम्भाति भार्येति महतां मतं ॥११२
सारभूतामिमां सम्यक् प्रतिपद्य यवीयसीं ।
संसारः सार्थनामासावधुना मादृशां दृशि ॥११३
यच्चेतनाचरितमस्ति तदेव चेतः—
श्चेत्केवलं कलयतीत्थमनङ्गरेतः ।
श्रीरूपमम्बुजदृशो विशदं स्वयन्तु,
तत्केवलं सपदि वर्णयितुं वहन्तु ॥११४
सुष्ठु श्रीसुदृशः स्वरूपकलनं कः ख्यातुमीशोऽनकं,
दृष्टोऽनङ्गभवं सुचारुकरणोऽप्यङ्गस्फुरत्संकथः ।
शस्तेनापि किमायुधेन कलितं व्योम्नः पुनः खण्डनं,
नर्मोक्तौ सुगुणादृतिर्वशमये कल्योऽरथत्वार्थनः ॥११५

(सुदृशः कथनं नाम चक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुपुवे भूरामरोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
तस्येयं कृतिरात्मसौष्ठवतया श्रीमन्मनोरञ्जनी,
सर्गः साधु दशोत्तरं विदधती जीयादिवेत्थं जनी ॥११६

इति श्रीवाणीभूषण-ब्रह्मचारि-भूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये एकादशः सर्गः समाप्तः

अथ द्वादशः सर्गः

शिवमों शिवमों नमोर्हमद्य शिवमों ह्रीं ऋपिवन्दितं तु सद्यः
वशिवं शिवरूपासितं च वृषिवोध्यश्च सुधाशिवोध्यमश्वत्
शशिवन्निशि वर्तते महस्ते दिशि बन्धुर्मपिवर्तिनां नमस्ते
तृपिवारिशिवारिधारिणेवा शिवमेव सिवचोधिदेवतेऽम्बा
ऋषयोऽस्मिशयोभयोपयोक्त्री शिवमुर्वीमयिवः पदोपभोक्त्री
वरदं वरदर्शनश्च येषां चरदन्तश्चरदम्भदुष्टलेशान्
वृषचक्रमपक्रमप्रभाव प्रतियोगि प्रतियोगि च प्रभावत्
प्रबलेऽत्र कलेर्दले खलेनः शिवमेवासिवदस्तु मेत्तुमेनः
कलशः कलशर्मवागनूनदलसंकल्पलसनूफलप्रसूनः
वसुधामसुधावशात्समुद्रः शिवतातिं कुरुतात्तरामरुद्रः
शशिवद्दृशि वल्लभं प्रजायाः शिशिरच्छयतयाध्वनीह भायात्
गणनैकसमाश्रयात्समतं त्रितयं चातपवारणोक्तमेतात्
परमेष्टिरसेष्टि तत्पराणीति सतां श्रोरसतारतम्यफाणिः
किल सन्ति लसन्ति मङ्गलानि सुतरां स्वस्तिकमञ्जुवाग्मुखानि
दृशि वः शिवमस्तु हे सुरेशा मृदुवेशा कुलदेवतापि मे सा
शिवमाशिषियर्तते च येषां गुरवः श्रीपुरवर्तिनोऽपि शेषाः
शिवपौरुषदोरुशर्मशक्तिमनुगन्तुं मनुभिस्त्रिवर्गभक्तिः
कथितापथितावदस्मि गौरी शिवमारुतां भगवान् जयोक्तिमौलिः
सुचिराच्छुचिरागतोऽधुनाथ न वियुज्येत पुनर्ममात्मनाथः

बलिनं नलिनस्रजानुबन्धवशगेत्थं दयितन्तु सा बबन्ध
स्रगहो सुदृशः शयोपचिद्या द्विषते स्तम्भकरीव भाति विद्या
जयवक्षसि सा पुनः प्रगत्याऽजनि वेणीव तदाश्रियो जरत्याः
सुममाल्यमिदं वितीर्य चेहातुलसम्मोदभरातिपीनदेहा
उपनीतवतीप्रसादमेषा स्वयमन्तः शयमीशितुर्विशेषात्
सुखतो हृदि गिःश्रियोः प्रणेतुरियमास्थातुमथान्तराघनेतु
प्रमुमोच सुमोच्चयोन्थमालामिपसीमोचितसूत्रमेव बाला
सुमदामभरेण कण्ठकम्बुश्रितमस्याधरजेयराजजम्बू
विनताननवारिजा जवेन स्वयमासीदियभव किन्तु तेन
किमसौ ममसौ हृदाय भायादिति काकुन्थमनङ्गमर्गलायाः
अतिलम्बितनायकप्रसूनस्तवकं माल्यमुदीक्ष्य सोऽथ नूनं
नृप आह स साहसन्तु मे या तनया साम्प्रतमस्ति चेत्प्रदेया
भवताद्भवतां प्रसन्नपादपरिणेत्रीति वरं ममानुवादः
किमु सोस्ति विचारकृत् पयोदः परियच्छन्निह चातकापनोदं
अभिलाषभृतेथ पर्वताय प्रतिनिष्काशयनो ददाति वा यः
हृदयेन दयेन धारकोऽसि त्वममुष्यायदनुग्रहैकपोपी
असमञ्जसवार्धिराशु भावात् परितीर्येत किलेति बुद्धिनावा
सुमदामसमङ्कितैकनम्नः किमिवाधारिरुचिर्मदीयधाम्ना
वरवागिति निर्जगाम द्रष्टुं फलवत्तामथयोन्सवस्य स्रष्टुं
मम धीर्यदुपेयसारिणी वा भवतोऽस्मद्भवतोपकारिणी वाक्
श्वशुराश्वसुराजिरेप कामे मनसे किन्न भवेद्भसद्य वामे
अहहाग्रहहावभावधात्री मम च प्रेमनिबन्धनैकपात्री

भवतां भुवि लब्धशुद्धजन्मावर आहेति समेतु माम तन्मां
इयमभ्यधिका ममास्त्य सुभ्यस्तुलनीयापि न साम्प्रतं वसुभ्यः
भवते नवतेजसे प्रसाद इति वाक्यं खलु सुप्रभा जगाद
सुरभिर्नु रभीष्टदर्शना मे मनसीयं सुमनस्यथास्त्ववामे
परितश्चरितं मयैतदर्थं मम सर्वस्वमिहैतया समर्थम्
किल कामितदायिनी च यागावनिरित्यत्र पवित्रमध्यभागा
तिलकायितमञ्जुदीपकासावथ रम्भारुचितोरुशर्मभासा
वनितेव विभातु निष्कलङ्कासफलोच्चैस्स्तनकुम्भशुम्भदङ्का
विलसत्त्रिवलीष्टिनाभिकुण्डा शुचिपुष्याभिमतप्रसन्नतुण्डा
द्विजराजतिरप्क्रियार्थमेतल्लपनश्रीरिति शिक्षणाय चेतः
द्रुतमक्षतमुष्टिनाथ यागगुरुराडेनमताडयद् विरागः
यदभूद्वचसात्रिपूरस्त्रीति भुवि रत्नत्रयवच्छ्रियः प्रतीतिः
द्वयतः स्थितिकारणंकरीतिर्मृदुनि श्रेयसके यशःप्रणीतिः
गुणिनो गुणिने त्रयीधराय मृदुवंशाय तु दीयते वराय
त्रिविशुद्धिमता मया जयाय ह्यसकौ कर्मकरी शरीव यायत्
सुजनानु मनाक् समर्थनं च रवये दीप इवात्र नार्थमश्वत्
उररीक्रियते न किं पिकाय कलिकाम्रस्य शुचिस्तु संप्रदायः
मृदुषट्पदसम्मताय मान्या विलसत्सौरभविग्रहाय काऽन्या
शुचिवारिभुवसमुद्भवायाः परमस्या स्विदमुष्मकेतु भायात्
समभूत्क्रमभूमिरेकधा चाखिलकानीनजनो मनोज्ञवाचा
कुशलैः समवर्षिसम्यगेवास्मदभीष्टं परिवारिसम्पदे वा
किमु धीवरतोऽमुतोऽपरस्य वशगा वारिचरी ह्यसौ नरस्य

भवता दवतादभीष्टमेव सुजनेभ्यो भुवि भाविदिष्टदेवः
कुसुमानि सुमानिनीभिरेतन्फलवद्वक्तुमिव चणं तदेतत्
रदरश्मिमिषाद्विमुश्चितानि सुतरां सूक्तिपराभिरुज्वलानि
यदपि त्वमिह प्रमाणभूरित्यभिवृद्धैरनुमानितोऽसि भूरि
इयमाश्रयणेन वर्णशाला जयतेनामपि धायिकास्तु बाला
वर एव भवानि यन्तु वाराऽस्त्युभयोर्विग्रहलचणं सदारात्
जय एषा तु इमां पराजये स्यादथवेयं वरमेव सम्विधं स्यात्
इयमाश्रितलचणास्ति बाला जायते नाम परिग्रहप्रकाला
भवतात्वबलाबलेन वार्याप्यमुकव्यञ्जनसम्भुजेव कार्या
हृदयं सदयं दधाति विद्धं स्मरवाणैरनयानयान्सुसिद्धं
समभूदिति साचिणीव तस्य सुममाल्येन करद्वयी वरस्य
वरदोर्द्वितयेन तद् हृदाजावुदितं नार्पयितुं सुमाल्यभाजा
ग्रहणाग्रगतस्त्रगंशकेन रुचिरोमित्युदयादि किन्न तेन
सुमदाममिषात्सतां पतिर्यः सुकुडम्वं हृदयाम्वुजं वितीर्य
निजमम्बुजचनुषोऽधिकारं हृदये सप्रतिपत्तिकं चकार
करपल्लवयोस्सतोर्विभान्तीसुममाला पुनरुत्सवेन यान्ती
सुतनोस्तनविल्वयोस्सुमित्रात्र सुसाफल्यमगादियं पवित्रा
जयहस्तगतापि या परेषां कथितान्तःकरणप्रयोगवेशा
स्मरसौधसुभासिकामसेतु हृदि माला किल तोरणश्रियं तु
जगदेकविलोकनीयमाराद्रमणं दृष्टुमिवात्तसद्विचारा
निरियाय बहिर्गुणानुमानिन्नरनाथस्य सरस्वती तदानीं
भवता भवता प्रणायकेन तनयासौ विनयान्विता मुदे नः

शुभलक्षणरक्षणक्रियाया रसतोऽरं वृषतोधिकात्र भायात्
शुचिसूत्रमुपेत्य ना कृतार्थः वरितत्वाच्चरितस्य मापनार्थं
शुशुभे सुशुभेऽङ्गणेऽत्र वस्तुत्रिगुणीकृत्य समर्पयन्नदस्तु
मम दोहृदि वाचि कर्मणीव किमु धर्मे हि च नर्मशर्मणीवः
लभतामियमङ्गजा जगन्ति पुरुपर्वाभिनयात्स्वयं जयन्ती
मुदिरस्य हि गर्जनं गभीरमुदियायोचितमेव यत्सुवीर
धरणीधरवक्त्रतः पुनस्तत्प्रतिशब्दायितनित्यभूत्प्रशस्तम्
नयतो जयतोपयेरुपेतां प्रणयाधीनतया नितान्तमेतां
तनयां विनयाश्रयां ममाथानुनयाख्यानकरीति रीतिगाथा
नरपेन समीरितः कुमारः शिखिसम्प्रार्थितमेघवत्तथारं
समुदङ्करधारणाय वारिमुगभूद्भूवलये विचारकारी
नयनेषु विमोहिनी स्वभावात्प्रणयप्रायतयात्तयानुभावात्
अयि मामकलाधरोचितास्या किमुपायेन न मानिनीमया स्यात्
परिवर्द्धनमुत्तमाविदुर्वा ददतुस्तौ जिनपादयोस्सुदुर्वाः
सुषमा समजायताप्यपूर्वा समभूदंकुरितेव तत्र भूर्वा
द्रुतमेव वधूवरौ समेतौ घृतधारां जिनपादयोर्द्वये तौ
ननु योजयतस्स्म किन्ननीतां स्वहृदोः स्नेहनवृत्तिवत्पुनीतां
निजवंशविशुद्धिकामधेनुः पृथितेयं भगवत्पदद्वयेऽनु
इति दुग्धततिः सतीह ताभ्यां प्रतिक्लृप्ता सुतरां वधूवराभ्यां
परितर्पित एतयोर्जिनेश पदयोस्तद्युगलेन संयुगे सः
सुयशःस्थितये दधीष्टविन्दुः समभूद्येन च लज्जितोऽयमिन्दुः
मधुरत्वमुदेतु यस्य दिक्षु जिनपांघ्रोर्दधतुश्च तौ तमिक्षुं

मदनं प्रतिलब्धुमेव भिक्षुरिति लोकस्य हि पश्यति स्म चक्षुः
समदात्समदानदस्तु वारिजयपाणौ सुदृशः करेऽधिकारी
स च सा जगदीशमासिसेच जगदीशात्तदवातरत्तरे च
संतडिज्जलदेन वा जयेन प्रभुरासेचि सुलोचनान्वयेन
सुरशैल इवाप्रकम्प एषः मुदमेति स्म यतोऽखिलोऽपि देशः
समयं शुचिनामकं समेतः सघनान्दतया ववर्ष चेतः
जलमत्र सकाशिकाधिदेवः वरराजस्य करः समुद्र एव
प्रदधार स दानवारिभावमथवा मास्य सुलोचनापि यावत्
स्मरसाधिकसाधनप्रशंसा नरद्वारावति एव पूरणं सा
निपपात हि पातकातिगाया हृदि पुष्पस्रगनङ्गमङ्गलायाः
सकरः सकरङ्कभावतस्तां फलवत्तां नृपतेः समाह शास्तां
धरति श्रियमेष एव मुक्तः सुतरां सोऽद्य बभूव सार्थसूक्तः
उदितोदकवर्तनादरुद्रतनया रत्नसमर्पकः समुद्रः
खलु पल्लवितोऽभितोऽयमत्र फलतात्प्रेमलताङ्कुरः पवित्रः
करवारिरुहेऽभ्यसिञ्चदारादिति वारां नृपतिर्जयस्य धारां
जलमाप्य समुद्रतो नगेशात् घनवत्प्रीतकरोऽभवत् मुदे सा
उदियाय तडिद्वदुज्वलाऽऽरादनलार्चिश्च पुरोहिताधिकाराम्
कुसमाञ्जलिभिर्धराय वारैरुभयोर्मस्तकचूलिकाभ्युदारैः
जनता च मुदश्चनैस्ततालमिति सम्यक् स करोपलब्धिकालः
सुदृशः करमद्य वीरपाणेरुपरिस्थं खलु भाविनः प्रमाणे
पुरुषायति कस्य सूत्रमेनमनुमन्यस्मितमालिंसत्कुलेन
परिपुष्टगुणक्रमोऽयमास्तामनुयोगः स्फुटमेवमेव शास्ता

प्रददौ वरपाणये शुभायाः करमङ्गुष्ठनिगूढमङ्गजायाः
उपघातमहो करस्य सोढुं क्व समर्थोऽसि परिग्रहस्य वोढुः
नलकोमल एष मणिरस्या अनवद्यद्रव एवमर्पितः स्यात्
सहसोदितसिप्रसारतान्ताकरसम्पर्कमुपेत्य चन्द्रकान्ता
तरुणस्य कलाधरस्य योगे स्वयमासीत्कुमुदाश्रयोपभोगे
उभयोः शुभयोगकृत्प्रबन्धः समभूदञ्चलवान्तभागबन्धः
न परं दृढ एव वानुबन्धो मनसोः श्रियां स बन्धो
परघातकरः करोऽस्य चास्या नलिनश्रीहर एवमेतदास्या
द्वयमप्यतिकर्कशैः किलेतः किमु कार्पासकुशैः स्म बध्यतेऽतः
स्वकुले सति नाकुलेक्षणेन सुखतः सम्मुखतत्त्वशिक्षणेन
अनयोस्त्रयमाणयोः पयोऽपि स्मरजं शान्तिकवारिभिर्व्यलोपि
वसुसारमुदारधारयाऽऽरादुपकाराय मुमोच काशिकाराट्
तमुदीक्ष्यमुदीरिते जने तु सतयोः सात्विकरो महर्षहेतुः
हुतधूपजधूमधन्यधाम्नानुतते धामनि मण्डपेऽपि नाम्ना
मनुजा अनुमेनिरेतदान्तमनयोः सात्त्विकमेतदश्रुतजातं
ककुभामगुरुस्थलेपनानि शिखिनामम्बुदभांसि धूपजानि
खतमालतमांसि खे स्म भान्ति भविनां त्रुट्यदघच्छवीनि यान्ति
हविषा कविसाक्षिणा समर्चीरनुरागोऽप्यनयोर्दृगञ्चदर्ची
क्षणसादधिकधिकं जजृम्भे जननायामुदुपायनोपलम्भे
न सुधावसुधालयैस्तु पीतोत्तममस्यास्तु हविकवीन्द्रगीतौ
मखवन्हिविदग्धगन्धिनेऽस्मायनुयान्तो हि सुधान्धसोपि तस्मात्
ननु तत्करपल्लवेसु मत्वं पथि ते व्योमनि तारकोक्तिमत्वम्

जनयन्ति तदुज्झिताः स्म लाजा निपतन्तोऽग्निमुखे तु ‡जम्भराजाः
नम एतदभङ्गमङ्गलार्थमभवद् होमरवश्च तृप्तिसार्थः
मुहुरेव मखे सकाम्यनादः यजमानाय जिनेशिनां प्रसादः
विशदानि पदानि गेहिसानौ परमस्थानसमर्हणानि वानौ
गतवत्स्युरनागतानि ताभ्यां कलिताः सप्तपरिक्रमाः क्रमाभ्यां
परितः परितर्पितानलं तं कनकाद्रीन्द्रमिवाधुनोल्लसन्तं
मिथुनं दिनरात्रिवज्जगाम सुखतोन्योन्यसमीक्षया वदामः
प्रथमं भुवि सज्जनैर्वृत्त इति वामोऽपि सदक्षिणीकृतः
स्वयमाशु पुनः प्रदक्षिणीकृत आभ्यामधुना शुशुक्षिणी
हिमसारविलिप्तहस्तसङ्गे मिथुने वेपथुमश्नतीह रङ्गे
मुररीमुररीचकार काऽऽरान्मदनाग्नेरुतफूत्कृतेर्विचारात्
स्फुटरागवशङ्गतोऽधरं स सुतनोः सम्प्रति चुम्बतीह वंशः
स्तनमण्डलमीप्र्पयेति वाऽलङ्कृतवान्मञ्जुलवागसौ *प्रवालः
पटहोऽवददेवमङ्कशायी मुरजोऽसौ तु जडः सदाभ्यधायि
सदसीह च वंशजो हरेणुरदवासः परिचुम्बको नु वेणुः
बहिरेव गुणोऽयं एप तान्तस्त्वनुरागस्थितिलाल्यते किलान्तः
पुनरस्ति विरिक्तको मृदङ्गः स्फुटमाहेति स झर्झरोऽपि चङ्गः
निवहन्तमदाद्वरीयसे तु दशनौ जम्पति कीर्तिपूर्तिहेतू
मदविन्दुपदेन कारणनिह्निपतां दुर्यशसे करेणुजानि
सुहृदां भुवि शर्मलेखिनी वा द्विपदग्रे पुनरन्तकस्य जिह्वा
कवरीव जयश्रियोऽर्पितासि लतिकापाणिपरिग्रहे चिताऽसीत्

‡ दन्ताः। * वीणादण्डः।

इयमाह यमात्मवानरं यान्विषमानुत्तरदक्षिणाध्वगम्यान्
गमिताङ्गमिताखिलप्रदेशोऽरुणदम्याञ्जितवान्ध्वरातलेऽसौ
समदायि जनेश्वरेण मह्यामपि पद्मा प्रणयेश्वराय शय्या
यदहीनगणैर्नरोत्तमाय विपदेः संघटितेति सम्प्रदायः
न हि किं किमहो अदत्तमस्मै ददता तां तनुजामपीश्वरेण
मनुजातिसुजाति नात्रिवर्गप्रतिसर्गोऽस्य कृतो नरोत्तमेन
मनुजैरनुविस्मयं तदानीमिह राजन्वति पत्तनेऽप्यमानि
करमुञ्चनमित्यनङ्गरम्यं वचनं स्पष्टतयाऽऽदरान्निशम्य
नरपार्पितमादरात् ग्रहीतमतिना श्रीपतिनापि संग्रहीतं
जगतां तृडुपायनोऽपि कूपः किमु नो वारिदवारिदत्तरूपः
अणताप्रणतारिणापि जातुमखमार्गे न हुता दरिद्रताः तु
वसुधैककुटुम्बिनाथ साऽऽरादुत चिन्तामणिमाश्रिता विचारात्
करपीडनमेप बालिकायाः कृतवानुद्धृतवाञ्छनोऽत्र भायात्
परमास्थितिसाधनैकबुद्धिश्चरणाङ्गुष्ठगृहीतिरेव शुद्धिः
पुरवो ननु पृष्ठरक्षिणो वास्त्यरिहन्ताभुज एष दक्षिणो वा
प्रजया परिपूर्यते पुरस्तादिति वामे क्रियते स्म सा तु शस्ता
मिथुनस्य मिथो हृदर्पणस्य किमहो यच्च पदं न तर्पणस्य
प्रणयोत्तममन्दिराग्रवस्तुवदभूत्स्वस्थलपूरणे पणस्तु
छदिवत्सरलाम्बुमुक्तणेऽसि जडतायाः प्रतिकारिणी सुकेशि
गृहमाव्रजते सतेऽथ वामा क्रियते नाम मया सदाभिरामा
प्रतिकूलविधानकाय वामां वृद्धेभ्योऽतिथये तुजेऽथ वामां
गृहकर्मणि भापणेन वामामनुकर्त्रीमनुभावयामि वा मां

सरलामनुमन्यवंशजां मां कुरुषे कान्तनितान्तमेव वामां
इह चापलतेव सम्वदामि सुगुण त्वं तव कर्मणेऽर्हयामि
यदभून्मृदुमन्द्रवाद्यनाद इतरस्यास्तु यथारुचिप्रवादः
समदीयहृदीच्छितोऽनुवादः प्रभवेदित्यपि शारदाप्रसादः
सुलभीकृतदुर्लभेयमेका जगतां वर्णविशोधिनीनिषेकात्
प्रवरोऽयमियानिमां कुमारीं कृतवानेव वधूं सुपुण्यशाली
गलकन्दलकम्बुराट् समुक्तविलसद्वारिधियाततत्वयुक्तः
अथ तद्धितसम्विरोधजित्सन्नधुना धर्म्यनिवेदिनोध्वनीत्सः
रतिवृत्तकुलोन्नतिस्त्वतिर्यङ्मतिरित्यत्र करग्रहेऽवतीर्य
अपवर्गसमुद्धतिश्च यस्मादिममारांसति सज्जनोऽपि तस्मात्
अशनिर्व्यसनाद्रये विवाह इति देवः पुरुराट् स्वयं समाह
तमुपेत्य चयः सुदुष्प्रवाहपतितः सोऽथ निगद्यतां विवाहः
अपि विश्रमसम्प्रदानशस्याव्रजतो ब्रह्मपथि प्रभोः समस्या
गृहितेत्यनुयोगिनः किलास्यां कथमास्या दुरताघकारिका स्यात्
महतां पदसम्पदिष्टवारार्थिजनेभ्यः सुतरां समुत्तसारा
सुकृताङ्कुरशालिनी प्रतोली न किमित्यत्र सुशर्म्यशर्ममौलिः
न करः किल शौचकृद्विभाति किमु चक्रेण रथोऽथवा प्रयाति
वचनन्तु समर्थ्यतामितीयन्मिथुनेनैव तथाश्रमो द्वितीयः
महिमासहिमारजिच्छ्रियस्तु नियताङ्कोऽपि जितेन्द्रियः समस्तु
गुरवोभिवधूवरं ददुर्वा शुभसम्वादकरी पवित्रदूर्वा
ललितास्स्म लसन्ति हृन्निवेशा वचसा निम्नसमङ्कितेन येषां
असि जीवननायकस्त्वमस्या असकौ ते हृदखण्डमण्डनं स्यात्

सरसः सुततामृते कुतश्रीः कमलिन्यै किल यत्पुनः सदस्त्रि
सुपुलोमजयेव देवराजः सुदृशा ते जयदेव नामभाजः
विबुधैः समितस्य जैनधर्मकृपया सम्भवताच्च नर्मशर्म
पठितं तु पुरोधसा निशम्य शिरसोद्धतु मिवेदमत्र सम्यक्
नमतः स्म गुरूनुदारभावैर्विनयान्नास्त्यपरा गुणज्ञता वै
अनयोः करकुड्मलेऽलिमालायितमेतन्मखधूमसन्मृदिम्ना
अलिके तिलकायितं प्रतीष्टे विनयेनाभिनिबद्धतन्महिम्ना
मम शान्तिविवृद्धिरहसान्तु प्रलयः सत्कृतसेमुषीति भान्तु
हृदये सुदये समस्तु जैनमथवा शासनमर्हतां स्तवेन
उचितामिति कमनां प्रपन्नौ खलु तौ सम्प्रति जम्पती प्रसन्नौ
कुसुमाञ्जलिमादरेण ताभ्यः सुतरामर्पयतः स्म देवताभ्यः
अनयोः करकञ्जराजि सेवामिव कर्तु सुकृतांशसम्यदेवा
मृदुपादभुवीष्टदेवतानां समभूत्साकुसुमाञ्जलिः सुमाना
प्रिययोः श्रिय ईक्षणक्षणेन शुचिनीराजनभाजनप्रणेन
मृदुलाञ्जनसंयुजाहितेन दिनरात्रीभ्रमिमाश्रिते हितेन
पिप्पलकुपलाकुलौ मृदुलाणी विलसत एतौ सुदृशः पाणी
सहजस्नेहवशादिह साक्षाद्वलयच्छ्तः प्रमिलतिलाक्षा
अरिकरिकुलपरिहरणपराभ्यां नयरयमयजयनृपतिकराभ्याम्
योद्धु मिवास्यानवलरुचाभ्यां कञ्चकमञ्चितमपि च कुचाभ्याम्
स्नेहनमुत्तारितमवतार्य त्रिवर्गवर्त्मनि गत्वोद्धार्यम्
अपवर्गप्रतिवददिव ताभिः सुदृशः सुवासिनीमहिलाभिः
कुक्षिरमुष्या फलतु सुनाभिः पुरुवरपुण्यकथाभिरथाभी

मङ्गलमञ्जुलगानपराभिरित्येवमिहाभ्युदितं ताभिः
अथ कश्चन नाथनामवंशसमयस्यापि समीष्यतेवतंसः
परिहासवचोभिरेव धन्याभिजदासीभिरभोजयत् सजन्यान्
स कमप्यद आह काश्चनाऽडरं रचयन्त्वत्र हिते मनोपहारं
सतृषः खलु सर्वतोमुखं च प्रतियच्छन्त्वथ काममोदनश्च
अपि गोत्रिगुणाश्च गोपधाम्नि वृषसंयोजनकारणैकदाम्नि
सति वः समिताः सुपात्रनाम्नीति ददे भाजनकानि काप्यसक्नी
अनुनायि तदर्हदङ्गसृष्टेः सुविधाता निखिले जनेऽपि हृष्टे
अभवत् परिवेषिकासमाजः क्रमशो भोजनभाजनेपु राजन्
अनुविन्दति सुन्दरे नवीनां दररूपोच्चकुचामितः प्रवीणा
स्वमुरोऽम्बरमाददे श्रियेऽवच्युतमारात् पृथुलस्तनी ह्रियेव
अयि चेतसि जेमनोतिचारः सकलव्यञ्जनमोदनाधिकारं
शुचिपात्रमिदं कयेत्थमुक्ताः सहसा जग्धि विधौ तु ते नियुक्ताः
स्फटिकोचितभाजने जनेन फलितायाः युवतेः समादरेण
उरसि प्रणिधाय मोदकोक्तद्वितीयं निर्दयमर्दितं करेण
पदमत्र गतं बुभुत्सुराज्यं प्रतिबिम्बेऽत्र गतेऽपि सम्विभाज्यं
अनुनीविनि वेशयन्स्वहस्तं चकरेदं च मुदञ्चितं ततस्तं
समुवाच सखीं युवेङ्गितज्ञा क्रमशोऽयं चमते न दित्सतान्ते
वरमस्य सुखाय तद्विलोमश्रणताद्व्यञ्जनमेवमिन्दुकान्ते
तव सन्मुखमस्म्यहं पिपासुः सुदतीत्थं गदितापि मुग्धिकाशु
कलशीं समुपाहरत्तु यावत्स्मितपुष्पैरियमञ्चितापि तावत्
निपपौ चषकार्पितं न नीरं जलदाया प्रतिबिम्बितं शरीरं

समुदीक्ष्यमुदीरितश्चकम्पे बहुशैत्यप्रतिवाक् ततो ललम्बे
जलदापरिरब्धपूतवंशा च कियच्चारुकुचेति पश्यते सा
स्फुटमाह करद्वयी समस्यामिह भृङ्गारधृतेर्मिषेण तस्याः
अपि सात्त्विकसिप्रभागुदीक्ष्य व्यजनं कोऽपि विधुन्वतीं सहर्षः
कलितोष्ममिषोऽभ्युदस्तव वक्त्रे ह्रियमुज्झित्य तदाननं ददर्श
रसवत्यपि पायसस्मिता वा घृतवद्व्यञ्जनशालिनी स्वभावात्
मृदुलड्डुकुचाप्रिये वशास्तैरुपभुक्ता बहुवारयात्रिकैस्तैः
मम मण्डकमेहि तावदालेऽस्ति कलाकन्दमपि प्रदेहि बाले
वटकं घटकल्पसुस्तनीतः कटकं संकटकृद्दधामि पीत
मसुरोचितमाह्वयामि बाले सरसं व्यञ्जनमत्र भुक्तिकाले
मधुरं रसतात् पयोधराङ्कमधुना हारमिमं न किं कलाङ्क
उपपीडनतोस्मि तन्वि भावादनुभूष्णुस्तवकाम्रकाम्रतां वा
वत वीक्षत चूषणेन भागिन्निति सा प्राह चचूतदाशु भाङ्गी
किं पश्यस्यपि संरसैरपि न किं नो रोचकं व्यञ्जनम्,
तन्वीदं लवणाधिकं खलु तृषाकारीति नो रञ्जनम्।
तस्मात्सम्प्रति सर्वतो मुखमहं याचे पिपासाकुलः,
सात्राभूत्स्मितवारिमुक् पुनरितः स्वेदेन स व्याकुलः ॥
व्यवस्यतास्तं रसितुं जलत्यजः कृतावनत्या अपि संवयोभुजः।
पूतज्जले मन्दकलेन भूतलेऽपवृत्तिराप्तान्यदृशः किलामले ॥
इङ्गितेषु विफलीकृतो युवान्तं पुनः करनिगालने तु वा।
सत्वरं सकलिताञ्जलिस्तयाऽसेचि साचिविधुताम्बुधारया ॥
परमोदकगोलकावली बहुशोऽभाण्डपिकैर्घनैस्तकैः।
समवर्षिचलत्करस्फुरन्मणिभूपांशुकृतेन्द्रचापकैः ॥

सुखादिरसमाराध्यं सौधसम्पद्दलं कया ।
आत्महस्तोपमं प्रीत्या जन्महस्तेऽर्पितं रयात् ॥
सुधारसमयं भूयो रागायास्वादितं तु यत् ।
प्रियाधरमिव प्रीत्या श्रयन्ति स्माधुना जनाः ॥
आतिथ्ये वस्त्रुटिरेव तु नः स्पष्टपयोधरमप्यस्ति पुनः ।
सुखपुरमिदमिति जन्यजनेभ्यः पथपथ्यवदासीद्गुणितेभ्यः ॥
मृदुतमपल्लवगुणसमवेतैरवनेः कल्पांघ्रिपैरिवैतैः ।
शाखाचरणालम्बनभूतैः सहजायतविभवपरिपूतैः ॥
जनुषः सफलत्वं निगदद्भिः कुसुमानीव मुहुश्च वृहद्भिः ।
उभयोरितरेतरमुक्तानि प्रसन्नभावादथ मुक्तानि ॥
सुरभितसदनादुपेत्य सद्भिर्भुवि गीतास्वजडाशया महद्भिः ।
आश्विनसमये वयं मरुद्भिरिव नीताश्च कृतार्थतां भवद्भिः ॥
निशेन्दुना श्रीतिलकेन भालं सरोऽब्जवृन्देन विभात्यथालं ।
महोदया अस्ति सुसम्पदेवं युष्माभिरस्माकमहो सदैव ॥
द्रागकिञ्चनगुणान्वयाद्धतेदृग् न किञ्चिदिह सम्प्रतीयते ।
सत्कृतौ तु भवतां महामते कन्यका च कलशश्च दीयते ॥
सत्कन्यकां प्रददता भवता प्रपञ्चे,
दत्तं त्रिवर्गसहितं सदनाश्रमं चेत् ।
किं वावशिष्टमिह शिष्टसमीक्षणीयं,
श्रीमद्विचेष्टितमहो महतां महीयः ॥
स्वागतमिह भवतां खलु भाग्यान्निःस्वागतगणना अपि चाज्ञाः ।
किं कर्तुं सुशका अपि राज्ञां निवहामस्शिरसा वयमाज्ञां ॥

यच्छन्ति कल्पफलिना अपि याचनाभि—
रावश्यकं प्रणयिभिस्तु विनापि ताभिः।
नीता वयं सपदि तर्पणमुत्सृजद्भिः,
हर्षत्तया तदधिकं बहुलं भवद्भिः॥
अस्मत्पदस्य परिवादहरो विभाति,
युष्मत्पदागमगुणो हि सदङ्कपाती।
अन्यार्थसाधकतया विचरन्मुवंशे,
सम्यग्मिथस्त्रिपुरुषीमधुना प्रशंसेत्॥
सम्पक्त्वयाभिहितमस्मदुपक्रियार्थं,
युष्माभिरिङ्गितमिदं न पुनर्व्यपार्थं।
यत्कानि कानि न भवद्भिरिहार्पितानि,
हर्षत्तयाशु मुहुरस्मदभीप्सितानि॥
कर्तुं लगनाः सस्तवं च तावदुदारं,
लोकाः श्रीजिनदेवविभोस्ते स्पष्टाभं।
पवित्रेण वै भावना समाख्यानेन,
नन्दककलोक्तिपः सोऽरं संभर्तुर्नः॥

(करोपलम्भश्चक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामरोपाह्वयं,
वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरीदेवी च यं धीचयं।
कार्ये तस्य निरेति सुन्दरतमः सर्गोऽसकौ द्वादश—
संख्याकः प्रणयप्रयोगविषयोऽस्मिन् सुप्रबन्धे च सः॥

इति श्रीवाणीभूषण-ब्रह्मचारि-भूरामल-शास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये द्वादशः सर्गः समाप्तः

अथ त्रयोदशः सर्गः

स्वजनानुविधानुबुद्धिमाननुगन्तुं जगपत्तनं पुनः ।
सपयोदपतिः प्रियापितुः रुचया याचितवान् नयभिजं ॥१
न वदन्नपि काशिकापतिर्वलनेतुर्गुणिनो महामतिः ।
शिरसि स्फुटमक्षतान्ददौ ह्युपकुर्वन्नयनोदर्कैः पदौ ॥२
नगरी च वरीयसो विनिर्गमभेरीविरवस्य दम्मतः ।
भवतो भवतो वियोगतः खलु दूनेव तदाशु चुक्षुभे ॥३
समुपेत्य नियानडिण्डिमं कृतसत्वः स्वजनः प्रचक्रमे ।
गमनस्य कृते कृतेक्षणः कृतवानास्तरणं तु वारणे ॥४
ध्रुवमेव धुरं रथाग्रणीर्धृतवान् चक्रयुगे सुसंस्कृतां ।
कविकामविकारगामिनां लपने सम्प्रति वाजिनामपि ॥५
विकशान्ति कशान्ति मध्यकं स्म तदानीं विनिशम्य भेरिकां ।
पथिकाः पथिकामनामया न हि कार्येऽस्तु मनाग्विलम्बनं ॥६
सुवधूमियमस्ति सत्सती न परः स्पृष्टुमिमामिहार्हति ।
सुरथे स्वयमध्यरूरुहन्निति सम्प्रांशुतरे सुखाशयः ॥७
न हि पीडनभीरुदोर्युगात्स्खलतात्स्निग्धतनुः प्रियादियं ।
स्मर आशुमतिश्चकार ताविति रोमाञ्चभरेण कर्कशौ ॥८
तनये मन एतदातुरं तव निर्योगविसर्जनं परं ।
ललना कलनाम्नि किन्त्वसौ व्यवहारोऽव्यवहार एव भो ॥९
अयि याहि च पूज्यपूजया स्वयमस्मानपि च प्रकाशय ।
जननीति परिश्रुताश्रुभिर्वहुलाजाँस्तनुतं स्म यो जितान् ॥१०

रथिनां पथि नायको जयस्स विभावानिव तेजसाश्रयः ।
निजया प्रियया समन्वितः पुरतो निर्गतवान्जनैः श्रितः ॥११
किमु वर्त्मविरोधिनो जना अधुना चापसरेत चैकतः ।
गजपत्तननायको मत्तस्त्वरमायाति परिच्छदान्वितः ॥१२
अपि निर्भयमास्थिताः कथं व्रजतीतः खलु वाजिनां व्रजः ।
गजराजिरितः समाव्रजत्यथवा स्यन्दनसन्नयस्त्वितः ॥१३
किमु पश्यसि दृश्यते न किं जनसंघट्टनमेतदित्यतः ।
निजमङ्गजमङ्गजङ्गमं सहसोत्थपयधृष्टवर्त्मतः ॥१४
अपि पाणिपरीतयष्टिस्स्वयमग्रेतनमर्त्यसार्थकः ।
निजगाम गमं समुत्तरन् समुदारध्वनिमित्थमुच्चरन् ॥१५
विरहाविरहाशया बभुरनुकुर्वन् स च तान्ययौ प्रभुः ।
उपकण्ठमकम्पनादयः प्रवरस्याश्रुतचारुवारयः ॥१६
अनुगम्य जयं धृतानतिः प्रतियाति स्म समण्डलावधेः ।
अनिलं हि निजात्तटात्सरोवरमङ्गश्वडलापतां गतः ॥१७
सुदृशा सहितस्ततोहितोऽनुगतोऽसौ नृपतेः सुतैः पुनः ।
अनुवासनयान्वितोऽनिलेस्सरस. सम्प्रति शीकरैरिव ॥१८
धवसम्भवसंश्रवादितो ·गुरुवर्गाश्रितमोहतस्ततः ।
नरराजवशाद्दशात्मसादपि दोलाचरणं कृतं तदा ॥१९
चिरतः प्रियचारुकारिभिः सुदृशस्सम्वरितापितुः स्मृतिः ।
प्रियनर्ममहाम्बुधावपि स्थितवान् मातृवियोगवाडवः ॥२०
पितरौ तु विषेदतुः सुतां न तथा जन्मनिजाङ्कवर्द्धितां ।,
प्रविसृज्य विसृज्य तौ यथा दुहितुर्नावकमुल्लसद्गुणं ॥२१

विभवादिभवाजिराजिवाञ्जनतायाा घनतां श्रितो भवान् ।
महितो दयितो भुवः प्रिया-सहितो वा सहितो ययौ धिया ॥२२
कियती जगतीयतीगतिर्नियतिर्नो वियति स्विदित्यतः ।
वियदङ्गणरिङ्गणेन ते सुगमा जग्मुरितस्तुरंगमाः ॥२३
रजसि प्रबले बलोद्धते मदवारा गजराजसन्ततेः ।
शमिते गमितेच्छुभिस्सुखादवबुद्धापदवी पदातिभिः ॥२४
खुरयातविदारिताङ्गणैर्जविवाहैर्विपमीकृतेध्वनि ।
चलितं वलितं समुच्चलच्चरणत्वेन शतांगमालया ॥२५
इतरस्य न वीरकुञ्जरस्सहतेऽयं करपातमित्यसौ ।
रविराशु तिरोहितोऽभवत् ध्यनपार्थिवध्वजचीवरान्तरं ॥२६
यदसंख्यकरा नृपस्त्रपां भुवि नीता विभुनाऽमुना पुनः ।
क महस्तवतत्सहस्रिणो रविमश्वा ह्युदधूलयन् खुरैः ॥२७
द्विषतं हि मनांसि शितशोणोज्वललोलतां ययुः ।
त्रपया कृपयाथ वल्लभाविरहेणाविभयेन भूपतेः ॥२८
किमनर्गलसर्पिणे स्थितिं चमतादातुमहोबलाय मे ।
त्रपयेव रजस्यथोद्धते मुखमेवं नभसा निगोपितं ॥२६
अवरोधनभाञ्जि राजितो नरयानानि चलन्ति विस्तृते ।
अतिमात्रमनीकनीरधौ निदधुस्सत्तरणिश्रियं तदा ॥३०
प्रसृते खलु सैन्यसागरे मकराकारधरा हि सिन्धुराः ।
समुदश्चितहस्तबन्धुराः क्रमशश्चेलुरुदीर्णवार्दरे ॥३१
अयनं क्रियदेतदिष्यते यदि दीर्घाध्वगवाच्यतास्ति नः ।
इति गर्जनयान्वितस्स्वतो मयवर्गो व्रजति स्म वेगतः ॥३२

अपि कण्टकखण्टकादिकं दलयन्तस्समुपानदङ्घ्रिभिः ।
त्वरितं स्म चलन्ति पत्तयस्तुरगेभ्योऽपि रथेभ्य एव वा ॥३३
अनसां धनसारशालिनां जलयानोपमिनां समुच्चयः ।
बलवाजनिधौ सुविस्तृते स च वव्राज जवेन राजितः ॥३४
रथमण्डलनिस्स्वनैस्समं करिणां बृंहितमानि जुह्नुवे ।
पुनरेषु तुरंगहेषितान्यतिताराणि तरामराजत ॥३५
दधता सुसृणि त्वरावता शिर उद्धायतदन्तमण्डलं ।
चलितोऽन्यगजं प्रतीभराट् बहु धुन्वन् कथमप्यरोधि सः ॥३६
गगनाङ्गणमाशु चञ्चलैर्ध्वजिनी सम्प्रति केतनाञ्चलैः ।
सरजो विरजो विभावितुं सहसा सा स्म विमार्ष्टि धावितुं ॥३७
डयनं नयनं प्रसार्यतां स्खलतीतः पतदङ्गनाकुलं ।
समुदीक्ष्य जवेन सौविदो भवति स्तम्भयितुं प्रविक्लवः ॥३८
अपि पश्यत दृश्यमद्भुतं भरमुत्क्षिप्यमथोऽदयो द्रुतं ।
अभिधावति चायताधरः स्विदितोऽयं नितरां भयङ्करः ॥३९
अवलोक्य ललामलञ्जिकालपनं विस्मयमाप्तवान्युवा ।
न हि वेत्ति निजं स्मरादरस्तुरगाक्रान्तमपीत इत्यसौ ॥४०
इति वर्त्मविवर्त्तवार्त्तया सहसाप्तानि पदानि सेनया ।
पदवीह दवीयसी च या समभूत्सापि कनीयसी तया ॥४१
वनभूमिरुपागतागता जनभूमिर्ननु जानता नता ।
फलितैः फलिनैर्गताङ्गताप्युचितेन प्रभुणा सता सता ॥४२
ननु यस्य गुणैषणा मतिस्सहसा छादयितुं महीपतिः ।
विवराणि भुवोऽनुचिन्तयन्निव दृष्टिं तनुते स्म स स्वयं ॥४३

दृशमाशु दिशासु वीच्य तं वितरन्तं नृपमाह सारथी ।
विषयातिशयं महाशयोऽभ्यनुगृह्णन्ननुषङ्गसम्भवं ॥४४
अपि बालववालका अमी समवेता अवभान्ति भूपते ।
विपिनस्य परीतदुत्करा इव वृद्धस्य विनिर्गता इतः ॥४५
स्फुटयोत्कटया समुच्छ्वसन्नपि षट्खण्डवलाधिराडितः ।
अधुना यततां महीरुहामनुगच्छन्निव याति पन्नगः ॥४६
दरिणो हरिणा बलादमी तव धावन्ति मुधा महीपते !
करुणासु परायणादपि क्व पशूनान्तु विचारणा अपि ॥४७
द्विपवृन्दपदाद्दिगम्बरः॰ सघनीभूय वने चरत्ययं ।
निकटे विकटेऽत्र भो विभो ननु भानोरपि निर्भयस्स्वयं ॥४८
विततानि वनस्य भो प्रभोः शिखिपत्राणि मनोहराण्यदः ।
भवतो विभवं विलोकितुं नयनानीव भवन्ति भूयशः ॥४९
विजरत्तरुकोटरान्तराद्दववह्निर्विपिनस्य वृंहिणः ।
रसनेव निरेति भूपतेः रविपादाभिहतस्य नित्यशः ॥५०
×पृषदेष विषाणडम्बरं शिरसा नीरसदारुसम्भरं ।
निवहन्नुपयाति कातरः शनकैस्सम्प्रति हे महीश्वर ! ॥५१
सुफलस्तनशालिनी मुहुर्मुहुरङ्गानि तु विक्षिपन्त्यपि ।
ननु +स्नवतीव राजते द्रुममाला खलु विप्रलापिनी ॥५२
पलितेव पुनः प्रवेणिका विजरत्या गहनावनेरतः ।
समवाप सुपर्ववाहिनी भरतानीकविनेतुरग्रतः ॥५३

॰ अन्धकारः ।
× सरभः साम्भर इति भाषायां ।
+ गर्भिणीव ।

विधुदीधितिबन्धुराधरावलये व्याप्तिमती मनोहरा ।
नृपतेस्तु मुदे नदीकिणस्थिरतेवाग्रिमवर्षपत्रिणः ॥५४
गलितं निजतेजसा जयो हिमवत्सारमिव स्म मन्यते ।
अमुकं प्रवहन्तमग्रतो मनसासौ गगनापगाचयं ॥५५
पुलिनद्वितयाग्रवर्तिनी स्फुटशाटीसमायानुवर्तिनी ।
सरितः परितोषसंस्कृतिस्समभात् शाड्वलसारसन्ततिः ॥५६
कलहंसततिः सरिद् वृति-प्रतिवर्तिन्यतिकोमलाकृतिः ।
परितः परिणामनिर्मला सरलेवाथ बभौ सुमेखला ॥५७
स्फुटहंसजनेन सेविता विरजा नीरजसेन यान्विता ।
सरिता परितापनाशिनी जिनवाणीव तरङ्गवासिनी ॥५८
अभिरामतया सलक्ष्मणा सरितासीज्जनकात्मजेव या ।
सहसा सलवङ्कुशाशया दधती कञ्जगतिस्थिराशयं ॥५९
फलतां कलताभृतामिमे निपतन्तः कुरुहामुपाश्रमे ।
शुकसञ्चिचया स्म यात्रिणां हृदुदीरन्ति नियुक्तनेत्रिणां ॥६०
नलिनी स्थलिनी विकस्वरा विजगीपोर्जगतां त्रयं तरां ।
मदनस्य निवेशरूपिणी स्थितिरेपेव यशोनिरूपिणी ॥६१
मकरन्दरजःपिशङ्गिताः स्मरधूमेन्द्रकणा उदिङ्गिताः ।
मदनोक्ततया मनस्विनां स्म मनः सम्प्रतितापयान्ति ते ॥६२
पुलिने चलनेन केवलं वलितग्रीवमुपस्थितो बकः ।
मनसि व्रजतां मनस्विनामतनोच्छ्वेतसरोजसम्भ्रमं ॥६३
शिविराणि बभुश्च दूरतः कलहंसोपमितानि पूरतः ।
परितो रचितानि वाससा विशदेनात्मगुणेन भूयशा ॥६४

अभितोन्नतिमन्ति निर्मलान्युचितायाततया लसन्ति ये ।
शिविराणि हसन्ति सन्ति ते स्म नु सौधानि भुवि ध्रुवाण्यपि ।६५
निजकीर्तिकुलानि कुल्यराट् सुगुणश्रेणिसमुत्थितान्यसौ ।
शिविराणि जनाश्रयोचितान्यवलोक्यापमुदं सुदर्शनी ॥६६
शिविरप्रगुणस्य शुद्धतानुगतस्यानुगतेक्षणः क्षणं ।
गुणकर्षणतत्परानसौ न हि शुङ्कनापि सेह ईश्वरः ॥६७
समवाप निवेशसन्निधौ नृवरो द्विप्रहरोक्तिमद्विधौ ।
तपने लपनेऽपि निष्ठिते मुखतः सम्मुखतः शिखावृते ॥६८
पृतनापतिपार्श्वमागतः कथमप्यर्थिगणेऽथ रागतः ।
रथवेगवशेन विक्लवः समभूत्तत्र वरः समुत्सवः ॥६९
किमु भो भवता त्वरावता द्रुतमग्रे गमनेच्छुना हताः ।
न कुतोऽपि पलायते स्थलं जगुरेवं मनुजास्सकन्दलं ॥७०
महिलाभिरलाभि(वापि)दूष्यकं प्रसमीक्षासहिताभिरष्यकं ।
कथमप्युदिताल(र)कालिभिः परिनिस्विन्न कपोलपालिभिः ॥७१
अवधूय सटास्समुन्नयन् श्रवसी प्रोथमपि स्वनं नयन् ।
तुरगो विरराम नामवान् कविकाचर्वणचारुहेपया ॥७२
अवकृष्य च नक्रलावलिं नमयन्नात्मवपुः पुरस्तरां ।
उपवेशयति स्म तद्गतः सहसा साद्विवरः क्रमेलकं ॥७३
सुमनस्सुमनोहरं वलं स्वनिभं सत्तमनागसङ्कुलं ।
बहुपत्ररथं ययौ मुदा तटसान्द्रं भटसन्मणेस्तदा ॥७४
बहिरेव जना महिस्थले सघनच्छायमहीरुहान्तले ।
श्रमभारवशा हि पद्धतेः क्षणमेके विरमन्ति च स्म ते ॥७५

वसनाभरणैः समुद्धृतैरगमास्तत्र सुरद्रुमा हि तैः ।
अवमान्ति रमास्स्म सम्मिता जनताया वनतानितस्थिताः ॥७६

विबभुः श्रमवारिवासितान्यनुकूलानि मुखानि सुभ्रुवां ।
सजलानि सरोजवीरुधां कमलानीव कलानि कानिचित् ॥७७

वदनाच्छ्रमनीरनिर्झरो मदनोदारधनुर्निभभ्रुवां ।
सदनादधुना रुचः परं स च लावण्यझरो हि निर्गतः ॥७८

भुजमूलसमुच्चयद्वये सुदृशां सिप्रशिवाशयान्वये ।
जलजोत्थरजांसि रेजिरे मलयोत्पन्नविलेपनानिरे ॥७९

नदरोधसि वायुचञ्चलात्तुरगादेव तरङ्गतो बलात् ।
रुचिमानधुना जनस्तथाऽवततारम्बुजसंग्रहो यथा ॥८०

अवरोधवधूर्नियोगवान् गलसंलग्नभुजोऽवतारयन् ।
तुरगादभिशश्वजे परं न पुनश्चारु चुचुम्ब तन्मुखं ॥८१

द्रुतं पुराप्त्वा वसतिं मनोज्ञामापात्य कायाकरणाकुलेन
यान्तोऽन्यतोऽभ्युद्धतबाहुनाऽऽराद्धूताः प्लुतोक्त्यामुहुरात्मवर्ग्याः
निक्षिप्तकिञ्चित्प्रकरं निवासं विस्मृत्य गच्छन्नितरंतरंपु ।
यूनां स हासैकनिमित्तमास्तावशिष्टभारोद्वहनाकुलस्सन् ॥८३

प्रस्वेदनिस्स्विन्नतयानिचोलमुत्सार्य सारं परमाददत्याः ।
उरोजराजो रसिकः सुदत्यः कथञ्चिदालोक्य मुदं समाप ॥८४

अधस्स्थतायाः कमलेक्षणाया निरीक्षमाणो मृदुकेशपाशं ।
भुजङ्गभुङ्निर्जितवर्हभारं द्रुतं द्रुमाग्रात्समदुद्रुवत्सः ॥८५

उत्सार्य वासो वसिताध्वखेदापनोदनार्थं सहसा सखीभिः ।
समस्यते सस्मयमास्यभङ्ग्या स्मालोक्यमानाविजने जनेन ॥८६

पर्यापतत्केतृकुलामगण्यपण्यापणांते विपर्णि वितेनुः ।
वितत्य दूष्यान्यभितोऽभिरामां तत्कालमेवापणिकाः चणेन ॥८७
खुरैस्तु नैसर्गिकचापलेन हतावताथानुनयन्त इत्थं ।
अश्वा धरित्रीं मृदुपादचारैर्जिघ्रन्त एते स्म च पर्यटन्ति ॥८८
आजिघ्रति प्राण(न)तमस्तकेऽश्वे नासासमीरोत्थरजश्छलेन ।
तदीयसंसर्गसुखोत्सुकाया बभूव सद्यः स्फुरणं धरायाः ॥८९
अङ्के मुहुर्वेल्लति वाहिजाते तदास्यफेनप्रकराः पतन्तः ।
तदङ्गसङ्गेन विभिन्नहारतारा इवामीर्विबभुर्धरित्र्याः ॥९०
वेल्लत्तुरङ्गास्यगलन्निफेनप्रकारसारा धरिणी रराज ।
तत्सङ्गमोत्पन्नसुखानुभूत्या विकाशिहासच्छुरितेव तावत् ॥९१
रजस्वलामर्ववराधरित्रीमालिङ्ग्य दोषादनुषङ्गजातात् ।
म्लानिं गताः स्नातुमितस्स्म यान्ति प्रोथायते सम्प्रति निम्नगायां
पिपासुरश्वः प्रतिमावतारं निजीयमम्भस्यमलेऽवलोक्य ।
स सम्प्रति स्म स्मरति प्रियाया द्रुतं विसस्मार पिपासितायाः ॥
सुरापगायाः सलिलैः पवित्रैर्मातङ्गतामात्मगतामपास्तुं ।
किलाम्बुजामोदसुवासितैस्तैः स्नाति स्म भूयो निवहो द्विपानां ॥९४
स्तनश्रिया ते प्रथुलस्तनीमो नदेन यातीति तिरोभवंति ।
लब्धप्रतिद्वन्द्विपदो मदेन निषादिनोक्ता प्रमदा पथि स्था ॥९५
बलात्वतोत्तुङ्गनितम्बबिम्बा मदोद्धतैः सिन्धुवधूर्द्विपेन्द्रैः ।
गत्वाङ्कमम्भोजमुखं रसित्वाऽभिचुचुम्बेऽसौ कलुषीकृताऽऽरात् ॥९
निरस्य शेवालदलान्तरीयं मध्यं द्विपेन्द्रे स्पृशतीदमीयं ।
उल्लासमायातितरां नदीयं जलैरथाच्छादि तटं तदीयं ॥९७

जलेऽमले स्वं प्रतिबिम्बमेकोऽवलोक्य नागः प्रतिनागबुद्ध्या ।
क्रोधाद्धावत् प्रतिहन्तुमाराच्चले पुनः शान्तिमसौ समाप ॥९८
वपुःस्थसन्तापकलापशान्त्या आकुम्भमम्भस्यभिमज्जतीभे ।
तद्धूमधामालिकुलं बलेन नभस्यभूतार्थतयोज्जजृम्भे ॥९९
यदेव भूयोऽपि पयोनिपीतमन्तस्थितोष्मातिशयेन स्नुतं ।
मतङ्गजानां वमथुच्छलेन तदेतदेवोद्विलितं बलेन ॥१००
आरोपितोऽन्येन विषाणमूलं सलीलमादाय मृणालनालः ।
भूयोऽम्भसोऽशौरभिषिंचितस्त्वात्परिस्फुरन्नङ्कुरवद्विरेजे ॥१०१
यथावदद्यावधि रक्षणेच्छा-परः करेणाशु विषच्छलेन ।
ददाविहादाय सुकीर्तिसूत्रमाधोरणाय द्विरदस्तदन्यः ॥१०२
परः करेणात्मनि रेणुभारं भूयः क्षिपन् संकलितादरेण ।
निरुक्तवान् सम्यगिहेभराजकेरेणुरित्याह्वयमात्मनीनं ॥१०३
नादातुमन्यद्विपदानदिग्धं गजेन न त्यक्तुमपीच्छताम्भः ।
धूताङ्कुशेनातितरां निषादी खिन्नः स्रवन्त्यास्सरुषावतारे ॥१०४
यावन्निपीतं जलमापगायास्ततोऽधिकं तत्र समर्पितं च ।
मतङ्गजेन्द्रैर्निजदानवारि न वंशिनः प्रत्युपकारशून्याः ॥१०५
मदोद्धतैः संदलिता पथीभैः शान्तान्तरङ्गैरिव सा सुषीमैः ।
अनागसे सम्प्रति सामजातैरधारि धूलिः शिरसा तथा तैः ॥१०६
तद्भालसिन्दूलदलेन रोषारुणेव पूत्कृत्य पतिं प्रतीतः ।
यावन्नदी व्याकुलिता जगाम द्विपा विनिर्गत्य गतास्वधाम ॥१०७
स्म नेक्षते सन्निकटां गणेरुं न्यस्तं पुरस्मात्ति न चेक्षुकाण्डं ।
सस्मार सारस्य निमीलिताक्षः स्वेच्छाविहारस्य वने द्विपेन्द्रः ॥

निकेतनस्योभयतो द्विपेन्द्रवृन्दं वधूकुन्तलजालनीलं ।
दिनस्य पूर्वापरभागवद्धं बभौ यथा शार्वरमुज्वलस्य ॥१०६

स्तम्भं समुत्खात्य परास्तवारिः स्वातन्त्र्यमत्रातितरामवाप्य ।
सश्रृङ्खलः स्वस्य पदानुवृत्त्या दानं ददौ कुञ्जरराज एकः ॥११०

उन्नम्रवक्रोमयकश्च लोष्ठो ग्रीवां दधानः सरलां तरूणां ।
उदग्रशाखा नवपल्लवानि प्रत्यग्रमृष्टानि मुदा जघास ॥१११

चरन्निकेतं परितस्तृणानि त्रुट्यद्वितानाग्रगुणात्तदोषः ।
निवारितः कर्मकरैः सरोषैः मुक्तस्तुरङ्गः स्म निबद्धतेऽन्यैः ॥११२

उत्क्षिप्तकाण्डाम्बरमार्गसर्गिमन्दानिलैर्नास्तमिताध्वखेदः ।
दूर्वाप्रतानास्तरणेषु लेभे दूष्येषु निद्रासुखमङ्गनौघः ॥११३

मयो निपीतार्द्ध पयोमुखं स्वमुन्नीय नक्रं व्यवधूय भूयः ।
उदक् जलांशैरभिभूतकुम्भां शुचं निनायोदकहारिणीं सः ॥११४

इति कटकसनाथस्तस्थिवान् मर्त्यनाथः,
शुचिनि गगनपाथस्रोतसि स्वेच्छयाथ ।
तपति शिरसि पाथस्तावदागत्य माथः,
कविकृतगुणगाथः श्रीजिनो यस्य नाथः ॥११५

जयतादयतावशतो रसतोऽसौ नरेन्द्रसंयोगा,
य रह शारदासारधारणः पद्माभिरुचिः शुचिगः ।
गगननदीमवाप सुललितां राजहंस आख्यात-
स्तत्राम्भोजनिकायकायगतमार्गाधिरगनयातः ॥११६

(जयोगंगागत इति नामकश्चक्रबंधः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामरोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
पूर्तिं तद्गदितस्त्रयोदशतयाख्यातः समागच्छति,
यात्राधीनमनः प्रसाधनविधिः विज्ञानरागस्थितिः ॥११७

इति श्री वाणीभूषण-ब्रह्मचारि भूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये त्रयोदशः सर्गः



अथ चतुर्दशः सर्गः

अथ तीराराामे सरितायां रुचिरासीन्महती‡ जनतायाः ।
आत्मभूतनयताधिगमाय सुलालितारान्वितोत्सवाय ॥१
असुगतवैभववानिव तेन तत्र तथा गतसमीरणेन ।
समजनि सुरतविचारविशिष्टः दूरतोऽपि चायातः शिष्टः ॥२
दृष्ट्वाच्छायां तरुणोपात्तां हृष्टा सम्भोक्तुमिहागात्तां ।
अच्छाया स्वयमितः पवित्रीभूतशरीरासकौ भवित्री ॥३
अगदलसच्छायां परिपश्य सङ्गदतामनुययौ वनस्य ।
दूरे जरस्य निजीयधीतः पृथुलवलिभृतोऽनुरागिणीतः ॥४
बहुकल्पपादपैरपि रम्यं सुमनःसमूहतो भुवि गम्यं ।
नन्दनं वनमिवातिमनोज्ञं पुण्यपूरपैर्बभूव भोग्यं ॥५
उच्चैः पल्लवमथोजटीति तपस्यतोऽन्यस्मै गुणरीति ।
अनोकुहस्य सुकृतसंगीतिरभूदतो यौवतप्रतीतिः ॥६
वागाश्रितसम्पदोऽभ्युपास्तिः कौतुकसंग्रहोऽमुकस्यास्ति ।
सद्य एव भुवि विवहनक्रिया स्पृहणीयास्तफलोदयश्रिया ॥७
विल्वफलानि विलोक्य सहर्षं निजोरोजमण्डलं ददर्श ।
सहसा तानि तथैव सुयोपा पुनरपि दृष्टुमभूदपदोपा ॥८
नेशायामूनि वल्लभानि तव कुचकुम्भवद्दियानिदानीं ।
भेदोऽस्तीति समाह वयस्या सदभिप्रायवेदिनी तस्याः ॥९

‡ नारदस्य वीणा ।

पश्य पिकामभुकां गुणमालिन्प्रिये मञ्जुलास्याश्चरवाली ।
हन्त हन्त चंपास्त्यतिकाली किन्न तवापि तन्वि कचपाली ॥१०
कण्टकितं पदमङ्के नेतुः समधिकृत्य चापदमपनेतुं ।
कण्टकिताखिलतनुरजनीति तश्च तथा कुर्वती सुगीतिः ॥११
कुसुमावचये सरजस्कदृशः फूत्कर्तुमिवेशे सति सुदृशः ।
चुम्बति मुदश्रुनिस्सरणेन सममभावीव समुद्धरणेन ॥१२
आस्यस्पर्द्धनफलं प्रदातुं विकशितकुसुममुघताऽऽदातुं ।
अलिना साम्प्रतमधरनुदारं सीच्चकार महिलैवमुदारं ॥१३
प्रतिनगभवस्थितौ सुजम्पती शुशुभाते तत्रेति सम्प्रति ।
भोगभुवः समुदाहरणेन तत्फलस्य समुदाहरणेन ॥१४
दारवज्ञहाराङ्गिनां मनः परिस्फुरन्नेत्राङ्कितान्जनः ।
ललितामलकावलिं दधानः सालसङ्गमं च वनवितानः ॥१५
परिफुल्लवदनमापुः सम्यक् मृदुलताभिरामतया गम्यं ।
मदनमनोहरं च गुणवत्यः नववयोन्वयं वनं युवत्यः ॥१६
पादपमाश्लिष्टवतीं वल्लीं समुदीक्ष्य मुदा युवतिमतल्ली ।
नेतारमिहालिलिङ्ग गाढं सरसतया घनमालाषाढं ॥१७
पश्य किलालिं समीपमेव जडभावात्तरणाय मुदे वः ।
उत्फुल्लोत्पललोचनीयत इत्येवं धृतयेऽवददुद्धृतः ॥१८
हृदयं कमलनालकुलवाहो त्रिदीर्णमस्ति दाडिमस्याहो ।
जम्भजृम्भितं कोमलभावं तवाश्चर्यतोऽभिवीक्ष्य तावत् ॥१९
करं करजकिरणैः कुसुममतिं क्वचिदप्यपकुसुमे सन्दधतीं ।
दृष्टा युवतिं सखीजनेन स्मितपुष्पाण्यर्पितान्यनेन ॥२०

यमिति विटपमालिलिङ्ग रामा कुसमेषु युवतितोऽप्यभिरामा ।
तेनामोदपूर्णताऽदर्शि भूत्वा सहजेन कुसुमवर्षी ॥२१
तुल्यास्तरुणीभिश्च मरूणां तरुणानामिव यत्र तरूणां ।
विपल्लवा भावतयाख्याता लताः सतां सङ्गवतां वा ताः ॥२२
करस्फुरच्चम्पकवृन्तस्य सम्वादमिषादेकान्तस्य ।
चकार कान्तमतिथिमित्यधुना प्रगल्भतायामुत्तीर्णमनाः ॥२३
विजित्य विश्वं विशतस्तस्य हृदयेऽभ्युदयेशोऽनङ्गस्य ।
वन्दनमालामिव सुमस्रजं चिप्तवानिदानीं मुदं व्रजन् ॥२४
चाम्पेयरुचौ तनौ तवेति चम्पकदामनरुचिमभ्येति ।
मुमोच मालामिति वकुलस्यालिङ्गन्कुचौ गले खलु तस्याः ॥२५
लताप्रताने गता महति या चकर्ष कान्तं परिरम्भधिया ।
मुमुदे साम्प्रतमितो वयस्या वलयस्वनेन वध्वास्तस्याः ॥२६
मुहुरपि नतोन्नतश्रेणिभरा नरायितस्येवाभ्यासपरा ।
परिफुल्लोपलाश्वनेनासीथ्यासौ लोके सुरूपराशिः ॥२७
उदग्रकुसुमोच्चिचीषयान्या लताग्रदुःस्थांघ्रितयामान्या ।
असोढुमीशेवोरोजभरं निपपातोपरि धवस्य त्वरं ॥२८
पीडयतः पञ्चभिरेव शरैर्जगत्स्वगत्याऽनङ्गस्य वरैः ।
गणनातिगैः सहायस्यूतिरित्यपहृताखिलास्य विभूतिः ॥२९
नर्मवश्यया वयस्ययालेः श्रीतिलकं कलितं खलु भाले ।
रुचात्मनस्तु जगतिलकाया अन्वर्थभावमेवमथायात् ॥३०
दत्तं दयितेनापि सुभागा श्रवणेऽशोकपुष्पमनुरागात् ।
प्रतीपपत्न्यास्तदेव किन्न समभूत्स्वदर्शामशोकचिन्हं ॥३१

उपमधुवनमद्रिराजकं च स्फुटमनुरागितयेव समञ्चन् ।
सुखमुपलभमान एष लोकः सम्बभूव शिवकेलिसदोकः ॥३२
लशुनाङ्गेषु च शुशुभे तेषां तावत्पुष्पप्रकरादेशा ।
जगज्जिगीषोः स्मरस्य बाणोदिता च किन्नु लचबलना नो ॥३३
बद्धमुष्टिवलितोचितबाहमुन्नमय्य कुचयुगलमुताह ।
क्लमभिषेण निजमीप्सितमेषा प्राणपतिं प्रति तदाशुवेशा ॥३४
उच्चित्याधस्थं कुसुमं तु परमबला यावत्सङ्गन्तुं ।
पदमदादशोकयष्टौ नामामूलं सा फुल्लैरभिरामा ॥३५
पुरा तु राजीव दृशादत्तामविस्मरन्वरमालासत्तां ।
प्रत्युपक्रियामिवाभिमानी तन्निगले चिप्तवानिदानीं ॥३६
याञ्चोदञ्चत्सुभग्रहाय सहजालिङ्गनसुखाभ्युपायः ।
उदासदोर्भ्यां द्रुतं सचेता दशनांशुविजितशशिरुचिमेतां ॥३७
रमणं धृत्वा कापि करेण स्कन्धे रामा समादरेण ।
उदग्रपुष्पोच्चयोपलम्भे पुलकितेव सा पुनर्जजृम्भे ॥३८
पवनप्रचारनिपतत्केशा पाकरणमिषाद्विशुद्धवेशां ।
उदग्रशुम्बस्थपाणिलेशां चुचुम्ब वक्त्रे पतिर्विशेषात् ॥३९
उदग्रशाखानिलग्नबाहोः सवेगवक्षः स्फुरणेनाहो ।
स्खलितं कुचाञ्चलं मृदुदत्याः कस्य न मोदकरोऽभूत्सत्याः ॥४०
कुसुमेषोः शरजर्जरितापि या जनता स्वयमितस्तयापि ।
स्फुटं कुसुमसन्धारणरीतिर्विषमगदं विषस्य भवतीति ॥४१
रसप्रसन्नास्तरुणाक्रान्तावलिभिर्मनोज्ञमध्याकान्ताः ।
समापुरम्भोजदृशः सरितां वयप्रतीतास्तुलनाकालिताः ॥४२

रसप्रसन्नास्तरुणाक्रान्तावलिभिर्मनोज्ञमध्याकान्ता ।
समापुरम्भोजदृशोऽप्यमृतवयः प्रतीताः स्वयमिव सरितः ॥४३
पाद्यमुत्तमं सफेनहासाऽतिथ्यहेतवेऽदात्सरिता सा ।
कोकोक्तिभिः कृतक्षेमकथा सतरङ्गहस्तप्रणतिपथा ॥४४
विभिन्नशैवलदलच्छलेन मुदङ्कुरानपि दधती तेन ।
लास्यं प्रचलन्तीभिरूर्मिभिः क्लृप्तवतीवामानि जन्मिभिः ॥४५
पर्यटतां विकाशिकमलेषु शिलीमुखानां गीतिं तेषु ।
शुश्रूषवोऽप्यपाङ्गैः स्त्रीणां जिता हरिण्यो द्रुताश्चरीणाः ॥४६
पङ्के जातं जितं मुखेन तव सुकोशि (?) साम्प्रतमसुखेन ।
मूर्ध्नि मिलिन्दावलिच्छलेन कृपाणपुत्रीं क्षिपदिव तेन ॥४७
तव नयनयोस्तु सौन्दर्येण पश्य शस्यवाजितमिव तेन ।
ह्रियेह मीनमण्डलं विमले विलीयते गंगायास्तु जले ॥४८
यन्मध्यं च सरसतामञ्चल्ललितावर्तं च गम्भीरं च ।
नाभिभवोचितसम्पत्तितया कर्षति चित्तं मम चातिशयात् ॥४६
सुराजहंसप्रतिपत्तिमती कमलानुसारिणीयं तु सती ।
अविकलकुशलात्वदिव विभाति हे सुलोचने नदस्य जातिः ॥५०
सरसेणेत्थं संकतितायाः श्रीवचनेन भर्तुरबलायाः ।
अन्तरार्द्रभावेनाङ्कुरितमासीद् गात्रं तटवत्सरितः ॥५१
तटस्थितानां वारियोषितां मुखारविन्दच्छविदलोदितां ।
श्रियमुपेत्य साम्प्रतं ललाम सर्वतो मुखं बभूव नाम ॥५२
जले विशन्ती श्री रमणीया प्रतिमामेवामले निजीयां ।
करावलम्बार्थमिवायातां मेने जलदेवतां तदा तां ॥५३

न्यस्य मृदुपदं पुराभिगाधं कामिचित्तवद्वारि अगाधं ।
रागिभिरंगैरनुरञ्जयति स्म चान्तराविष्टया युवतिः ॥५४
सज्जनतया वियुक्तो यावत्संयुज्यापि तरलभूत्तावत् ।
कौतुकितास्तां विपल्लवित्वमप्याविरभूद्यतोऽपविन्त्वं ॥५५
दीर्घदर्शितां लब्धुमिवात उत्पले उपश्रुति स्म भातः ।
साम्प्रतं तुलयितुं नयनाभ्यां सन्निहिते खलु गभीरनाभ्याः ॥५६
प्रियपरिमालितागुरुपरिणामौ कलभनिकुम्भनिभावभिरामौ ।
कुसुमभरपतत्परागसातौ सुदृशः कुचौ गुरुतरौ जातौ ॥५७
किशलयशकलोदितेन पद्मरागरुचिकरद्वयञ्च सद्म ।
रसेण मञ्जुलदृशः पवित्रविद्रुमसम्पदोऽपि परमत्र ॥५८
उपरिजतरुजेषु सम्प्रवृत्त्या विकुसुमशुम्बगवृन्ताश्रित्या ।
प्रियनखखचिताञ्चितानि मानाद्भुवि जघनानि घनानि दधाना ५६
दयितजनैरुत्कलितं दामभरं दधानाः स्त्रियां ललाम ।
तदसहमानतयेव सदंसा अतिनतिमापुः स्फुरत्प्रशंसाः ॥६०
वनश्रियाः समुचितपुष्पायाः सम्पर्कितया सभ्यनिकायाः ।
युक्तमेव संस्नातुमिदानीमायुर्जलस्रुतेर्विभवानि ॥६१
आत्तमात्तमप्यं जलौ जलमधीरनेत्रा सिञ्चितुं वरं(रं) ।
निजनेत्रप्रतिविम्बसंश्रयाज्जहावहो सविसारशङ्कया ॥६१
मनोभुवा पाण्डुनि कपोलके नतभ्रुवः प्रतिबिम्बितालके ।
स्फुरदगुरुद्रोदारशङ्कया मृष्युमिहारब्धं वयस्यया ॥६२
सुतनोर्मकरन्दे निशि येन स्माश्रितालिगुञ्जनमिति तेन ।
श्रितसंसर्गसुखं वियोगसात्यूत्कुरुते श्रवणोत्पलं रसात् ॥६३

भूषणभङ्गभयादिवाधुनाम्भोर्निममे स्त्रियां तु साधुना ।
फेन सञ्चयेनोरसि हारं शैवलैः कपोले दलसारं ॥६४
तद्रम्यं मम वक्त्रविधानमाहृता सरोजात्सुषुभा न ।
इति किल वारिणि निममज्ज मुहुः शपनाये शान्तिकं जितकुहूः॥६५
निमज्जिताया जले जवेन नेत्रानुमितं मुखं सुखेन ।
तदंगरागगन्धलुब्धेन सम्पतितारोलम्बकुलेन ॥६६
सुगुरुश्रेणिजुषः शनैः शनैर्जले प्लवन्त्यास्तर्कितं जनैः ।
उरोजयुगलं तत्सहकारि सहजालाबुफलप्रतिहारि ॥६७
पृथुलहरिततया पुरारिरूपं कमिति जना आत्मनः स्वरूपं ।
सन्दिग्धासन्दिग्धतया तद्देवमयञ्चानुययुः ख्यातं ॥६८
पुमांससमासीनमिहानुमितिमंसमात्रके ततघ्नमिति ।
आत्मनोऽपि कृत्वा निमज्जती साश्लेपि जवा प्रेमिणा सती ॥६९
गभीरनाभीकुहरेषु पयः प्लावितमूर्मिभिराश्रित्यरयं ।
रतकूजितस्मृतिं कुहूरूनैरापुरङ्गनाः साम्प्रतं तु तैः ॥७०
नितम्बमाश्रित्योन्नमन्वितः पयःप्रवाहोऽवाप योषितः ।
मन्दरस्य कन्दरप्रवेशलीलामुदरगह्वरेऽप्येषः ॥७१
निरस्य शैवलदुकूलमारान्मध्यं स्पृशति मानुषे वारां ।
ततेरानतं त्रपयेवातः कमलमाननं बभूव वा तत् ॥७२
प्रियास्यमब्जं वा सस्फीतिभ्रमो विभ्रमैर्निरकाशीति ।
वारिरुहादतिदूरवर्तिभी रसिकस्य मनोऽभूत्तमामभि ॥७३
शीतार्तिमतेवापि वाससा रसैर्निषेकाद्विस्फुरद्दशां ।
कामोष्मजुषोस्तनयोश्शीतसमीरभाजा गतं मुवीतः ॥७४

मदनजातवेदा + ललनानां शमितः प्रियकरवारिविधानात् ।
धूममञ्जिमासौ कुतोऽन्यथा समुज्जजृम्भे दृगञ्जनपथा ॥७५
कठिनस्तनस्थले वनितायाः सिक्तं रसिना दग्धुमथायात् ।
तदौष्ण्यमादायोत्पतज्जलं पुरस्थरिपुयोषितो हृद्बलं ॥७६
कमिति च कान्तकरादायातं जातं पत्न्या यदेव सातं ।
शरतामत्र वैरिरामाया हृदयभेदनायैतदुतायात् ॥७७
न सुष्ठु मृष्टाऽगुरुपत्रततिस्त्वकया लोकोत्तरकान्तिमति ।
वञ्चितेति निजगण्डमण्डलमर्पयति स्म नियोगिनेऽमलं ॥७८
जलेन लौल्याद्वसनेऽपहृते विलासवत्या जघने प्रसृते ।
नखमण्डलावलिच्छलतोऽभात्स्मरप्रशस्तिः प्रणीतशोभा ॥७९
वाग्मिता हि येषां रुचिहेतुः सम्विदिता मनस्विनिवहे तु ।
यदत्र तूष्णीं नूपुरैः स्थितं जडप्रसङ्गे मौनं हि हितम् ॥८०
मीनमत्स्यकादेस्तु जीवनं ह्युत्पलजातेरस्ति यद्वनं ।
गोरुच्चैस्तनगिरेरागतं पय इत्येवं जगतोऽत्र मतं ॥८१
उद्भिज्जातेरमृतमितीष्टं विषमनग्नयं स्वतोऽस्त्यनिष्टं ।
शिवमिति हिन्दुजनानामेतद्भुवनमन्वभूज्जनस्य चेतः ॥८२
जलावगाहप्रतिपत्तिकारणैकसम्भवदम्भसि सम्विभूषणैः ।
हिरण्मयैश्चारुदृशां परिच्युतैः किलोर्विवद्धैः शकलैर्व्यशोभितैः ॥८३
मृगीदृशां या वक्रागकल्पकान्वयेन सिन्दूरकलाक्तमस्तका ।
पयोधियोषिन्निजनायकं तरां जगाम तावत्सुतराङ्कितान्तरा ॥८४

+ अग्निः ।

अपास्तमाल्यं च्युतया वकाधरं निरस्तवस्त्रं दयितेश्वरैः समं ।
निषेव्यमाणं तरलं जलं बभौ मुदे वधूनां रतवद्यदुत्तमं ॥८५
स्वार्थभृज्जगदिति प्रकाशिताच्चां जहद्भिरथ निम्नगोदिता ।
आत्ततृड्भिःरियमङ्गिभिर्हिताद्यानदीनमहिलासमर्थिता ॥८६
नितम्बिनीनां जघनाघातात्तटाभिनीतं वारि तदा तां ।
कलुषतामगादपि च जडानां पराभवः कष्टकरो नाना ॥८७
निरम्बरश्रेणिजुषोऽम्बुलोलनात्त्रपापरायाः कुलजेषु साऽधुना ।
चकार सख्यं लहरी तदङ्गसात्सरोजवल्लीदलदानतो रसात् ॥८८
तत्याज जलं पश्चादर्त्तस्वरमङ्गनाजनः कलुषं ।
स्मृत्वा धृष्टप्रियतां सहजामिति या स्वकीयां सः ॥८६
चेलाञ्चलैः चराद्भिर्जलमिव लावण्यमङ्गनाकुलकैः ।
उत्तीर्णमथातितरलतरङ्गरङ्गत्तमैः सरसः ॥६०
तरुणीं समुत्तरन्तीं तोयत उत्फुल्लतामरसहस्तां ।
अनुमेनिरे नरा हरिरामामिव सिन्धुनिर्मथनात् ॥६१
तरलैरलकैः समाकुला ललनालिङ्गनमङ्गराङ्गिणा ।
अनुकूलमवाप्य सत्वरं रससारं समवाप चापरा ॥६२
अभिगम्य नितम्बबिम्बमुच्चकुचायाः कचसंचयः पुनः ।
स्म समेति रुतिं परिच्चरत्त्वरदम्भाद्धि बन्धसम्भयात् ॥६३
मृदुपक्ष्मदृशः सुमध्यमायाः स्वभुजाभ्यां कचवृन्दबन्धने ।
भुजमूलमथोन्नतं तिरस्तः शनकैः सम्प्रति शश्वजेऽभिसारी ॥६४
सुदृशां दृगुपान्तरक्तता प्रथमं या हि तिरोहिताञ्जनैः ।
अधुना द्विगुणीकृता जलैरनु······र्पतयेव निर्मलैः ॥६५

शुचिसिप्रभरानजानती समुदीक्ष्यात्महृदीशमान्तिके ।
मुहुरम्बुजलोचना तनुं स्नपनार्द्रां निरवाप यच्चिरं ॥९६

अभिनववसनानां स्वीकृतौ तावदाभिः,
सुचिरपरिचितानि स्पष्टपद्माननाभिः ।
दधुरविरलवारीत्येवमार्द्राणि यानि,
बहुविरहविपत्तेर्मुश्चितानीव तानि ॥९७

समुदितजलकोलिं वीक्ष्य तं पीठकेलिं,
सकलजनसमूहं तत्र तावन्निरूहम् ।
दिनपतिरपि रागी चाशु गच्छत्प्रयागी,
झटिति हि जलराशिं गन्तुमाभून्प्रवासी ॥९८

सकलमपि कलत्रमनुमानवं,
लिखितमनूक्तं ललितमतिबलं ।
दधत्स्वपदवलमुचितार्थभवं,
बहु सञ्चरितदमवमलं भुवः ॥९९

(सरिदवलम्बश्चक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामरोपाह्वयं,
वाणीभूषणमश्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
वृत्तोत्तुङ्गतरङ्गवारिसरिताख्याते प्रसन्नः स्वयं,
सर्गोऽत्येति चतुर्दशस्तदुदितेऽस्मिन् सुप्रबन्धेऽययं ॥१००

इति श्री वाणीभूषण-ब्रह्मचारि भूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये चतुर्दशः सर्गः

अथ पंचदशः सर्गः

प्राणेशसत्सङ्गमलालसानां कटाक्षवाणैरधुनाङ्गनानाम् ।
हतः किलारादरविन्दवेशमुपैति पूषारुणिमानमेषः ॥१

यथोदये ह्यस्तमयेऽपि रक्तः श्रीमान् विवस्वान् †विभवैकभक्तः ।
विपत्सु सम्पत्स्विव तुल्यतैवमहो तटस्था महतां सदैव ॥२

लयन्तु मत्रैव समं समेति दिनं दिनेशे च महीयसेति ।
कृतज्ञतां ते खलु निर्वहन्तितमामसुभ्योप्यमलास्तु सन्ति ॥३

नवेऽधुनासङ्गमनेऽब्जनेतुर्दिशः प्रतीच्या मुखमण्डले तु ।
हार्दोचितह्रीविभवेन भाति प्रवाललक्ष्मीमुपिकापि कान्तिः ॥४

सरोजिनीं कुड्मलितां दिशायाः समीक्ष्य साश्चर्यमि तिस्मितायाः ।
मन्ये प्रतीच्या अधुनावभातितरामुदात्ताधरविम्बकान्ति ॥५

उपागतेऽहष्कृति तस्य वीनां कलैः कृतातिथ्यकथाप्यशीना ।
श्रीशोणिमच्छद्ममयं प्रतीची दधाति सच्छाटकमात्तवीचिः ॥६

निभाल्य भानुं दिशि पश्चिमायां गत्वानुरक्तं द्युपतेर्दिशायाः ।
मित्रामुकं पश्यत मालदस्य मास्यं जनीमत्सरभावमाप्यं ॥७

बन्धौ परिप्राप्तवतीह भङ्गं सद्योऽधिमध्यं विनिवेश्य भृङ्गं ।
निमीलिताम्भोजदृगब्जिनीतिजाता समारब्धविलासिनीतिः ॥८

† वीनां भवः पक्षिसद्भावः धनसम्पत्तिश्च ।

प्रसिद्धमात्मन्यवराः स्मरन्तु विलोक्य कालं विलया ह्वयन्तु ।
‡ ग्राहोदयत्वात्तिमिलं वदन्तु विजृम्भमाणं गिलितु' जगत्तु ॥६
रवेरथो विभ्रमितोऽस्तगामि उदेष्यदेतच्छशिनोऽपि नामि ।
समस्ति पान्थेषु रुपा निषिक्तं रतीश्वरस्याक्षियुगं हि रक्तं ॥१०
कुमुद्भवं मोदकरं स्वभावान्नवासु रासाविव वासुरा वा ।
नरः सरोऽथो सबलाऽबलापि समं नभं स्थानमिदं यदापि ॥११
मित्रं हतं पश्यत आस्यमाराच्छितीकृतं श्रीनभसोऽश्रुधारा ।
उदेष्यदच्चच्छलतो निरेति ततः शुचेयं मम भावनेति ॥१२
❀ दिनावसाने तरणे + र्विनाशः न दृश्यते क्वाप्यु × डुपस्तथा सः
+ नदीपरूपे सिमिरे ब्रुडन्ति चक्षूंषि नृणां विकलानि सन्ति ॥१३
हंसं हठात्सायमयेन भुक्तं समुज्झितोपाङ्गतयोपरक्तं ।
निभाल्य नीडान्यधुनाश्रयन्ति द्विजातयस्तं च पुनः शपन्ति ॥१४
उच्चैस्तनाकाशगिरीशसानोः श्रीगैरिकस्योच्चय एव भानोः ।
मिषाच्च्युतोऽतः समुदेति पांशुः सायाख्ययायं सुतरां ततांशुः ॥१५
अकायशंकासहितः सकायः पन्थास्सतां वीक्ष्य भवद्विहायः ।
कुमुद्वतीनामसुमुद्वतीति कृत्वात्र जाता क्षणदाप्रणीतिः ॥१६
पीत्वाऽऽदिवं श्रीमधुनस्तु पात्रं पूषा पुनर्लोहितमेति गात्रं
क्षीवत्वमापन्न इवायमद्य समीहतेऽहो पतितु' विपद्य

---

‡ ग्रहाणामसौ ग्राहश्चासावुदयश्च ग्राहाणां नक्रादीनामुदयो वा ।
❀ सायं समये दुर्भाग्ये च ।
+ सूर्यस्य नौकायाश्च ।
× चन्द्रमा लघुनौका च । + अनल्पे समुद्रात्मके च ।

वसुव्यपेतोप्यनुरागि एष नभोनिकाप्यादधुना दिनेशः
प्राचीनतातोप्यनुरागवन्तं प्रतीह नादादधुना दृगन्तं
दिशा प्रतीच्या खलु वारवध्वा निष्काशतेहानुपतापकृद्वा
निष्काशयामास नभोनिकायाच्छ्रीपाशपाशैर्हरिदेष काया
निमीलतीहातिशयेन दिक्षु गलद्भिरेफाश्रुपयोजचक्षुः
राजीविणीयं भवतो वियोगाच्छोकाकुलेवाभिरवीतियोगात्
उपद्रुतोऽशुस्तिमिरैः सरद्भिर्भयेप्यसम्मूढमतिर्महद्भिः
विखण्ड्य देहं प्रतिगेहमेष विराजते सम्प्रति दीपवेशः
दिगम्बरं यत्त्वपहृत्य भानुर्द्रुतः पुनर्व्यस्तकरोऽस्तसानुं (नौ)
ग्रस्तं जगत्स्वस्ततया त एव करैरपास्येत तदि············
पीतं यदेतन्निशयाम्बरन्तु नीडं खगाः स्पष्टमिति श्रयन्तु
प्रयाति कामी नवलोहितं तद्दारा श्रयन्ते धवलम्भवन्तः
स्थितिः सतां सम्वरितामुकेन समङ्किता श्रीर्जडजेषु येन
रविः कुतो नावपतेदिदानीमुत्तापकोऽसौ जगतोऽभिमानी
पतत्यसौ वारिनिधौ पतङ्गः पद्मोदरं सम्प्रति मत्तभृङ्गः
आक्रीडकन्दोर्निलये विहङ्गः शनैश्चरम्भोरुजनेष्वनङ्गः
अभात्तमांपीततमाहिदीपैर्विकस्वरैर्भिमकिता समीपैः
सौभाग्यदात्री विधृतैर्हरिद्राङ्कुराङ्गिताभिरधीतनिद्रा
गमुत्कगोलं तु हिमादभीपुः पुनर्जगद्भूपणता निनीपुः
तापान्वितं सीमनि सिन्धुवारः प्रक्षिप्तवांस्तं विधिर्हेमकारः
निशाविसम्वादविवर्जितत्वात्समुत्तमस्थानसमर्थितत्वात्
सद्भिः समाराध्यतया हि तत्वात्तुल्यत्वमास्ते जिनवाचि गत्वा

जनप्रवृत्तिः सहदेवतासीदहोनिशायां नकुलक्रमाशीः
धनुर्धरो भीमतया सकामः सद्धर्मराजाभ्युदयोऽभिरामः
रवेः सवेगं पतनात्समुद्रे समुत्पतन्त्यध्वनि किन्नु शब्दैः
तदङ्गजानां पयसां पृषन्ति नक्षत्रनाम्नां सुतरां लसन्ति
दुर्वारमुत्सर्पति तावदस्मिन्दिवामणिं किन्नु सहस्ररश्मिं
तमः समुद्रे द्रुतमभ्युपात्तुं स्मरन्त्यमीः शुद्धहृदोऽधुना तु
प्रदीपयुक्ता मृदुदारभावा समासतस्तद्धितकृत्प्रभावा
कृतं तथा साधुविधानमेति सन्ध्या स्वयं व्याकृतिसत्क्रियेति
अभात्तमां पीततमा हि दीपैर्विकस्वर............
गतस्तटाकान्तरमाशु हंसस्त्यक्त्वामुकं पुष्करनामकं सः
तमोमिषाच्छैवलजालवंशः स्फुरत्यतोऽस्मिन्नयमस्तदेशः
पातुं किलातुच्छतमारुणास्त्रं विस्तारिताराततिदन्तपङ्क्तिः
निशाचरोऽतीव भयङ्करोऽसाविहान्धकारापरवाक् प्रसक्तिः
निशौतुकीतन्मयकौतुकित्वात्कपोतमादाय विधुं त्वकित्वात्
गतानभःसौधशिरोऽथ ऋक्षास्तद्दन्तपातात्पतिता हि पक्षः
सन्ध्यामिषेणापरशैलसानुं प्रज्ज्वाल्य यन्नश्यति चित्रभानुः
तमांसि धूमाः प्रसरन्ति नो चेद्यमश्रुसंघोभमिषात्कुतोंचेत्
नक्षत्रकाचांशतताग्र एष शालो विशालोऽस्तु तमोनिवेशः
आज्ञामतिक्रम्य रतीश्वरस्य निर्गच्छतां यः प्रतिषेधद्ध (व) श्यः
नष्टेऽपि पत्यौ तरणौ द्युनामारामाविधुं स्त्रागभिसर्तुकामा
श्यामां समन्ताद्विदधाति शाटीं तमोमयीं तत्परिवादवाटीं
नष्टेऽपि पत्यौ तरणौ द्युरामासुधांशुमारादभिसर्तुकामा

सम्मुत्तरीतुं परिवादघाटीं तमोमयीं वा विदधाति शाटीं
प्रदोषसिंहाक्रमणान्वयानां नेदं तमः क्षुब्धदिशागजानां
विनिर्गलद्गण्डजलप्रसारस्ताराततिचारात्कवलोपहारः
स्वर्गीयगंगागतकोकिकानामितोऽकिकानां विरहात्तकानां
तारा न वारान्तु पृषन्ति संति चक्षुर्भुवां दिक्षु पुनः पतन्ति
कारी निशाचावा निशादरस्य नारीह सा रीतिकरी स्मरस्य
लात्वा रतिं सञ्चरतीव लोके पतत्यतः सम्प्रति नावलोऽके
निशावधू स्वागतमात्मभर्तुरुद्दिश्य वा कैरवहर्षकर्तुः
बृहत्तमस्तोमककेशवेशे मुक्ताश्च तारा विदधात्यशेषे
कलंकिनः शासनमत्र रात्रावहो न सा केवलकारिमात्रा
विचारहीनां भुवमीक्षमाणो लभे प्रदेशानमनागिवाणोः
असौ निशेन्दोः परिरम्भवारादाराच्च ताराश्रमवारिसारा
ह्रियांशुदीपव्ययिनीत्युदारातमोमिषात्तत्कृतधूमधारा
तमःसमारम्भपरम्पराभित् सूचीरुचः पीनपयोधराभिः
दीपान्प्रबुद्धान्प्रतिधामकामशरानिव स्वर्णधरान्वदामः
नीलामलाच्छादनसुन्दरीणां भूपांशुभिर्भिन्नमथेत्वरीणां
तत्प्रेमचाम्पेयकषाभिरामितमस्तमालप्रतिमं वदामि
अस्तोदयाहार्यगतार्कचन्द्राभिधानकर्णाभरणाप्यतन्द्रा
समुत्क्षिपन्ती कुसुमानि भानि आयाति सन्ध्या किमसाविदानीं
चण्डांशुचाण्डालसमाश्रयत्वाद्दुष्टं विहायः सदनन्तु मत्वा
स्फुरत्तमामन्दतमश्चयेन निशावधू लिम्पति गोमयेन
चण्डांशुसंस्पृष्टमिदं विहायः लिप्त्वा तमोगोमयतो निशा यत्

ददाति कीर्णोडुकतण्डले तु विधुप्रदीपं तनुशर्महेतु
सन्ध्यामिषेणोत्कपणप्रतीतमस्तावनिधे निकषाश्मनीतः
विक्रीय भानुं मरुपिण्डमानी तानीव स्वेनोडुकरुप्यकानि
यर्द्दकविम्बं करकं त्ववापि तथास्य सन्ध्या त्वगिवोज्झितापि
कालेन तद्बीजभुजातु भानि भवन्तु अस्थीन्यथ थूत्कृतानि
उत्सङ्गजं सूचयतीन्दुदेवं पूर्वाद्रिमूलान्तरितं दिगेवं
शोणानना कैरवरागिभृङ्गारवैरियं सन्मणितप्रसङ्गा
मन्ये मधुच्छत्रमघस्रजानिर्भवन्ति यद्बिन्दुनिमानिमानि
तमोभिपादुत्थितमक्षिकाभिर्व्याप्तं जगत्किन्न पुरैव ताभिः
चण्डीशचूडामणिरेप भर्ता कुमुद्वतीनां स्मरसन्निधर्ता
मित्रं समुद्रस्य च पूर्वशैलशृङ्गे तु सोमः कलशायतेऽलं
सिंही सुतस्याप्यरदैर्व्रणान्तु सुधांशुबिम्बस्य पदानि सन्तु
वियोगिनीनामथवा दृगन्तैः समं गतैरञ्जनकैर्धृतं तैः
तमोंऽशुकं राज्यपसार्य शस्तैः करैश्च मध्यं स्पृशति स्वतस्तैः
परिस्फुरत्कैरववक्त्रबिम्बा श्यामाद्रवश्चन्द्रमणीति दम्भात्
श्रीवर्द्धमानो विधुरेप जीयाच्छ्रीकौमुदाधारतया यदीया
कलाश्रयन्त्यां कलिकालकायानुद्योतयन्ती समयं निशायां
स्वयंकरक्षेपकरः परिज्ञा कुमुद्वतीनां सदसीति दृष्वा
तास्तास्तरामौपधयो ज्वलन्ति स्त्रियः परोद्वाहसहाः क सन्ति
निष्पीड्यमाने तिमिरे करेण भृशं सितांशोर्विधिनादरेण
भङ्क्त्वार्गलं कोकयुगं ह्युदाराशयेन सद्द्वारमदायि चारात्
शाणोपलेऽस्मिन् खलु शीतभानावयं जगत्ताडनकुण्ठितानां

उत्तेजनामङ्कपरिस्थितीनां स्मरः शराणां समुपैत्यदीनां
विलासिनीनां प्रतिवीथि आस्थं निरीक्षमाणः शुचिहासभार्ष्यं
करान्प्रसार्योपगवाक्षमिन्दुः सौन्दर्यभिक्षामटतीष्टविन्दुः
परागपाण्डुः शशिनः सुसृष्टिः करोत्करो(श्रयो)साविव चूर्णमुष्टिः
व्याप्नोति वक्त्रं मृदु मञ्जु यावत्समुत्कतामेति वधूश्च तावत्
वल्मीकमाप्त्वाह्निजनीहृदेकं सुप्तोऽथ दृप्तोऽप्यधुना मुदेकं
लोके करैरुद्धरतात्तरां सोऽनङ्गः फणीशः शिशिरैः सुधांशोः
स्वगोघृतैरुज्ज्वलितेषु काष्ठोदयेषु तारापरनामसाराः
जुहोति लाजाः किल कामसिद्ध्यै द्विजाधिराडेष किलाधिकारात्
त्रस्तं तमोरात्रिपतेस्सदंशुप्रासेन तद्यत्प्रभवज्जगत्सु
लब्ध्वाऽपशङ्कोऽस्तु च राजधानीवियोगिनीनां हृदयेष्विदानीम्
आद्धाशनीराशयपुण्डरीकं वदाम्यदोङ्कस्थितचञ्चरीकम्
यूनां मनोवर्त्मनि तर्तरीकं तरत्यहो कामरमामरीकं
सैन्दुर्यमिन्दुर्द्विविधाहरोऽति वृत्याथ नैर्मल्यमुरीकरोति
न स्थीयतां शान्तहृदं प्रकृत्यामपि प्रवृत्यागतया विकृत्या
स्मरामरस्यामलमातपत्रं शृङ्गारवारस्य च ताम्रपत्रं
विराजते सम्प्रतिराजसत्रं सुधामयं श्रीद्यु सदाममत्रं
पयोनिधिः फेनकचन्दनन्तु भङ्गाः समुत्पेष्टुमहो जयन्तु
मुदे समादाय तदेतदेष दिगङ्गना लिम्पति लाञ्छनेशः
प्राच्यां पुरारक्तिमुपेत्य पापी शापान्निशाया अधुनोपतापी
कलङ्कितामेति तुषारसारगात्रोऽपि रात्रेर्हृदयैकहारः
एतत्सदिन्दीवरभासिनाम समापतत्साम्प्रतमिन्दुधाम

पयोधिमध्ये पततोऽनुवर्ति वृत्तं सुरस्रोतसि आविभर्ति
शशी विहायःसरसि प्रसन्नो हंसायते मेचकशैवलाशी
श्रीचन्द्रिकासारिणिवारिणीह तारातती राजति वुद्बुदाशीः
रामोऽपि राजा हृतवानिदानीं तारावराजीवनकृद्विधानी
निशाचरं सन्तमसं विशालैः सलक्ष्मणोऽसौ करवालजालैः
पादार्दितामंह्नि रवेस्तु दीनां रुतैरिदानीं रुदतीमलीनां
परामृशन् भाति निशानिशानः कुमुद्वतीं स्मेरमुखीं दधानः
श्रीमान् शशी कैरवणीवनेषु नरोऽपि नारीमुखचुम्बनेषु
द्वौ वद्धमानातुलनर्ममग्नौ मिथोऽप्यथो स्पर्द्धनतो हि लग्नौ
तमोऽवगुण्ठान्तंगता ततापि तारापदेशाच्छ्रमवारिणापि
पत्युश्चरत्युत्सवहेतवे तु समुद्यता कैरवहर्षसेतुः
गरं जगन्मोहकरं तमस्तु यदस्य चन्द्रस्य हि भक्ष्यवस्तु
अतः स्वतः कज्जलजालजातितुषारभासो जठरं विभाति
तमोमयं केशचयं नियम्य मरीचिभिश्चाङ्गुलिभिस्तु सम्यक्
विमुद्रिताम्भोरुहनेत्रविन्दुमुखं रजन्याः परिचुम्बतीन्दुः
तमस्विनीज्योत्स्निकयोः प्रसक्तिसम्वादवादीव विधुर्विभर्ति ।
सितासितप्रायमुतात्मकायं द्विच्छायमङ्गाङ्गनयोरिहायं ॥
स्तनन्धयः सम्भवतीव कामी यज्जन्मपत्रस्य विधोः स्मरामि ।
यस्यारिभावे गुरुशुक्लतास्ति व्ययस्थलेऽथो तमसोम्युपास्तिः ॥
दिनेऽपि भावाच्छशिनो नतस्याथ कौमुदीयं कुमुदस्य हि स्यात् ।
चान्दीपदे सम्विदिभूपभूवत्सम्वन्ध आधार इतो बभूव ॥

केचिच्छशं केचिदितः कलङ्कं वदन्तु इन्दोरनिमित्तमङ्कं ।
पिपीलिकानान्तु सुधाकशिम्बं किलावली चुम्बति चन्द्रबिम्बम् ॥
पत्यौ समागच्छति शीतरस्मौ तारामणीभूषणभूषिताभिः ।
किलोपदिष्टं प्रतिकर्मकान्ताः स्मारभन्ते स्म तदादिशाभिः ॥
बद्धं त्वनर्घस्य किमर्थमेतत् हैमं तुलाकोटियुगंचमेतत् ।
इतीव रोषात्पदयुग्ममासीद्रक्तं रमायाः अरुणोपभासि ॥
नितम्बबिम्बे परयोपरोपिताभितः स्खलन्ती खलु सप्तकी सिता ।
मितापताकेव जिताखिलारिणः प्रासादशृङ्गेऽहिपहारवैरिणः ॥
तारुण्यतेजोभिरभूत्स्तनाख्यो द्वीपोऽपि योनङ्गनिवासयोग्ये ।
व्यच्छेदि हारावलिवारपूरैः चेत्रेऽन्यया कान्तिभरैकभोग्ये ॥
श्रुतिलंघनाय वाञ्छति नयनद्वितये स्वभावतस्तरले ।
उचितज्ञताधिपन्ना साध्वी कज्जलमलंचक्रे ॥
गुरुशुक्लतयानिवेशितं मृदुचन्द्राननयाथ कुण्डले ।
खलु दौरुधरीं श्रियं तरां स्म विभर्त्तः प्रियकामजन्मनि
अथ चक्रवदावभौ कयावधृतं गन्धवहाविभूषणं
अवकृष्टमिवाशु कोशतो विजगीषोः स्मरचक्रवर्तिनः
अनुवद्धपरस्पराङ्गुलिस्वकरद्वन्द्वमुदञ्च्य जृम्भिणी
हृदयं विशतो मनोभुवः कृतवत्येव च तोरणश्रियं
प्रियागमनतत्परा यदधि जानु सत्कूर्परा
मिनम्रकरपल्लवार्पितकपोलमूलापरा
लिलेख समयोचितोत्पठित(चरित)मञ्जुमञ्जुस्वना
परेण करतोऽवनौ (शुचिपाणिना) किमपि यन्त्रमाकर्षकं

प्राणयविकाशविदः पुनरपाङ्गमयगोभिरञ्चितचिपहृवः
दृश इव सख्यो युवतिभिरधिदयितं प्रेषिताः कतिभिः
सन्दिशेति किल तुल्ययोदिता लज्जया किमपि नाहमानिनी ।
नम्रया खलु भृशं दृशात्र सा स्मेक्षते त्वतनुतापि तां तनुं ॥
एकत्राङ्कितचौरसाहवतिभिः शश्वद्वणिग्भिर्भवान्,
रङ्गाहो तुलितोऽसि हेमतुलयास्तां किन्तु रत्नाश्रितं ।
प्रीत्या तत्तु विशालदृग्भिरधुना त्वारोप्यते मस्तके,
पापान्नोषि हतोऽसि मुग्धवनितापादेषु पश्य स्थितिं ॥
सखित्वं स्निग्धाङ्गी प्रभवति युवा सोऽपि तरल,
तमिस्रेयं रात्री रहसि कथनीयं मदुदितं ।
समस्येयं क्लिष्टात्र दिशतु किलेष्टन्तु भगवान् ,
नियं वाचां वल्ली प्रसरति सती स्माम्बुजदृशः ॥
अनुकूलेङ्गितकर्त्रीच्छायेव प्रेषिताथ कामिन्या ।
दयितं प्रतीति दूती सन्देशमुदाजहार सती ॥
त्वं विजितमदनरूपस्त्वय्यनुरक्ता च हरिणनयना सा ।
इत्यनुशयादिवामूमुत्तपति किलैकिकां मदनः ॥
कुसुमादपि सुकुमारं वपुरवालतामितीदमुद्धरति ।
इषुना स्मरस्य सुन्दर कुसुमेन हतं तदीयाङ्गम् ॥
अनुरागवर्तिना तव विरहेणोग्रेण सा ग्रहीताङ्गी ।
किमु सम्वदामि गौरी सञ्जाताद्धांबशिष्टेव ॥
इन्दुकरैर्मलयभवैर्वातैः स्पृष्टा मुहुश्च मञ्जुमते ।
दोषभयादिव सिञ्चति तनुमतनु सदश्रुपूरैः सा ॥

इति वारितोऽङ्कुराङ्कितततनुर्मनुष्यो जवेनसुर(ल)तार्थी ।
मुक्ताफलानि चाश्रव्याजादिव सन्ददे तस्यै ॥

दयिता हृतस्य मनसः समातुरैः परिमूढतामिव गतैः पुरानरैः ।
उदिते समुद्धृतपदैः क्षपाकरे प्रयये ततोऽनुपदिभिः स्फुरच्चरे ॥

अनुतनूपगतस्य वपुष्मतो गुरुतरं प्रतिविम्विमथोद्वहत् ।
अतिभरादिव कम्पवतः करान्मुकुरकं निपपात नतभ्रुवः ॥

कान्तावलोकविकशन्नयनप्रणुन्नं,
कञ्जं तु सम्भ्रमभृतः श्रवणान्नताङ्ग्याः ।
प्राणेशपादभुविसन्निपतद्रराजा—
तिथ्येदृशः परिकृतं प्रतिविम्वमेव ॥

प्रमदा प्रमदाश्रुभिः प्रिये समुपागच्छति सत्वरं तरां ।
स्नपयत्यमुकोचितासनं निजवक्षः स्म चकोरलोचना ॥

मानिनीप्रियमुदीक्ष्य विनीवावंशुकेविनमितास्यमिहासीत् ।
सापदानिपरिदृष्टवतीव प्रस्थितस्य सहसा स्मयकस्य ॥

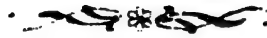
निजनायकमवलोक्य तमागमेका यावद्रामा,
शातवतीहोत्थितासनतः जघनमतिथिरागं ।
संहर्षवशात्पादयोर्नतं जघनपीठमभिरामं,
मंक्षुविनिह्नवशालि च समदान्माहात्म्यगतारामं ॥

(निशासमागमश्चक्रबन्धः)

सन्मधुनोराचार्यत्वं रतिषूतममजनिनिशायां सम्यङ्माराङ्गक्रमं

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामरोपाह्वयं,
वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयं।
काव्ये कौमुदमेधयन्त्यपि सुधाबन्धूज्ज्वले तत्कृतः,
सर्गः स्वीयकलाभिरेष दशमः पञ्चोत्तरो निर्गतः॥

इति श्री वाणीभूषण ब्रह्मचारि-भूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये पञ्चदशः सर्गः



अथ: षोडशः सर्गः

निशीथतीर्थे कृतमज्जनेन जयाय निर्यातमथ स्मरेण ।
पीयूषपादोज्ज्वलकुम्भदृष्ट्या सुभस्फुरन्मङ्गललाजमृष्ट्या ॥१

प्रयाणवेलां कुसुमायुधस्याप्यहो स्वयं स्त्रीपुरुषेषु न स्यात् ।
तारुण्यमूर्त्तिष्वपि कस्य कस्य सहायवाञ्छा सुतरां प्रपश्य ॥२

विश्वस्य यद् धैर्यधनं व्यलोपि वियोगिनोऽथापि तु योगिनोपि
रामाभिधामाकलयन्ति नामाधुना पुनस्तं प्रतिकर्तुकामाः ॥३

अनङ्गजन्मानमहोसदङ्ग शक्त्याप्यजेयं समुदीक्ष्य चङ्गः ।
गतो विविक्तुं निजमित्युपायादुपासनायां गृहदेविकायाः ॥४

रतीश्वराज्ञां शिरसा वहन्ति तेऽत्रापि वस्त्राभरणैर्लसन्ति ।
तच्छासनानीति कृतश्च के ते वाचंयमास्सन्तु गुहासु ते ते ॥५

एकाकिने धूमसमंतमस्तु वाष्पाम्बुपूरोदयकारि वस्तु ।
सदञ्जनस्याञ्जनवत्सु शास्तुदृ गम्बुजोन्मीलनकृत्सदास्तु ॥६

सौभाग्यभृङ्गीरुजनास्य फुल्लविलोकिने श्रीध्वजवस्त्रपल्लः ।
हृद्भेदकृत्सम्भवतीव भल्लः परत्रयो दीपशिखांशमल्लः ॥७

सुद्योतनं द्वंतमनो निकाममुद्योतनं चन्द्रमसोऽभिरामम् ।
वियोगिनः सन्तमसं तथातियत्नादिदानीं मनसि प्रयाति ॥८

सिताश्रितं दुग्धमिवादरेण निपीयते सङ्गमिना परेण ।
अथोपितं तक्रमिवात्र नक्रसंकोचनः श्रीशशिरश्मिचक्रं ॥९

कामारिनामाप्यभवल्ललामा यदीयमूर्धान्दुकशीतधामा ।
दिशां जयं श्रीतिपितुः प्रशस्यं साचिव्यमेष प्रचरत्यवश्यं ॥१०
निशाचरः पञ्चशरोऽस्ति पृष्टलग्नो मर्मकाकिन आनिकृष्टः ।
त्वत्तो लभे नो यदि तन्त्रसूत्रमष्टाङ्गसिद्धेः समवास्तु कुत्र ॥११
श्यामं मुखं मे विरहैकवस्तु एकान्ततोऽरक्तमहोमनस्तु ।
प्रत्यागतस्ते ह्यधराग्रभाग एवाभिरूपे मनसस्तु रागः ॥१२
मुहुर्नु बद्धाञ्जलिरेष दासः सदासखि प्रार्थयते सदाशः ।
कुतः पुनः पूर्णपयोधरा वा न वर्तसे सत्करकस्वभावा ॥१३
सद्धारगंगाधरमुग्ररूपं तवेममुच्चै स्तनशैलभूपम् ।
दिगम्बरं गौरिविधे हि चन्द्रचूडं करिष्यामितमामतन्द्रः (?) ॥१४
त्वमप्सरःसारमयी त्वदन्तःक्रियाश्रिया मे सफरो दृगन्तः ।
स सन्ततं नायमसँरत्ततस्तु कुतः पुनर्यद्दुरितं समस्तु ॥१५
चण्डः स्मरोऽसौ धनुर्गति कान्ते सन्धारयोर्ध्वं स्तनपर्वतान्ते ।
ज्वलत्यलं मे विरहाग्निनान्ते किं स्यान्नियासोऽसि विभूतिमाँस्ते १६
स्मरस्मरङ्गस्थलमेत्यदंशस्पृङ् मेऽपि धन्वापहरत्यरं सः ।
त्वं देवि हे दीव्यशराधिभूयन्मुदे तु कोदण्डमुदेतु भूयः ॥१७
नतभ्रु तप्तास्यतनुज्वरेण किलोपवासोऽस्तु सुखाय तेन ।
रसायनाधीट्रसमर्पयास्मिन्नालं तवावेदितलंघनेऽस्मि ॥१८
सद्वृत्तसम्वादसमर्थमद्य श्रीचन्द्रकान्तामृतगुं प्रपद्य ।
नितान्तमन्तःकठिनापि वारिमुक्तामथोरीकुरुते स्म नारी ॥१९
सविभ्रमां यौवनवारिवेगां वधूनदीं भो श्रृणु वीर मे गां ।
उदारभृङ्गारतरङ्गसेनां कोऽस्त्येतुमीशः शुचिहासफेनां ॥२०

उदारवक्रै रुतदारनक्रै रक्लेशितः- सन्त्रतिवीचिचक्रैः।
समुल्वणं यौवनवारिराशिमत्येति जीयात्स नरोऽस्मराशीः ॥२१
कान्तारसद्देशचरस्य चक्षुः क्षेमोऽभवत्सद्धिदपेषु दिक्षु।
अद्वैतसम्वादमुपेत्य वाणमोक्षः क्षणाद्धासवयस्यकाणः ॥२२
नवोद्धृतं नाम दधत्तदिन्द-विम्वं वभूवेह घृतस्य विन्दुः।
वियोगवह्न्युत्तपनाय हेतुर्द्वैतस्य वा स्नेहनकर्मणे तु ॥२३
कुन्दारविन्दादिततावृयेभ्यः शय्येव सासीद्विरहाश्रयेभ्यः।
हसन्ति भङ्गारकभावमिश्राऽसकौ च कौ भौघमिता तमिश्रा ॥२४
शरीरिवर्गस्य तमां विवेकहान्यामहान्यागगुणाभिषेक।
सुरासुराद्धान्तचुरासुयोग आद्यः स्मरेषोरिति सम्प्रयोगः। २५
तालीयकं सौधमिवास्तुवस्तुसंयोगिनः किन्न वियोगिनस्तु।
पुंसः पुनः पित्तलपात्रमस्तु सम्वेदवत्खेदकरं तदस्तु ॥२६
द्वैतानि तानि प्रकृतादरस्य नृशंसतायां सरकं स्मरस्य।
शिलीमुखैर्जर्जरितैष्वसिश्वन्पुनः पुनः स्वाम्वनितेषु किश्च ॥२७
नालं समुत्पीनपयोधभावात्सम्पादने दोर्वलनस्य सा वा।
विनामनं वक्त्रवरस्य मद्यपाने कुतस्स्यात्कुशलाद्य सद्यः ॥२८
अन्वाननं पानकपात्रमाशासमन्वितायाविवतरन्विलासात्।
हस्तेन शस्तस्तनमण्डलान्तमालिङ्ग्य सम्यङ् मदमाप कान्तः ॥२९
भर्त्रात्तनामग्रहणं सपत्न्यास्समर्पिताहो मदिरापि पत्न्याः।
अस्यास्समस्या मददारणाय दृश्यापि तस्या मददारणाय ॥३०
हाला हि लालायितमन्तरङ्गं करोति वीजग्रहणष्वभङ्गं।
हालाहलं प्राह जनेत्र पाला वालापिनी प्रीतपणस्य वाला ॥३१

मद्यं पिबन्नत्र कृतावतारं स्वयोषितः फुल्लसरोजसारम् ।
पीत्वाऽऽननं यन्मदमापगाढं न तेन वा तादृशमेष गाढम् (वाढं)॥३२
सोमं निरीक्ष्यास्य समन्वहेतुं जेतुं दुरन्तं कुसुमेषुकेतुः ।
मधुन्युपात्तप्रतिमावतारं पपावदम्मत्वरमप्यसारं ॥३३
मद्येन सार्द्धं मम सेमुपीतः मशीतरश्मिच्छविभृन्निपीतः ।
नो चेदिदानीं सुदृशां स दन्तम्नमस्स्मयाख्यं च कुतो हृतं तत् ॥३४
रागं तमत्त्र्णाः प्रियवच्छ्रयन्तं रतिप्रतिज्ञां प्रथयन्तमन्तः ।
सुरारमं सन्निदधाति योषा स्म या स्मयोच्छेदपटुं सुतोषा ॥३५
कलङ्किना क्रान्तपदं च कश्यं नावश्यनश्यत्तमसेदमस्यं ॥
तत्याज वेगाच्चषकं स्वहस्तादित्येवमुक्तासुरताय शस्ता ॥३६
अधोऽथ पीतासवसुन्दरेभ्यस्त्यक्तं त्वमत्रं मिथुनाननेभ्यः ।
रुदत्तदिन्दीवरमेव शापश्रिये हियेवालिरवैरवाप ॥३७
आस्वाद्यमद्यं चषकं त्यजन्त्यास्मम्प्रस्रवत्सीधवधरं भजन्त्याः ।
चुचूष सद्यश्चतुरस्तमन्यादरेण चूतोच्चितकं सुदन्त्या ॥३८
चक्राह्वयद्वैतवदुज्वलांशेऽधरावधिप्रेमजुषो विलासे ।
वर्त्म स्वयं वै तमसोऽवरुद्धं मनोजराजेन पुनः प्रबुद्धं ॥३९
मदास्पदोसावधुनोदियाय प्रच्छादितोऽन्तस्त्रपया चिराय ।
यत्नेन योऽम्भोजदृशाम्महीयान्रागो दृशो. प्रीततमं प्रतीयात् ॥४०
यदेवमिन्दीवरपुण्डरीकसारैः समारब्धनिजप्रतीकम् ।
मदेन सत्कोकनदस्य शोभां चचुर्दधच्चारुदृशामदोऽभात् ॥४१
अप्रस्तुतत्वात्सुदृशां सदङ्गे गुप्तोऽपि सन्धातुगतो यथार्थः ।
मदेन वाऽनेन किलोपसर्ग-पदेन हावादिरथो कृतार्थः ॥४२

भ्रुजोश्च वध्वा भृशमप्यकारि स्मितं मुखाम्भोरुहि हावहारि ।
वाकौशलं किञ्च मदेन यूनाच्छटाकटाक्षस्य दृशोरनूना ॥४३

रूपं सदेवाप्रतिमच्छवित्रं कायोनपेक्षिप्रणयं पवित्रम् ।
वचश्च चारुप्रवरेषु तासां वदामि सत्कर्मणामिन्दुभासां ॥४४

तनूनपाद्भिर्मदनं तथाद्भिः खण्डं तथाम्भोरुहरम्यपाद्भिः ।
समासभृद्भासविलासभाषादिभिर्नृ चेतोऽपगलत्सकाशात् ॥४५

जयेज्जनीनां स्मितसारजुष्टिर्नृ भ्यो वशीकारकचूर्णमुष्टि ।
मञ्जीरकोदारझणत्कृतश्च पञ्चेषु मन्त्रोक्तिपदं समञ्चत् ॥४६

रतीशतीर्थाङ्कपदं जघन्यमुद्घाट्य दृक्कोणकणार्धरन्यः ।
उरोजदुर्गे नयनं जनस्य कस्य स्मरादेशकरो न कस्य ॥४७

जगाम मंग्यभृतं त्वमत्र आघ्रातुमात्तप्रतिमेऽलिरत्र ।
वध्वा सवध्वानयनेऽब्जबुद्धि स्याल्लोलुमानान्तु कुतः प्रबुद्धिः ॥४८

ततत्यजेदं भभभाजनन्तु दुद्रुद्रुतं तेमुमुखासवन्तु ।
वध्वा ददं देहि पिपिप्रियेति मदोक्तिरेपालिमुदं निरगेति ॥४९

मणिमयचपकं श्रियमवतरितां दृष्ट्वा वरखल्खण्डितकरितां ।
अधरालक्तनुदोऽपि मुदाराम्भमुद एव दधुर्मधुवाराः ॥५०

मधुनायचरमणायत्प्रगल्भतां वक्रवाक्यरमणायः ।
सूचितगूढरहस्यः परिहासः श्रीजानिमपश्यत् ॥५१

मन्दगलत्त्रपमिरयानिदधन्यार्थपदुन्मिपितचक्षुः ।
वध्वाऽधोमुखपादो दयितमुखं वीक्षितममंक्षु ॥५२

सुदृशां मदेन विभ्रमपुंपि वपुंपीरितानि निजभ्रूणुः ।
इतरेतरसङ्गादिव कुचकुम्भैरुद्धनैर्द्धयतः ॥५३

सागसि रसिके रुष्टा तुष्टा न पदाब्जयोरपि च जुष्टा ।
मद्यविलुप्तविवेका तथैव तमतोप यदि हैका ॥५४
प्रियसङ्गमनिर्जितरुपि शमितविवादे प्रसन्नया धनुषि ।
नेपुं रतिहृदयेशः श्रितसन्धां यावते प्रविदधे सः ॥५५
इत्येवमभिनिवेशे स्मरशरसम्विद्धसकलभूदेशे ।
नक्तं व्रजति विशेषे संहतिलिप्सौ नरि अशेषे ॥५६
एका सखी विवेकाञ्चितचित्तासानुकूलमपि चकितां ।
उपदिशति स्म न वोढां प्रौढावोढारमननुगताम् ॥५७
राजीव मधुरनयने नयने अयने निमीलिते कस्मात् ।
निर्जितदर्पकमधुना दर्पकवशगं प्रियं पश्य ॥५८
यदि कुपितासि सुभाषिणि करजक्षतपूर्वकं मदनशासिनि ।
भुजपाशेन दृढन्तं वधानानिगलेऽत्र विलसन्तं ॥५९
रमणे चरणप्रान्ते प्रणतिप्रवणेऽप्यनन्यशरणे वा ।
रचिता उचिता न रुषस्तत्त्वं निगदामि सखि ते वा ॥६०
शुभवति भवति सताराना काशे भवति भवति अपि चारात् ।
मदवति दवति रतीशे काननमेतस्य वरमीशे(अहं) ॥६१
जयते कञ्चुकहृदयं यदिदं ते तन्वि सङ्कुचति हृदयं ।
भुजवति जवति विलासिम मुञ्च शरं मंक्षु गदितास्मि ॥६२
अञ्चति रजनिरुदञ्चति सन्तमसं तन्वि चञ्चति च मदनः
युक्तमयुक्तं तत्यज रक्तममुस्मिँस्तु रचय मनः ॥६३
मनसि मनसिजनि(मि)ताया वनिताया विरहदग्धहृदयायाः ।
तल्लिङ्गानि तदानीं स्फुलिङ्गानीतिनिरगच्छन् ॥६४

आलीगिरा ह्यकृतिनः पुराऽपराधा उपेक्षिताः कति न ।
अधुना तु तर्जनीयः कितवो नियमेन न वशी यः ॥६५

स्फुरसि कथं भुजलतिके लोचनतां किं गता त्वमपि धृतिके ।
नागतमप्यहममतं स्पृष्टुमलं द्रष्टुमपि मम तं ॥६६

सोमो भवान्यदाभूद्विधुमणिघटिता तदाहमपि साभूः ।
त्वं खररुचिरघशठद्यु मणिप्रकृतिमहमपठं ॥६७

तव निर्घृण किमिहार्थः याहि ययैवानुरज्यसेऽपार्थः ।
माऽपहर कुचग्रन्थि किमपास्तातेऽस्ति हृद्ग्रन्थिः ॥६८

मानिन्यसहेति मुहुर्धिक्कृतिरपि कल्पितामयीह बहु ।
कितवगुणाननुवदता हं जिन सवयोजनेन सता ॥६९

क्रीडाकोपात्कथमपि गच्छेति मयोदिते कठिनहृदयः ।
त्यक्त्वा तल्पमनल्पं गतवान् सखि पश्यतादद्यः ॥७०

यामि विधात्रभ्युदिते पुनरायास्यामि चेति संगदितं ।
तदुदन्तत्वेनाहं नेदं तत्वेन वेद्मि मितं ॥७१

मञ्जुलघौ गुणसारे किल क्वचित्सुसखि नापदाधारे ।
तत्रोपपतौ चेतः पर्यां ना नीदृशि ममेतः ॥७२

सखि शस्तः सखिवत् पातिरिति किं मृदुलोचनेन जानासि ।
शस्तोऽतिसखिवदुपपतिरित्यालि न किं समानासि ॥७३

श्रीमत्तमालशकलभ्रु विमुञ्च जालं,
स्वच्छन्दबोधमधुना निगदामि मालं ।
आशासितेतिव(म)दनोदलवैश्च शस्यै--,
मुक्ताफलानि तु ददात्युपहारमस्यै ॥७४

प्रेयसी प्रियतमस्य पार्श्वतश्चन्द्रकान्तमृदुपुत्रिकां स्वतं ।
संस्फुरत्तरलवारि कां हि कासङ्गतामकथयत्सपत्निकां ॥७५
यूनिरागतरलैरयितिर्यक् पातिभिर्मदमतिष्ववतीर्य ।
दूरदर्शिभिरलंघिनवाला लोचनैः श्रुतिरहो सुविशाला ॥७६
मधुनामधुनाधुना कृतं रसवत् प्रत्ययमभ्युपेत्य तैः ।
मधुरस्मितसुन्दराननैर्मधुरं रूपमवापि यौवतैः ॥७७
हृदि वाचि कपोलयोर्दृशोर्वानिखिलेष्वेव विचेष्टितेष्वदीना ।
अनुरागमिहानुभावयन्ती प्रथितार्थाऽजनिरञ्जनीजनीनां ॥७८
दृगियं श्रुतिलंघनोत्सुकाऽराद्भ्रुकुटीस्मार्तसुधर्मकीर्तिलोयत्नी ।
न पुराणपथाश्रिता विलासाः सुरताङ्कोऽयमनीतिरेव तासां ॥७९
लीलातामरसाहतोन्यवनिता दष्टाधरत्वाज्जनः,
सम्मिश्राब्जरजस्तयेव सहसा सम्मीलितालोचनः ।
वध्वाः पूत्कृतितत्परं मुकलितं वक्त्रं पुनश्चुम्बतः,
निर्याति स्म तदेव तस्य नितरां हर्षाश्रुभिः श्रीमतः ॥८०
भूर्जप्रायकपोलके दललताव्याजेन बीजाक्षराः,
प्रान्ते कुण्डलसम्पर्दो विलसतो युक्तौ ठकारौ तरां ।
लोमालीति च नाभिकुण्डकलिनाश्रीधूपधूमावली,
सञ्जीयाज्जयमालिका गुणवनीयं हेमसूत्रावली ॥८१
मायात्रयपरिवेष्टितात्रिवलिमेपेण तनूदरी ।
त्येषा सा स्मरभूपतेः स्तम्भनविद्यासुन्दरी ॥८२
सुन्दरीः सद्यः सुन्दरैः कलयितुमनुष्णरुचोऽनुसं ।
मधुराकलालिरिवोज्ज्वलप्रतिभावभावासत्तया ॥८३

रतिषु पाटवमासवोऽलमलं विधातुमभूत् पुनः ।
न तनोः सुखानुमतः परं लालसकरः पठावनः ॥८४

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपह्वयं,
वाणीभूषणमास्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
तस्यास्मिन्मदयन्मनःसमनसां सर्गः समाप्तिं गतः,
श्रीकाव्ये स्वरसेण चंप दशमः षष्ठोत्तरः श्रीमतः ॥८५

इति श्री वाणीभूषण-ब्रह्मचारि-भूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये षोडशः सर्गः



अथ सप्तदशः सर्गः

अथोर्जनीन्द्रो बहुमानवित्तं हर्तुं प्रहर्तुं च वियोगिचित्तं ।
भयाद्व्यनामभ्युपगम्य शिष्टाः सर्वे युवानो रहसि प्रविष्टाः ॥१

श्रिया क्रियातोऽपि किलाप्रशस्यं कलङ्किनं जेतुमिवाप्यवश्यं ।
भास्वान्पवित्राणि रहः कृतानि जयोभ्यवाञ्छन्मृदुचेष्टितानि ॥२

कोकस्य कल्पो विधुजन्मनीति लोकस्य तल्पोक्तगुणप्रणीतिः ।
नो कस्य वांछा प्रभवेन्कलायां जयस्य चानन्दभुवीष्टिमाया ॥३

संकोचभृन्पद्मधुरा पुरा तु कुमुद्वती मालिरितानुमातुं ।
सुधामसत्कारवतीं निरुच्य स्फुरंति सत्कारमहिम्नि रूच्यः ॥४

तां सम्पदामभ्युपगम्य धात्री सम्वाधमध्यादुपभोगपात्रीं ।
ततः समुद्धर्तुमिवाभ्यवाञ्छच्छनैरसौ निस्व इवाध्वयात्री ॥५

सहालिभिः पार्श्वमुपागमि प्राक्ततः शनैस्तेन तयैकया स्राक् ।
क्क मायिना तां च नियुज्य बालावशेषितात्मैकसुहृद्रसाला ॥६

अथास्य दोषा रजनीव राज्ञ उरीकृता सत्कृतसूक्तिभाग्यः ।
निरुक्तवेशाभरणैः समुक्तैः समन्ततः पीततमाभरूक्तैः ॥७

महाशयोऽगस्त्य इवैप वारां निधिं स्वसात्कर्तुमगादिहारात् ।
अजायनाद्वीणरसर्द्धिरेपा योगोनयोः स्फूर्तिकरो विशेषात् ॥८

योगस्तयोः कौतुकमित्यथोधाद्यस्याणिकायां गणिका अबोधः ।
न यद्विचारश्चतुरैरवापि लेभे मुनीनां न मनोऽप्यपापि ॥९

सिंहासने स्थातुमथानुयोग्ये योग्ये नृशार्दूलवरेण भोग्ये ।
कुरङ्गनेत्राधिकृतापि नेत्रा शशाक सा कम्पवती न जेत्रा ॥१०
दिशां च यामादरभावकर्त्तासनेऽपि तन्थौ परिरभ्य भर्त्ता ।
न तामुपादष्टुमहो मनीषामवाप सम्यक् स्मयगारिणी सा ॥११
सदस्यदः शीलितमेव मालाक्षेपान्मकं ज्ञातवतीव बाला ।
तत्त्वापलं चापललाभसारं दशापि लब्धुं न शशाक मारं ॥१२
मास्तूतसुस्निग्धतमेऽत्र हृद्यान्यस्तं दुराकर्षिमितीङ्गकृद्धा ।
चापल्यचारुप्रियसाद्व्रजन्तं प्रत्याचकर्षार्द्धपथा दृगन्तं ॥१३
स्वाङ्गं प्रदातुं भवतीव वामानुयाच्यमानाय पुनर्न वामा ।
राज्ञे किलाज्ञेव पुनर्नतामामकौ ममाग्रव्यपुनीननामा ॥१४
उत्थातुमर्हः स्तनपो हरारिर्ह्रिया भयेनापि पुनर्न्यवारि ।
यथा कुदृष्ट्या दुरितेन सम्यग्गुणः पवित्राभ्युदयैकगम्यः ॥१५
ह्री क्रीडितुं स्थातुमथात्र कामः न मन्दिदेशाव्जदृशः स्म नाम ।
प्रत्याव्रजंन्यर्द्धपथाद्धि कामाम्निरश्चरन्तोऽपि दृगन्तवाणाः ॥१६
तन्वी लतायां क्वचिदेव गूढेङ्गकेऽपि दृष्टिं निदधत्यमूढं ।
तामागतां धर्तुमिवावचारांशुकेन नत्राम्बुजलोचनारात् ॥१७
नापोपकण्ठं सहसोपकण्ठीकृतापि यूना पिकमञ्जुकण्ठी ।
नैकासनैकासनितापयमुग्धा मंशायिना वाचयतेषु मुग्धा ॥१८
लुप्ता न संकोचतती रमायाः कृताः प्रणेत्रा बहुशोप्युपायाः ।
अपत्रपा स्यादिह सा त्रपापि तेनाथ भूयो गुणसंकटापि ॥१९
आयाति नाथे सुतरां निरस्ता वागादिसख्यः खलु यास्तु शस्ताः।
लज्जापलज्जा भवतीव कान्तसमागमेऽस्थाः समगादुपान्तं ॥२०

अपा अपायिन्यपयातु केन क्रमेण कृत्वेति सुवर्णकेन ।
श्रीवारिदेनानुनयान्वयादि नदीत्वदीना सहसोदपादि ॥२१
इवालिरस्मीह तु कौतुकाय लताङ्गि ते जातु नवास्त्वपायः ।
नयति विश्वासमयेऽभिनेतुम्तान्नं तुमामीन्सुवचोऽयनं तु ॥२२
न याचिता सा सुरताय याचमदात्तदाऽस्वादिमुहुस्तवा च ।
जयेन येनासि समानमाना जानामि नानादरिर्णा रतौ ना ॥२३
समाह सा सम्प्रति नेति नेति स म्मामृतेनेव मुदं समेति ।
अहो भवत्या भुवि न द्वयेन समर्थितं मल्लपितं हि तेन ॥२४
सा काममुत्सङ्गकृतापि नेन माऽऽकाममुत्सङ्गकृताऽपि तेन ।
वाञ्छामि बालेऽन्तलतामनोहं वाञ्छामि बालेन्तलतामनोऽहं ॥
स्खलत्तदन्यश्रवणावतंसानुयोजने दत्तशयद्वयं सा ।
मुखं तिरः क्लृप्तवती सुगात्री भर्त्रे कपोलस्य बभूव दात्री ॥२६
दिने तु नेतुर्विरहासहन्त्वान्निशः प्रभाः सङ्गदिशः स्मरंती ।
दिनोदयं सा पुनरिच्छति स्म स्मरक्रियां भर्तुरनुत्तरंती ॥२७
निचुम्बनं ह्रीणतया नतास्यास्विन्नं हृदीशप्रतिबिम्बभाष्यात् ।
सम्मुखमप्याशु मुखं सुखेन बाला ददौ चुम्बनकन्तु तेन ॥२८
रतिह्रियोः प्रेङ्खणकारिणीशान्वाशाजुषः कुण्डलकद्वयी सा ।
तिरोनताभ्युन्नतवक्त्रभाजस्तुलेव लोला सुतनोः रराज ॥२६
विचुम्बतोधीशमुखस्य शीतकरत्वमित्युक्तवती सतीतः ।
सत्वोद्भवद्वेपथुका तु तानि वितन्वती सम्प्रति सीत्कृतानि ॥३०
न याचनात्सन्ददतीं कपोलमथान्यहृत्कां स्मरसिन्धुकोलः ।
कृत्वा तदादायसा(?)सीस्मियेन किमित्थमुक्तिं गदितास्मि येन ॥३१

ह्रीणां च वीणां कुरुषे न गात्रा न कौमुदीवासि मृदुस्मिता वा ।
अथाद्य मूकासि कुतोऽप्यनूकात्त्वतान तामित्यपि वावदूकाम् ॥३२
वाणी कृपाणीव न कर्कशार्यास्मि कौमुदीवन्न कलङ्किभार्या ।
नूनं तनुं भो समयानिवार्यात्रपात्रपायाच्च कुलीननार्याः ॥३३
पत्या चरन्त्यादरिणी निपीतरदच्छदप्रोञ्छनकारिणीतः ।
परं न तस्यैव हि रागभागाभिव्यक्तये स्वस्य हृदोऽपि त्यागात् ॥३४
बलादुपात्ताधरचुम्बनाय नता निपीता दृशि सस्मितायत् ।
धवस्य दृष्ट्वाधरमात्ततुत्थं विधोः कलेवाब्धिमुताह सून्थम् ॥३५
सारोऽभ्युदारो दयिते तवायं हारं समारब्धुमिति द्रुमायं ।
आरभ्य नाभेः रसिकेन सम्यगाकण्ठमाश्लेपि वधू विनम्य ॥३६
किलाभिभूतं स्मरव ह्नमत्यादराद्धसन्त्या हि विभूतिमत्याः ।
विकाशयामास शयाशयेन यथापर्शेत्यं भवता जयेन ॥३७
शनैश्च पश्चान्निरकाशितेन भी ह्री च नेत्राशयचालनेन ।
रहोमहोमन्त्रमिदाविदारादपूजि साध्व्या स्मितपुष्पधारा ॥३८
जयाननेन्दुः सुदृगास्यपद्मश्रियान्वयं प्राप्य मुदंकसद्म ।
सानङ्गता किन्न यशोधनायदलम्भि वैरस्य विशोधनाय ॥३९
सुधाश्रयं प्राणधरं समाहावराङ्गपानेषु कृतावगाहा ।
सङ्कारतप्रान्तगतं मुहुर्वाऽवदत्तरामुद्गतवेपथुर्वाक् ॥४०
स्मितामृतांशैः परितापितत्वात्तवोरुसम्वाह नमेमि मन्वात् ।
इत्युक्तिलेशेन तदुक्तदेशे करं पवित्रं कृतवानशेषे ॥४१
आप्तुं कुचं हेमघटं शुशोच एकोऽरं कंचुकमुन्मुमोच ।
चुकूज तन्व्या मृदुबंधनश्चाभृद्रोमराजीप्रतिबोधभृद्धा ॥४२

सदंचलं मंग्रनि वद्धमीशकरोऽङ्गनावक्षसि तूद्यमी सः ।
अभूत्तदाच्छादयदाशुमानं भुजालताभ्यां कुचकुड्नलान्तं ॥४३
नर्खरक्षानीह पयोधरं तु समुद्गमः श्रीपरिणामनेतुः ।
तृतीयमम्पांरुपपारमेतुममानि हेतुः किल मैव सेतुः ॥४४
समम्न्यमुष्या हृदये मुकारैः समादरः श्रीगुणिनामुदारं ।
कुतोन्यथा स्थानुमशाक्ति हारैर्गुणच्युतैर्नाद्य हताधिकारैः ॥४५
मेरोः शिलामूलघने प्रियायाः कुचोच्चये सोमतुजोभ्युपायात् ।
भूयोभिपातेन नखैः प्रकाममवापि भुग्नैर्नखरेति नाम ॥४६
सरोपदोपापनुदोऽपि वारिर्यतोऽस्ति लब्धा खलतेन खारी ।
सदचरामञ्जुपयोधराभूर्विलोकयामीत्युदिताचराभृत् ॥४७
एवं यमुत्तानितजन्मपत्रामत्रासयन्नाह पुनः पवित्रां ।
नवग्रहोत्साहसयो जयोऽपि नयेन संलग्नकथा व्यलोपि ॥४८
खिन्नास्य केनासितकेशि नीचैर्गतेन दोपाकरतापि येन ।
निपिद्धयते किन्तु तनौ नवोच्चैस्तेनेन सम्यग्गुरुणा हितेन ॥४९
पयोधरालिङ्गन एव कृत्वा समुत्करं गोमयमात्तसत्वात् ।
लसत्यथास्यामृतकारिकामधेनो त्वयारब्धमिदं ललाम ॥५०
रते च ते संकुचतीह हृद्यत्कामारमुत्सृज्य तु मेऽतिहृद्यं ।
गुणानुरागी करमर्पयामि अस्योपकारं न हि विस्मरामि ॥५१
सारोऽप्यहो सानुमतीव तेन वाहेन कृत्वा नवलावलेन ।
सदास्यशीतांशुनिचुम्बनेच्छानुभूतयेऽङ्के स्वयमुन्नतेच्छां ॥५२
पयोमुचः स्पर्शकृतेति मन्ये कलप्रवालेन कुलीनकन्ये ।
तदेतदागोऽत्र विशोधयामि समर्प्य सन्मौलिमणिं नमामि ॥५३

दृष्ट्वापि दृष्टा मुहुरुत्सवेन यालिङ्गितालिङ्ग्यभृशं धवेन ।
अचुम्बिवाला परिचुम्बितापि सा नूतनातृप्तिरनूतनापि ॥५४
ओस्साहृताऽनेन किलेति कृत्वा ममेभकुम्भस्य तदेकसत्वा ।
विमर्दयामास कुचाङ्कमस्याः स कामरामा सुषुमैकमघ्याः ॥५५
न सा कृशाङ्गी विजगाह सम्यक्प्रियस्य वक्षः परिणाहरम्यं ।
स्पृष्टुं भवानुच्चकुचं सुकेश्याः शशाक किं तत्परिरम्भणेऽस्याः ५६
वारा यथारात्प्रतिरोमकूपमपूरिवारापि तथापि भूपः ।
नवारितामाप पुनीतकेश्या दत्वा दृशं कौतुकतोङ्ककेऽस्याः ॥५७
कृष्टेंशुके गूढमुरो भुजाभ्यां स्रस्तेन्तरीये वृतजानु नाभ्यां ।
बद्धे व्रणं नेतरितन्प्रतीपकर्णोत्पलेनास्तमितः प्रदीपः ॥५८
हृतप्रदीपेऽपि मयास्ति पीततमा निशा किं खलु सम्मतीतः ।
वालेति साश्चर्यसिता न नेतुरदादृशं मन्मणिमौलये तु ॥५९
न्यधात्मनो मूर्धमणौ स्वकर्णान्किञ्जं च मन्कतुं मिषात्तवर्णा ।
भूमण्डलेऽस्मिन्मणिकुण्डले तु ममुद्धरन्ती ग्रुनिदानहन्तृ ॥६०
चरन्नरं प्रेमिकरः प्रतीत्य नाभिकूपे पतितो गभीरे ।
काञ्चीगुणं प्राप्य पुनः स नाम जवेन तन्व्या जघनं जगाम ॥६१
प्रियाश्रितैः प्रागतुषन्नरेन्द्र आभूषणौघैः परिणामकेन्द्रः ।
तदा तदङ्गे व्रणविघ्नकृद्भ्यस्तेभ्यो विरक्तोऽपि विकारभृद्भ्यः ६२
तयोस्तदानीमुभयोश्च दन्तक्षतप्रभृत्यप्यभजत्पदत्वं ।
तथा यथा काल्पितकोलकादिशाकेऽर्पितं नान्वयते कटुत्वं ॥६३
सुकण्ठकम्बुर्यदपूरितेन निरस्य लज्जायवनीं स्वमङ्ग ।
स्वेदोदपुष्पं सुदृशः मदङ्गे रतिः स्वयं मञ्जु ननर्त रङ्गे ॥६४

सुमेपुरूच्चैम्तनशैलमन्वाम्थितो यदासीदनुकर्णधन्वा ।
परागरङ्ग यत्रमिति श्रमाम्भोऽनयोर्जयद्वीरभुवोत्रपाम्भो ॥६५
ननूदरिन्वन्तनुमध्यमेनन्किं मुष्टि मेवाह्यमपीतिमेतत् ।
शतच्छदोदारकरम्य नीविं निराचकारेति मिषात् स जीवी ॥६६
पुरारुणादुगाढमथाद्दढेन करेण नीविं च न नेत्यनेन ।
पदानुवादेन रते रसाक्षिण्यभूदिवानन्दनिमीलिताक्षी ॥६७
वलित्रयोपामितविग्रहाय करद्वयी चापलमाप सा यत् ।
समेखलं किन्तु लभे तृतीयं सुदीर्घसूत्रं पुनरन्तरीयं ॥६८
स मन्तरीयोद्भिदि सम्पतन्ती त्रपापगायां स्मरवैजयन्ती ।
प्रसङ्गतः मङ्गतकण्टकत्वादभूदिदानीमुपलब्धसत्वा ॥६९
सुलोचनासोमसुतावितम्तु रतिम्मरो यत्प्रतिपत्तवस्तु ।
अभूत्प्रतिस्पर्द्धितयेव रंगभूमाविनः स्फूर्तिकरः प्रसङ्गः ॥७०
पत्यौ परारंभपरं भिजातमानन्दसन्दोहमिहाभ्युपातं ।
अमं रमन्तः परिमायितुं द्रागियं च कम्र्यं किल हर्परुन्द्रा ॥७१
नरं हरत्यंशुकमाततान कोदण्डकं कर्णपयोभुदा न ।
नीव्यांकरं कुर्वति सन्ददाना स्मरं सुभास्त्रं किमिवाह मानान्॥७२
शास्तारमाप्त्वानुनयन्तमस्मादिगम्बरत्वं समगादकस्मात् ।
आनन्दसन्दोहपदैकभूवन्नसान्वभूद्यन्किमतो बभूव ॥७३
एकस्य मुक्तावलिरेव सारं बभूव भूषाच्युतहारचारं ।
च्छायाच्छलेन श्रमवाः प्रसारहृद्यन्यदीयेऽपि तयोरुदारं ॥७४
मिथस्तयोरुज्वलबाहुवल्लिमतल्लिकालिंगनमण्डली या ।
हेमाब्जिनीवालमृणालजन्मा पाशो रतीशस्य स एव जीयात् ॥७५

योग्येषु भोग्येष्वपि सम्प्रतीकेष्वन्येषु संप्रीतिमताजनीके ।
रुचिर्हि सर्वप्रथमाधरं तु माधुर्यमत्रात्र समस्तु हेतुः ॥७६
सपद्ममादष्टवति प्रवालोपमं तु नेतर्यधरं त्रपालोः ।
अकूजि सम्यग्वलयाकुलेन ससाध्वसेनेव पुनः शयेन ॥७७
प्राप्योपहारं कमितुः करन्तु तन्व्याः प्रसन्नादुरसोऽयतन्तु ।
मुक्तावलीहास्यपरम्परा वा पपात तावद्विशदस्वभावा ॥७८
वधूरसः स्वामिकरप्रचारमवाप्य सद्यो विजहार हारः ।
स्वेदोदबिन्दूच्छलतोऽत्र मुक्ता माला विशालापि बभूव युक्ता ॥७९
दृढं च यूनः करचारमाप्त्वाप्यपत्रतावापि किलाकुलेन ।
कुण्ठात्मकोरः कठिनेन तन्व्यास्तथापि नाना मिमनाक् चेन ॥८०
अकारि सच्छिल्पकृतः स्वराग्रैर्नखैर्विसुग्नैः कथमप्युदारं ।
स्वेदोदसिञ्जन्मृदुभिः पदं दोर्मूले शिलोत्तानतिभे सदन्दोः ॥८१
आवर्तवत्यां वलिनिम्नगायां मध्यं गतः पीनपयोधरायाः ।
समन्दुकूलं स समच्छदं वं चकार वाराकरधारमेव ॥८२
करस्य संहर्षधरस्य नाभ्यामाकर्षतो वस्त्रमदः कराभ्याम् ।
विरोद्धु मेतां कलिमप्रदृश्यां काञ्च्या शिशिञ्जे वलयैश्च तस्याः॥८३
दीर्घाङ्गुलिः संगवतो नृशद्रः करोऽतिरिक्तोऽप्युदरं दरिद्रे ।
विसंकटं श्रोणितटं तदर्थवत्याः समाप्तुं किमभून्समर्थः ॥८४
निलेतुमन्तस्थितरंतरस्याभिवाञ्छतः श्रीमिथुनस्य यस्स्यात् ।
विरोधहेतुस्तनकप्रियोरः समुद्भवः स्पष्टतया कठोरः ॥८५
दत्तोथ कचागुणतत्परेण पीनोरुकस्तम्भसितः करेण ।
परामृशन्प्रेमयुजो रराज विमोचयन्त्या मदनेभराजम् ॥८६

प्रथान्मजन्मानमपेन्य दैवसम्वेदकः श्रीसुदशस्तदेव ।
रदच्छदे स परिणामसर्गं लिलेख दन्तैर्वरमष्टवर्गम् ॥८७
कुचोपपीडं परिमृष्टमिष्टजनेन तन्व्या यदुरोविशिष्टं ।
स्वतः सपत्न्या हृदयं विभिन्नमितोमुतः पर्वत एव किन्न ॥८८
पृष्टे पुनः कञ्चुकमुक्तये तु ग्रहिण्यनी पाणिमपि स्वनेतुः ।
मनोमृगं हन्तुमभान्सुरोपा तृणाङ्कुरं कृष्टवतीव भो सा ॥८६
प्रत्युक्तवान्नाहमिनः स्मरामि यतो नरवात्र विभासि नामि ।
सम्वद्गतामति करो यथा मे स्तनोऽप्यमुक्तस्तकिन्नरामे (?)॥ ६०
विलासवन्त्या उदितावकस्मात्पयोधरौ श्रीकलशाविवास्मात् ।
वितेनतुर्मङ्गलमुद्यनस्य जगद्विजेतुं मदनस्य तस्य ॥६१
बलादुपालभ्य मुखं प्रबन्धकर्तर्यथो चुम्बति नीविबन्धः ।
सुमेषुचापभ्रुव एवमापाङ्कयेव सद्यः शिथिलत्वमाप ॥६२
राज्याभिषेकाम्बुघटौ स्मरस्य निधानकुम्भाविव यौवनस्य ।
रतेरिनाक्रीडधरौ घनेनाम्युद्घाटितौ स्वामिनर्का जवेन ॥६३
स्तनौ सुरोमाञ्चनयातपानौ करौ स्फुरद्धस्तनलौ च दीनौ ।
कुतोऽत्र पयोप्तिमगच्छतां तौ ननभ्रुवश्चावनिपस्य भान्तौ ॥६४
अपत्यभावान च रोमराजीतो जागरिन्वन्नतमित्यभाजि ।
तयाथ मुक्ताफलताप्यधारि समुत्थघर्माम्बुलवप्रकारिः ॥६५
हरत्यधीशे वसनं कटीतः ह्री यातु विश्लेषविरोधिनीतः ।
स्मिताम्बुभिः सिक्तमुरोजदेश बिम्बं विनम्राननया तदेव ॥६६
स्वमन्तरार्द्रत्वमुताह सम्यगनारतप्रेमरसैकगम्यम् ।
वपुर्दृढाश्लेषिणि यूनि वासः क्नोपं पयोमुञ्चदनंगभासः ॥६७

शरीरमेतद्घनसारविन्दोः समेत्य सद्व्याञ्जनसत्त्वमिन्दोः ।
तुल्याननाया अमृतस्य धारापिगल्यजाता द्वितयीव मारात् ॥९८

चित्तेशचन्द्रस्य करोपलम्भे आनन्दसिन्धुर्द्रुतमुज्जजृम्भे ।
बहिर्बभूवाब्जदृशां सदेवं स्वेदापदेशादुदकं नदेव ॥९९

स्तनौ वराङ्गं च परीच्छताहमुत्सृष्टमीशेन रुपैत्युताह ।
विलग्नमम्भोजदृशोत्र तेन भ्रूभङ्गमाप्त्वापवलिच्छलेन ॥१००

महाशये कूजति कण्ठकम्बौ कांच्यां विपञ्च्यामपि स क्कणन्त्यां ।
लासं गुरुस्तं भरतोनितम्बश्चकार चारुस्मरवैजयन्त्यां ॥१०१

भ्रूगण्डतुण्डाधरबाहुदण्डावलग्नकुण्डादिनिचुम्बनेन ।
सता रतिं क्रुद्धवधूनिषिद्धां कृतोचितिः सान्त्वयितुं श्रयेन ॥१०२

अनादिरूपः सुदृगित्यनेन ह्यनन्तरूपत्वमितं जयेन ।
अनाद्यनन्ता स्मरति क्रियास्ति तयोरनङ्गोक्तपथप्रशस्तिः ॥१०३

वामा न वामापि यथोत्तरं सारक्तोऽभवच्छीह रितोऽपि वंशात् ।
पीतो ह्यपीतो मधुराभिराभिः कषायलः कामधुरः क्रियाभिः १०४

शाटीमिव बहुगुणां रतिं तु ततो निशायामप्यधिगन्तुः ।
संकुचतातिशयेनानापद्ध्रीणा स्मरश्रीणः समवाप ॥१०५

सद्यस्तनस्तबकभारमहोदयेन,
पुष्टापि सज्जघनमूलशिलोच्चयेन ।
जानात्र संकलितरूपगतेन कामा,
रामात्रिभूचितविहारवनानि वामा ॥१०६

सुरतसमुद्राद् हृदयामत्र खलु शर्मवारिनिभरणं ।
अशमित्यर्थान्मुदृशां समभाद्गद्गदगिरोद्धरणं ॥१०७

सुरनरङ्गिणि उत्कलिकावनीतरणिरद्य न विद्यत इत्यतः ।
पृथुलकुम्भयुगं हृदि सन्दधद् घनरसस्य स पारमुपागतः ॥१०८
स्मराध्वरे नर्पितमिष्टमश्वकं समर्पितप्रीति हि देव पश्चकं ।
विभूषिभूराभरणैरिहाधिकाप्यधारि निस्वेदपदात्तदाशिका ॥१०९
नेपावेगं तावकं सम्विमोढुं शक्ता नैनां खेदयेतीहवोढुः ।
कर्णोपान्ते रत्युदात्तस्य गत्वा प्राहोढाया नूपुरं नाम सत्वात् ॥११०
स्वाद्यं मृदुलमध्यायाभान्तमास्येन्दुमश्नतः ।
सत्मुखं जनमन्वं तु सुलभं समभूदतः ॥१११
अंचलं च यदा कर्तुं कामोभूत्तस्य वारकः ।
सुवर्णघटकन्देनोरस्तस्या गुरुनामगात् ॥११२
स कामादावथ क्षान्तां समुपेत्य तदन्वयं ।
अन्ततो वंचितं कृत्वा रङ्गतन्त्वमितोऽभवत् ॥११३
यथा सदैवास्य कथासुवर्षासौदामिनी साप्यभवत्सहर्षा ।
यदापि सा कल्पतला प्रकर्पं तदंघ्रिपोप्यम्बरमाचकर्षः ॥११४
तां माननीयां समयन्तमापः स्वभावतः सानुनयत्वमाप ।
रूपस्थली सा पुरपोऽत्र जातुचिदूनभावान्न वपुस्तदा तु ॥११५
विधुर्यदाकामधुरानदीनस्वरूपतामाप तदाकुलीनः ।
कलान्वया चेत्पृथुरोमभावात्सासीत्समुद्रो मुदितस्तदा वा ॥११६
उदयन्तं सरोमध्यमन्यजेनान्वितं श्रयन् ।
तृष्णावानेव सोप्यासीदपि कञ्जमुखो भवन् ॥११७
अधरं मधुरं शश्वद्रमणीकं समाश्रयन् ॥
समन्तात्पवनोप्यासीदपिपुण्यजनेश्वरः ॥११८

आननेनारविन्देन शर्वरी सोन्वभून्मृदे ।
सदामलक्षणं वाला तद्वक्षस्समभावयत् ॥११६

वलिसद्मोदरं नाभिजातगतं नतभ्रुवः ।
वामनोहरभावेन नरस्तावत्समध्यगात् ॥१२०

तदेकव्रतिना भानुमानितां तामपश्चिमां ।
सरोमाश्वतया गत्वा साकुशेशयताश्रिना ॥१२१

नवनीतं वपुस्तस्याः पूतपुण्यपयोभवं ।
समाराधयतो जाता सुतक्रमहिता स्थितिः ॥१२२

मुखं मुकुलमाचुम्बन् कुलीनो न ततां नयन् ।
समग्रभावतो गत्वा शान्तनामाप सुभ्रुवः ॥१२३

योपाया अधरं वरेण कलितं सद्यो दृशामीलितं,
निर्यातं रदरोचिषाब्जरुचिना हस्तेन वा रोपितं ।
एवं सन्मणिनिर्भिन्नैश्च वलयैराक्रन्दितं वेगतः,
सन्त्यन्यव्यसनातुरा हि भुवने ये साधवस्ते पुनः ॥१२४

रतान्ते सा भूयो दशनवसनं प्रोञ्छितवती,
विलोलैर्नेत्रान्तैः शयकिशलये नोज्ज्वलद्युतिः ।
विहस्यैवं रेजे नरलितदृशा तत्परिगतिः,
मुहुर्वक्त्रं पत्युः शिथिलसकलाङ्गीक्षितवती ॥१२५

रत्यन्तं गत्वाप्यददाने याचन्त्या वसनं वहुमाने ।
सरोपकुटिलं सम्पश्यन्त्या रुचिरकचिरनाथवा हसन्त्याः ॥१२६

चापलमहो मृदुदृशः कलितं जघनेऽनपराधिनि तत्पतितं ।
तरलेनापाङ्गेनविचलितास्वीचक्रे घणपरमोक्षनामिनः ॥१२७

पतिनामलमेखले स्त्रिया पृथुले श्रोणितलेऽन्वभावि या ।
नखमण्डलसन्ततिर्हि यत्परितोषाप च सप्तकीश्रियं ॥१२८

पुष्पवृष्टिरिव पुष्पधनुमना स्वयमुन्नत उरोज आशु कृता ।
स्मरमंगरे सुकोमलवपुषः श्रमवारितनीरतिकीर्तिमुपः ॥१२९

नयनन्तु निरञ्जनं परं श्रुतिसंसेवनहेतुनेत्यरं ।
किमु मुक्तिमितेन्दिराजितः कवरीस्नेहसमान्वितभितः(?) १३०

निस्तिलकं गोधिकमधुरञ्चापयावकं चामरप्रपञ्चा ।
वेणीश्रेणीमुदामियन्नूरोजे स्वेदजललवाः सन्तु ॥१३१

अनुरागवतां विरागिणामियमेकापि विभवरी नु मा ।
रजनीसुरतानुपङ्क्तिणामिनमेपामभवत्तमस्विनी ॥१३२

इतरेतरमञ्जुनां सुखि-त्वान्नयनेष्वानिशमेव पूरयित्वा ।
भरितानि च तानि सम्वृतानि मिथुनेनेह तकेन कोमलानि ॥१३३

सुतनोस्तनमण्डले शयं मृदुले गण्डतले मुखं नयन् ।
निजजानुमिहानुजानु स स्वपिति स्मेति सुखेन वा युवा ॥१३४

मुदितनदननीपे नाभिकायाः समीपे,
समितनिखिलदीपे कामदेवान्तरीपे ।
प्रचलदलसहस्तं योद्ध रात्रावनन्यः,
स्म लसति वनितायाः सार्द्ध निद्रो स्म धन्यः ॥१३५

अनङ्गसौख्याय सदङ्गरम्या सोच्चैस्तना नम्रमुखीति रम्या ।
विभ्राजते स्माविकृतस्मररूपानुमाननीया महिषीति भूयात् ॥१३६

सानुनयाधिगमा महिला सा मणितत्वार्थमिता मृदुहासा ।
बहुलोहमयः पार्श्वमुपेतः काञ्चनरुचिं गतः स तथेतः ॥१३७

पीता सुरोचनापि जयेन नीतानुरागमप्युत तेन ।
हरिताश्रमेण यात्र रमेदं धवलत्वं स्वात्मनो विवेद ॥१३८

गोरी सम्प्रति साशु भारती राजते स्म खलु या रमा सती ।
हरितवसनमधिगम्य समस्यां स्मरति च पुरुपोत्तमेत्र तस्याः ॥१३६

आसीत्तु वामा पुनरत्र रामा धर्माम्बुयानाप्युतकम्पकामा ।
भियेव वा कण्टकिताङ्गसाराथ सा ततः सीत्करणाधिकारा ॥१४०

समाप्युरोजेन खलक्षणापि वृतिर्विभो नं नखलक्षणापि ।
बालाह रोपा तव साधुता वा ममायशर्यदि साधुता वा ॥१४१

सुप्त्वा कामकलाश्रमात्कुलवधू पूर्वं प्रबुद्धापि वा,
रन्तुः श्रीसुखनिद्रितस्य ललितं दोःपाशसम्बद्धमं ।
तस्थौ निश्चलसत्तनुर्विलसतः संच्छेतुमेपाधुना,
नागच्छत्सुविचारचेष्टितमना वाञ्छैकसंभावनां ॥१४२

(सुरतनामनानामपङरचक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
अस्मिँस्ताद्विहिते निगंति दशमः सर्गाधिकांङ्क्षप्रियः,
शिष्टानां सुरतोपहारकरणः संयुक्तयुक्तक्रियः ॥१४३

इति श्री वाणीभूषण-ब्रह्मचारि-भूरामल-शास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये सप्तदशः सर्गः

अथ अष्टादशः सर्गः

श्रीयुक्तपाठक शृणुत विनोदकृत्ते सिद्धिं गतैर्हत इव द्वितयस्य वृत्ते ।
ऋद्धिं यतीन्द्रवदुपेतरि सूर्यकान्ते वृद्धिं समर्णवदते तमसि क्षपान्ते ॥१

†स्वस्तिक्रियामतति विप्रवदर्कचारं भद्रं सुगोहिवदिते कमलप्रकारे ।
स्वस्तु स्वनोद्य भवितुं जगतोऽधिकारं
सर्वत्र भाविनि किलामलताप्रसारं ॥२

सूक्तिं प्रकुर्वति शकुन्तगणैर्हतीव
युक्तिं प्रगच्छति च कोकयुगं सतीव ।
मुक्तिं समिच्छति यतीन्द्रवदब्जबन्धे
भुक्तिं गते सगुणवद्रजनीप्रबंधे ॥३

लुप्तोरुरत्ननिचये वियतीव ताते चन्द्रे तु निष्करदशामधुना प्रयाते ।
घूकेऽपकर्मनयने द्रुतमेव जाते मन्दं चरत्यभिगमाय किलेति वाते ॥
सुप्ते विजित्य जगतां त्रितयं तु कामे लुप्ते तदीयधनुषो विरवेऽतिवामे
उप्ते रथाङ्गयुगचञ्चुपुटेऽभिरामेऽहोरात्रकस्य मधुरे चरमेऽत्र यामे ॥
नन्दत्वमश्नति विधोर्मधुरे प्रकाशे पर्याप्तिमिच्छति चकोरकृते विलासे
सस्पन्दभावमधिगच्छति वारिजाते सर्वत्र कीर्णमकरन्दिनि वाति वाते
यत्नाच्चि चाचिपदहोपलकांशमासामेणीदृशान्तु रतिरासवृहद्विलासात्
प्राभुज्जवाद्रजनिनिर्गमनैकनाम सन्देशकस्य पटहस्य रवोऽभिरामः॥
विश्रान्तिमभ्युपगते तु विभाततूर्ये श्रीमेदिनीरमणधाम समाययुर्ये।

† सुष्ठु अस्ति क्रिया, स्वस्तिवाचनं च ।

द्युता जगुः सुमृदुमञ्जुलमत्सवाय रात्रिर्व्यतीतिति विनिवेदनकारणाय
त्वं वासुरासि मदनैकधुराशिकाभिर्हे देवि सेवितसुखासुखवासिकाभिः
लब्ध्वाम्बुकन्द × गुणमन्यजनाय नाम
+ मोहंकरीति तव संस्तवनं श्रयामः ॥९

एषोऽस्ति मङ्गलमयः समयः प्रभात-
स्तत्तेऽर्थिनीह वशिनः शशिनः प्रभातः ।
ऐच्छन्मुखश्रियमिवानधिकारितातः
विम्बं पलाशदलतामयतंथवाऽतः ॥१०

शाटीमिता कुसुमितामसकौ विमात-
सन्ध्याप्यवन्ध्यभवनाय सुभाविताताः ।
मुञ्च चणं खलु विचक्षणदक्तयाऽत-
स्तामीश्वरः सफलयेदिति तं कृपातः ॥११

श्राद्धे यथावनिमहेश्वरि विप्रजातः
पूर्णोदरः ससुरभिश्च विभाति वातः ।
कोकोऽपमङ्गतवरोधृतमोदकोऽतः
सन्तोषिणान्तु विनतिः कणकायनोऽतः ॥१२

कृत्स्नप्रपालननिमित्तमिहाङ्घ्रिमातु-
स्त्वत्तोद्यतस्य तु परिन्यजनं प्रयातु ।
अभ्यागतो रविरुपात्तकरप्रसारः कस्माचवापि महती दृढमुष्ठिताऽरं ॥
हे नाथ नाथ भवतो भवतोऽपि शस्यरूपस्य पश्य कथमद्य किलाशु भावः

× अमुकं दगुणं च, पद्मं कृष्णतुल्यं ।
+ माया लक्ष्म्या अहंकरी च ।

मंतृप्यते भवभृतां भवतात्समायकायस्य यस्य बहुधान्यहितप्रभावः
मंदाग्निरुग्युगभवद्दिननाथकान्तासन्दर्शितश्वयथुशार्वरमप्युपान्तात्
नेत्राण्यमूनि तिमिराख्यमथाप्यधूर्ं दोषं किलौषधिपतौ प्रतियाति दूरे
राजापि सन्मुमृदुलोकमुदास एव सन्देशमाप्तुमयते शुचिसंपदे वः ।
वत्सार्थमेति भुवि गौरवमाप्तमुक्त वारोन्त्यजस्य सहसा स्फुरणार्थमुक्त
चन्द्राश्मतः प्रचलदम्बुभरं चकोरदृग्भ्यां समाद्दतमनङ्गसुरूपचौर ।
कोकद्वयोक्तहृदयस्य तथैव वह्निः
स्माप्नोति किन्नरविकान्तमणिः सदह्नि ॥१७

निर्यातु जातु न तमोप्यपराधकारि स्रागभ्युदेति भगवन्स तमोपहारि ।
इत्यर्गलायितमुदारविचारतल्या चक्राङ्गनाम मिथुनेन न किं जगत्यां॥
एणीदृशां रतिरसप्रसरोपभुक्तैः समृष्टपत्रततिभिः शुचिभिः समुक्तैः ।
गण्डैस्तकैः प्रहसितः सकलङ्कराशि-
र्निर्जीर्णकोहलफलच्छविरिम्बमासीत् ॥१६

तां पुष्पिणीव्रततिमभ्युपगम्य सम्यक्
शुद्धेन तेन पयसाप्लवनं वरं यः ।
सम्प्राप्तवान्नपुनरप्युपसर्ग एप
स्यान्मन्दमित्थमनिलोव्यचर(श्चरति)न्प्रगेसः ॥२०

किश्चाहतः स्तनतटौ निपतन् विलग्ने
योपाजनस्य परिगर्तितनाभिदघ्ने ।
रुद्धो नितम्बशिखरैरिति सम्प्रबुद्धः
मंदं प्रयाति पवनः स पुनस्तु शुद्धः ॥२१

सम्पल्लवं कविरिवाब्जततिः प्रभाते
सम्पल्लवं प्रतिरवैर्लभते यथा ते ।
वाचालतां निशि जगाम तमश्चमूक-
स्तस्मादुलूकतनया कतमश्चमूकः ॥२२
यद्वा यथाभिरुचिसन्तमसं निशीय-
दम्भोरुहाणि मुकुलाञ्जलिभिर्निपीय ।
नाथोद्वमन्ति तदजीर्णतयाधुनाऽर-
मेतानि निर्यदलिवृन्दपदप्रकार ॥२३
श्रीपद्मसद्ममरुताशुतयाविलुप्ता-
हंकारतो विमुखमाप्यथवोपसुप्ता ।
या सालसानुशयितव्यपदेशलेशा-
द्योपालिलिङ्ग हृदयेशनिधिं विशेषात् ॥२४
भास्वानसौ क्वचनयापितसर्वरात्रि-
रम्भोजिनीं विरहतोऽप्यतिदीनगात्रीं ।
अङ्गीकरोति किल सम्भवता रसेन
तां सानुरागकरचारकलावशेन ॥२५
अस्मत्सकाशमसकौ विधुरभ्युदेति
स्वाग्वारुणीमनुभवन्विनिपातमेति ।
प्राच्या परावृतपुनीतरदच्छदाया
यद्वास्तिकान्तिरयि नाथ घृणापरायाः ॥२६
यन्मीलितं सपदि कैरविणीभिराभिः
क्षीणत्रपास्तमितिमप्युत तारकाभिः ।

संचिन्तयन्दयितदारतयेन्दुदेवः
प्राप्नोति पाण्डुवपुरित्यधुना शुचेव ॥२७

श्रीकैरवेषु च दलैर्विनमद्भिरेवमभ्युन्नमद्भिरिव वारिरुहेषु देव ।
तं सन्दधत्सुपरिणाममपूर्णमार-
न्तुल्यत्वमश्नुति मिलिन्द इहाधिकारात् ॥२८

आदित्य + सूक्तविपदोपरतप्रकारं
हे धीश्वरा × सुरहितं सहसान्ध + कारं ॥
दृष्ट्वेव ‡नालदलसद्धसितं विभाति
शोच्या तथास्ति *कुमुदस्य तु मौनजातिः ॥२९

भीतेर्भरं तु कुलटाहृदयेऽवशिष्टं
घूकस्य लोचनयुगे तिमिरं प्रविष्टं ।
बिम्बं रवेरुदयनेन सता विशिष्टं
पश्येव मञ्जुलमहो नरनाथदिष्टं ॥३०

स्नाता सुधाकररुचां निचयैर्दिगेषा
प्राची स्वमूर्ध्नि खलु हिङ्गुललेखलेशा ।
भास्वत्सुवर्णकलशं तु गृहीतुकामा
त्वन्मङ्गलाय परिभाति विभो ललामा ॥३१

यात्येकतोऽपि तु कुतोऽपि विरज्य राज-
न्यात्माधिपेऽपरदिशां प्रतियाति राजन् ।

+ सूर्योदयसूचकपक्षिरवविशेषं, पक्षे देवकृतविपत्तिविशेषं ।
× निष्प्राणं, पक्षेऽसुराणां हितकरं । + तमः, पक्षे तन्नामदैत्यं ।
‡ नाल-दल-सद्धसितं, पक्षे नारद-लसद्-हसितं ।
* कैरवस्य, पक्षे तन्नामदैत्यस्य ।

सत्पुष्पतल्पमसकौ रजनी दलित्वा
रोषारुणा विकृतवाम्भरतश्चलित्वा ॥३२
* सद्वृत्तिरञ्जति निशा शनकैः प्रहाणि
किं श्रूयते पुनरुलूक×सुतस्य वाणी ।
कश्चिन्नभो † दय इहास्ति विचारभावा
च्छ्रीवर्द्धमानतरणे रुचिताग्रभावा ॥३३
चन्द्रोऽस्पृशत्कमलिनीमहसत्कमोदि-
न्येतद्द्वयेऽरुणदृगर्यमराड्विनोदिन् ।
स्नागम्युदेति किल तेन कुमुद्वतीयं-
मौनिन्यभूच्छशभृदेति च शोचनीयं ॥३४
रात्रीमुचेऽमलरुचे विरहं विहाय
सन्तमतां द्युमणिसन्प्रणये तथा यत् ।
श्रीचक्रवाकमिथुनं मिलतीदमद्य
राजन्मुदश्रुभरसंस्नपनं प्रपद्य ॥३५
तारापतिर्हि नलिनीर्मलिनीर्विधाय
तत्प्रीतिदेऽभ्युदयतीह न सम्विधायत् ।
तारा निगुह्य सहसास्तगिरिं प्रयाता
जिह्रेति तत्करगता कति वीक्ष्य वाताः ॥३६
निस्नेहजीवनतयापि तु दीपकस्य
संशोच्यतामुपगतास्ति दशा प्रशस्य ।

* तारास्थितिर्नित्यता च ।
× घूकबालस्य कपिलस्य च । † नक्षत्रोदयः, पक्षे भो अदयः ।

संघूर्ण्यमानशिरसः ×पलितप्रभस्य
यद्वन्मनुष्यवपुषो जरसान्वितस्य ॥३७

रात्रावहो पुलकितानिह सन्ति भानि
स्माम्भोरुहाणि किल मुद्रणमाश्रितानि ।
वार्धिन्दुभावमुपगम्य दलेषु तेषां
भिक्षामटन्ति परितो दिवसप्रवेशात् ॥३८

उच्चैस्तनोदयगिरौ करकृत्तु पूषा शस्तानुरागभृदहो वियदेकभूषा।
विघ्नः स्फुरत्तरनखक्षतसम्विधानं
प्राच्या उरस्यवनिराडिति शोणिमानं ॥३९

संसूयते तनयरत्नमपश्चिमातः
संश्रूयते कलकलो †द्विजजातिजातः ।
पाथोरुहोदरदरादलिनो विमुक्ता
आमोदपूर्णमखिलं जगदेतदुक्तात् ॥४०

यत्नोऽमृता + श्रमपरेण च खेन तात
ख्यात प्रभात हविरासन एष जातः ।
भिन्ने भवत्यमृतधामनि नाम शुम्भ--
त्स्वर्णस्य संकलितुमत्र नवीनकुम्भं ॥४१

संहृत्य ❁ वैरजनिमित्यथ वीतराग--
वृत्तिं गतश्चरति सत्स्वभिवृद्धभागः ।

× क्षणिकरुचेः, पक्षे श्वेतशिरसः । † पक्षिणां विप्राणां च ।
+ स्वर्गं, पक्षे दुग्धधाम । ❁ वै रजनिं, पक्षे वैरोत्पत्तिं ।

योगीयते सुहृजलम्बकरः सुवृत्त–
भावेनभानुरपि भो जगदेकवृत्त ॥४२
वीरोदिते समुदितैरिति सम्वदामः कल्यप्रभाववशतः प्रतिबोध नाम
सम्प्रापितं च मनुजैश्चतुराश्रमित्वं
एकान्तवादविनिवृत्तितयासिवित्त्वं ॥४३
कञ्जोच्चयेन विकचत्वमवापि तात सुश्रावकत्वमिति पक्षिवरैश्वथातः
भानोः करग्रहभृतो भुवि धामनिष्ठा-
भैराश्रिताः पुनरिहाध्ययनप्रतिष्ठा ॥४४
भानुस्तपोधन इवायमिहाभ्युदेति निःशर्वरीत्वमपि यज्जगतस्तथेति
कोकः प्रसिद्धविभवो गृहिणीमुपेतः
कौपीनभावमयते वनवासिचेतः ॥४५
आमत्रणार्थमिति चन्द्रमसो रसेन
शंखोऽसकौ ध्वनति सोदरतावशेन ।
औदास्यतो जगदतीत्य विचित्रवस्तु--
गेहाय मानमिव निर्व्रजतोऽन्ततस्तु ॥४६
नक्षत्ररीतिरधुना नभसो न भाति
गुप्तोऽप्युलूकतनयस्य तथा सजातिः ।
विप्राप्तसम्वदनतो नरपामरत्वं केषाञ्चिदुद्धरति वर्णविधेर्महत्त्वम् ।४७
यस्मादितः प्रलयमेति विभावरीति-
र्विश्वाश्रयिन्मृदुलताश्रयणान्यपीति ।
सद्भावनाविजयिनीं खलतां हसन्ति
तान्युत्तमानि किल कौतुकभाववन्ति ॥४८

एकत्वनामकवितर्कभुवा विचार-
भावेन कश्चिदथ भो परमाधिकार।
प्रोद्भिद्य मंक्षु कमलं लभते विकाश-
श्चारित्रभाववशवर्तितयाधुना सः ॥४६

लोकोऽन्वितो धृतविभावसुखश्रियासी-
त्सज्जो विधावुदितसत्कृतसम्पदाशीः ।
सद्यो विसर्गपरिणाममुपेत्य याव-
द्विभ्राजतेऽयि नृप केवलभृत्स तावत् ॥५०

श्रीभारतोक्तविभवो धृतराष्ट्र एष
वीरञ्जनाय खलु कौरवमीक्षते सः ।
कृष्णोऽलिरत्र कलिकालसदुत्सवाय
विघ्नोऽथ पद्ममपि सौरभविस्मयाय ॥५१

न क्वापि भाति अधुना द्विजराजवंशः
सुप्तोऽभिबाहुजसमाजसतावतंसः ।
कस्ते तुलाधर उदेति जनेषु वा यः
सम्विप्लवोऽत्र बहुधान्यसमीक्षणाय ॥५२

नक्षत्रता क्वचिदहो गुणिराडुपेता
पद्मे श्रियः समुदिता प्रभवन्ति एताः ।
कल्याख्य एष समयो भवदीक्षणीयः
जल्पे द्विजातिरुचितन्तु किलानणीयः ॥५३

नानाप्रसक्तिरिति यज्जडजेषु तेन रक्ताम्बरत्वमितमर्कमहोदयेन ।
सर्वैर्द्विजैरधिकृता कणभक्ष्यशिक्षा
सम्पादिता च तमसा सुगतैकदीक्षा ॥५४

दृष्ट्वा विवादमिह शाखिपदेषु नाना
भिन्नां स्थितिं स्मृतिभवाधिगतेर्निदानात् ।
तां पङ्कजातकलितामिति हासवृत्ति-
मस्त्येवनिर्वृ त्तिपथेऽथ सतां प्रवृत्तिः ॥५५
कूटस्थतां खरमरीचिरुपैति तात
भृष्टाध्वरो भवति वा द्विजराडिहातः ।
स्याद्वादमागुदितपिच्छगणस्य वृत्तिः
सा सौगताय नियता क्षणदा प्रवृत्तिः ॥५६
नो नक्तमस्ति न दिनं न तमः प्रकाशः
नैवाथ भानुभवनं न च भानुभासः ।
इत्यर्हतः खलु चतुर्थवचोविलास-
सन्देशकेमुममये किल कल्पभासः ॥५७
प्राक्शैलमेत्य विचरत्ययमंशुमाली-
त्थंतत्पदप्रचलितात्र जगंरिकाली ।
व्योम्नीक्षते नरवराथ तदेकभागः
मंगत्य भो जलरुहामधुना परागः ॥५८
सत्यार्थतां व्रजति यत्तु नभः स्वरूपं
शुष्यच्छुचाविव देरमृतस्य रूपं (?) ।
अस्माकमद्य नरनाथ न गौरवर्णा
सम्भाव्यतेऽथ जगतीन्यपि गौरवर्णा ॥५६
निर्मूलतां व्रजति भो क्षणदाप्रतीति-
र्दीपेषु नो भवति कापिलसत्प्रणीतिः ।

स्याद्वाद एव विभवः प्रतिपल्लवं सः
भात्यर्हतो दिनकरस्य यथावदंशः ॥६०
नैकान्तयुग्भवतु देहभृतोधिकारः
स्याद्वादतत्परतया नियतो विचारः ।
नैवाप्युलूकतनयप्रभृतेः प्रचारः
इत्यर्हतः समुदयस्तपनस्य सारः ॥६१
भानोः सुदर्शनमिहाप्यभवद्विवेकः
कोकस्य चारुचरणं मरुतस्तवेकः ।
शेषो विशेष इह मुक्तनिबन्धनस्य
श्रीसद्मनो भवतु भो जगतां नमस्य ॥६२
नैर्मल्यमेति किल धौतमिवाम्बरन्तु
स्नाता इवात्र सकला हरितो भवन्तु ।
प्राग्भूभृतस्तिलकवद्रविराविभाति
चन्द्रस्तु चोरवदुदास इतः प्रयाति ॥६३
सद्वारिशौक्तिकततिं स्वयमेव तेषु
सम्बिभ्रती कमलिनी कलपल्लवेषु ।
उद्घाटितस्वनयमा निजवल्लभस्या-
सौ स्वागतार्थमभिभाति हितैकवश्या ॥६४
उच्चैस्तनं स्पृशति कुड्मलमर्कदेव—
स्तत्रत्य केशरकृतोपशरीरमेव ।
अस्यापहृत्य जयिनः कललोहितत्वं
श्रीवारिजातविततेः समुदायसत्वम् ॥६५

भो भो प्रशस्तभविसम्भविसम्पदिभ्य
प्राच्यम्बरं लसति लोहितमब्जनीभ्यः ।
सद्योऽलिमुद्धरति शल्यमिवांशुमाली
कारुण्यपूर्णमिव पूत्कुरुते द्विजाली ॥६६

शीर्षे हिमांशुमुलुकं प्रतिरोमभागं
द्यौमूर्छितप्यनिशिचिन्त्यमिताप्यनागः ।
सिंदूरपूररुचिरं सुचिरप्रभाव—
मेषाधुना नृवरकम्बलमेति तावत् ॥६७

पुण्याहवाचनपरा समुदर्कसारापुण्याहवाचनपरासमुदर्कसारा ।
आशासिता सुरभिता नवकौतुकेन
वाशासितासुरभितानवकौतुकेन ॥६८

सम्मुद्रणं सह समेत्य समेन राज्ञा
भास्वन्तमाप्य च मणिं हसतीह भाग्यात् ।
आमोदसम्भृतभृदेष किलाब्जभूपः
सम्पश्य शस्यमनुजेष्ववंतसरूप ॥६९

मोदोऽभवत्सपदि हे नरनाथ चक्र—
वर्तीति पद्मनिधिरुल्लसितोऽन्त्यवक्रः ।
बिम्बं रवेरिह सुदर्शनमेत्य तावत्
पश्यन्ति सज्जनगणाः समयप्रभावं ॥७०

रात्र्यन्तकोऽभ्युदयते त्वमिव प्रतापी
येन प्रसक्तिरधुना सुमनोभिरापि ।
ये येऽप्युलूकतनया वनमाश्रयन्ति
त्वद्वैरिणश्च तिमिरेण धृता भवन्ति ॥७१

सूर्याख्यया प्रतिभटः स्फुटकेशरालीः
पूर्वोक्तसानुमतिसानुमतिः सुधालिन् ।
शब्दत्यनेन रणकर्मणि ताम्रचूलः
स्पर्द्धयङ्कुशत्वविषये भवतोनुकूलः ॥७२
वृत्रघ्नतामनुभवन्सुमनोनुशास्ता
हे देवदेवपतिवत्सदृशस्तवास्ताम् ।
सम्यङ्निशान्तसमवायधरो दिनेश-
श्चित्रादिकोल्कलितसंग्रहवान्स एणः ॥७३
सत्सङ्गमाप करणो द्विजराड्विरोधि
सर्वत्र विभ्रमपरो जडजानुरोधी ।
स्यूनोऽकुलीन इव गोलकरूपकत्वाद्
भो भूमिपाल तिमिलक्षणभक्षकत्वात् ॥७४
यः पङ्कजातपरिकृच्च पुनः सुवृत्तः
राजाध्वरोधि अपि सत्पथसंप्रवृत्तः ।
एवं विरुद्धभवनोप्यविरोधकर्ता
हे विश्वभूषण विभाति दिनस्य भर्ता ॥७५
यः कश्यपान्वयतयामधुलिढि्हताय
विक्षिप्तरूपतरुणाङ्कितसम्प्रदायः ।
पीत्वैष फुल्लदरविन्दगमात्महस्तैः
सारं सहस्रकिरणोस्ति मदाश्रितस्तैः ॥७६
भृष्टोडुमौक्तिकवदुच्चलरक्तरीति-
ध्वान्तेभकुम्भमिदितो रविकेशरीति ।

सम्भावयाशुकुशलोःकलितां महीन्त-
देशोऽस्ति पालितपृषद्द्विजराट् सचिन्तः ॥७७
अश्नन्निवोडुकुवलौघकुलं नमस्य
हंसोऽयमेति तटमम्बरमानसस्य ।
यत्पादपातनवशेन तमालनीलं
चैतस्य सन्तमसशैवलमस्तशोतं ॥७८
आकाशनीरनिकरे मकरः कुलीरः
मीनोऽब्ज इत्यनुमतानि पदानि धीर ।
यत्रानिमेषनिवहो विचरत्यपीति
तस्यैव विद्रुमकृतेयमुषःप्रतीतिः ॥७९
मञ्जुस्वराज्यपरिणामसमर्थिका ते
संभावितक्रमहिता लसतु प्रभाते ।
सूत्रप्रचालनतयोचितदण्डनीतिः
सम्यग्महोदधिपणामुघटप्रणीतिः ॥८०
सत्कीर्तिरश्नुति किलाभ्युदयं सुभासः
स्थानं विनारिमृदुवल्लभराट् तथा सः ।
याति प्रसन्नमुखतां खलु पद्मराजः
निर्याति साम्प्रतमितः सितरुक् समाजः ॥८१
गान्धीरुपः प्रहर एत्यमृतक्रमाय सत्सूतनेहरुचयो बृहदुत्सवाय ।
राजेन्द्रराष्ट्रपरिरक्षणकृत्तवायमत्राभ्युदेतु सहजेन हि सम्प्रदायः ॥
शुष्यत्तमस्थितितयामृतकूपकस्य सत्ताम्रचूलकरणस्य समुत्थितस्य
ख्यातिः शुचिक्षणमुताह्वयति त्वदर्थं वानेकधान्यहितसंहतये समर्थं

एवं प्रभूतदलसत्स्फुरणं गतस्य स्पर्द्धिं प्रयाति भुवि सौरभवस्तु तस्य
अत्रोत्पलस्य सहसा समुदर्करीतिं स्वीकुर्वतो मधुरसंप्रतिजातनीतिं
श्रीवर्धमानकमलं भुवने लसन्तं दृष्ट्वाश्वति भ्रमरवोऽध उपायनं तत्
तस्यामृतस्तुतिमयीं प्रतिपद्य हे गां लोकस्य किन्न घट एव मुदेति वेगात्
निर्दोपतामनुभवन्नुतकेवलेन प्राभातिकः समय एष नरेश तेन ।
सन्मार्गदर्शकतया विधृतोक्तिकत्वादर्हन्ति वोपकुरुताद्भुवने किल त्वां
कोकः शोकमपास्य याति दयितां लोकस्तुतां मुश्वति,
भो कल्याणनिधे विकाशकलनामोकः श्रियामश्वति ।
नोकस्माद्धियाति दोःकृतिविधिं तऽथो कलाकौशले,
ह्यो कर्तव्यकथोपदेशकृदसावर्कोऽस्तिपूर्वाचले ॥८७
दिवाकीर्तिना मार्तण्डेन रोपारुणेन हतोस्त्यनेन ।
द्विजराडिति सन्त्रस्तिमागता द्विजा अमी विलपन्ति सम्मतात् ॥
रूपाभेदेन खलु कदाचिन्नो नो हन्यादपि तिमिरारिः ।
काकाः काका वयमिति काका विचरन्त्येते विचारकारिन् ॥८८
तल्पं कल्पय केवलं संकल्पय कृतिकर्म ।
विचर विचारशिरोमणे जनताया अनुशर्म ॥९०
तस्य स्वयं प्रबुद्धस्य जिनस्येव सुरर्पयः ।
नियोगमत्रतः प्रोचुर्वन्दिनोप्यभिनन्दिनः ॥९१
मृदुतमस्तु न कचोपसंग्रहा संकुचन्ति उत स्वक्तविग्रहा ।
मन्दस्पन्दितारकाप्यधुना निरियाय क्षणदा सुरोचना ॥९२
सदहीनगुणस्थानमश्वकादभिनिर्वृत्तः ।
सदानन्दलसद्भावपूर्तये कृतवान् वहु ॥९३

एवं प्रातः चिकुरनिकरं बध्नती सालसाक्षी,
नीवीमाकुञ्चितकरशिखं लङ्घती सौख्यमाक्षी ।
सम्पश्यन्ती नखपददलं सत्कुचाग्रे त्वनूनं ।
निर्याता चेच्छयनसदनाच्चेतसो नैव यूनः ॥९४

अधरव्रणमेतस्या वीक्ष्याली समगात्स्मितं ।
पीत्वामृतहृदीशेन तच्छेपं हि समुद्रितं ॥९५

पाथेयमिव गच्छन्त्या ग्रहीतं चम्बनं तया ।
गुरोर्विरहमार्गस्य लंघनाय हृदीशितुः ॥९६

धवेनाधररागो यो वध्वा उद्भासितो निशि ।
संक्रान्त इव स प्रातः सपत्न्याः समभूद् दृशि ॥९७

जम्पत्योर्यन्निशि च गदतोश्चाश्रृणोद्गेहकीरः,
ह्रीणा गत्वा तदनुवदतः श्रीपदानान्तु तीरं ।
कर्णान्दूक्तारुणमणिकणं तस्य चञ्च्वां निधाय,
मूकत्वं तं करकफलकव्याजतः सान्निनाय ॥९८

दन्तावलीमधरशोणिमसंभृदङ्का ताम्बूलरागपरिणामधियाप्यपङ्कां
या स्म प्रमार्ष्टि मुहुराहतदर्पणापि लज्जातयालिषु तु हास्यसमर्पणायि
विधुवन्धुरं मुखमात्मनस्त्वमृतैः समुत्त्यार्काङ्कितं ।
कृत्वा करं मृदुनांशुकेन किलालकच्छविलाञ्छितं ॥१००

भासुरकपोलतलं पुनः प्रोञ्छन्त्यगुरुपत्रांकाभा ।
भावेन विस्मितकृत्स्वतोऽभादपि तदा नितरां शुभा ॥१०१

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
एषार्हद्रविसम्विकाशितपदाम्भोजातशोभावती,
यान्यष्टादशसंख्ययानुविदितं सर्गे तदीयाकृतिः ॥१०२

इति श्रीवाणीभूषण-ब्रह्मचारिभूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदये प्रभाववर्णनो नामाष्टादशमः सर्गः

अथ एकोनविंशः सर्गः

श्रीमाननुच्छिष्टभुजामिवाद्यः पूर्वं ग्रहाणामधिपोदयाद्यः ।
धरां समारब्धुमथ प्रबुद्धस्तदीयसम्पर्क इतोऽस्त्वशुद्धः ॥१

समामिलद्धस्ततलद्वयेन लेखाकृतार्द्धेन्दुसमन्वयेन ।
समीक्षिता पाण्डुशिलाजयेन तीर्थेशजन्माभिसवात्र तेन ॥२

हृदीव शुद्धे मुकुरे मुखं सः निजीयमात्मानमिवात्मशंसः ।
ददर्श संहर्षवशेन तत्रानुवृत्तिमासाद्यतमामसत्रां ॥३

एकाकि एवानुययौ भुवन्तां भूपस्समालब्धुमिवाथ गन्तां ।
मौनीभवन्योनिरवद्यव्रतानां दूरेऽपयोगप्रतिपत्तिदानात् ॥४

जवात्कृताशौचविधिः पवित्रीभूताशयत्वादधुना धरित्री ।
पस्पर्श हस्तेन सकोमलेन निजप्रियां वारिभवोज्ज्वलेन ॥५

समश्वनच्चत्रपदेर्नृपस्य तदा सदाचारभृताः प्रशस्यः ।
ग्रहीतमूर्तिः शशिनः प्रसाद आशीच्चरगाण्डूपनिरुक्तिवादः ॥६

श्रीवज्रखण्डाभरदान्वितेन सद्वर्त्ममार्गैकहितेन तेन ।
समाश्रितं मज्जनमेवमाहुः सुधांशुना चर्वित एव राहुः ॥७

मही महेन्द्रस्य तथाभवत्तत्प्रतिप्रतीकं मुहुरेव दत्तम् ।
स्नेहं स्वभावोत्थमिव प्रजाभिर्निसर्गसौहार्दवशं मताभिः ॥८

निमज्जितं तेन जलैकपूरे श्रुतश्रियां वैभवतोऽप्यदूरे ।
श्रीसर्वतोभद्रतया मनोज्ञे मलापहेऽस्मिन्कविकल्पभोग्ये ॥९

विपश्चितोऽप्यङ्गममुष्यभायाज्जल्लैस्समालिङ्गितमित्युपायात् ।
बृहद्गुणाङ्केन बभूव तूर्णमावर्जितं प्रोञ्छनकेन पूर्णं ॥१०
श्रीराजहंसैरपि सेवनीया शरिन्नभाभूच्च तनुस्तदीया ।
चन्द्रांशुभासाशुचिताम्बरेण समर्थिता पूर्णतयाऽऽदरेण ॥११
दूर्वाङ्कुरान्कीरशरीरभावसुकोमलानाप्य पुनर्यथावत् ।
स पिप्रये किन्न भुवः प्रिया यः कचानि वात्मीयरुचा शुभायाः १२
पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां समुल्लसद्वत्सलतोरुमुद्रां ।
प्रदक्षिणीकृत्य स गामनुद्राग् जगाम चैकान्तमहीमशूद्रां ॥१३
प्राणा हि नो येन नियन्त्रिताश्चेत्किं प्राणिनोऽपि स्ववशान्समश्चेत्
स तत्र यत्नं कृतवानितीव स्वदोर्द्वयाक्रान्तसमस्तजीव ॥१४
वारिक्रमे सेतुनिबन्धभाजः स्वयं गुरोरेष पुरो रराज ।
परिग्रहीताशु भविग्रहस्तु समेत्य सन्ध्यागतसारवस्तु ॥१५
श्रीशान्तिसिन्धो जगदेशबन्धो जयाहमन्धो गहनोद्यदन्धोः ।
समुद्धृतो येन समुद्धृतोऽपि कवित्वशक्तौ प्रकृतोपलोपी ॥१६
कराधरैः संव्रजतोमुदञ्च मयीप्यतां ते सुरसम्पदश्च ।
प्रवालताहो गुणधामधतुं नवालता वा द्रुमथाभिसतुं ॥१७
चेतो न मे तोषवदस्ति नेतोऽङ्कतावदाप्तुं खलु बाल्यहेतोः ।
न किन्त्वियं वाक् चलति ह्रियेव पुरस्सरं गौरवकृच्छ्रियेवः ॥१८
भोगीनसंस्थानमनागनर्ति न भोगतातोऽप्यतिदूरवर्ती ।
कुतोवताऽनन्त्यमिते तवेश शक्नोमि गन्तुं गुणसंग्रहे सः ॥१९
किमारभे साधिकतां गतो गाः सदा समायं भवतोऽनुयोगात् ।
कृत्वा समुद्धर्मनि चावगाहं न वा दशाहो मम वादशाह ॥२०

दासोऽहमर्हस्तव दर्शनेन विदात्मनः प्रान्तमितोऽस्म्यनेन ।
अनन्यतामेत्य सदर्थयोगीति संभविष्याम्यपि सोपयोगी ॥२१
भवानहं मानवनायकस्तु समाश्रयाम्यत्र तदेव वस्तु ।
निर्वाहकोऽहं शिरसास्मि येषां त्वन्निर्वेहोमुर्धभिरस्ति तेषाम्(?) २२
येनाममनित्यं भवतोऽनुयान्ति शर्माऽमरंते भवतोनुयान्ति ।
वारिस्फुरद्बुद्बुदतुल्यभासं विलोक्य लोके निखिलं विलासं ॥२३
स्वार्थे कदक्केऽङ्गिजनेऽधुना रे सर्वाधिकारे तमसोऽवतारे ॥
समीक्षमाणः परमार्थमेवमश्चित्तचौरोऽस्ति भवान् हि देव ॥२४
बिभेति कालोऽखिलभुक् महद्भ्य आश्वासनं त्वन्निकटे व्रजद्भ्यः
सिंहः कुतोऽश्नाति विधोर्मृगन्तं ताद्दर्योपकण्ठस्थमहिश्च सन्तं ॥२५
यद्यस्तु सन्ताप इतो नमस्य त्वत्पादपात्यन्तमुदाश्रमस्य ।
पीयूषपूरेण परासुतास्यान्नवाच्यतामेतु जनः सुभाप्यात् ॥२६
सम्भूतिरित्यत्र जनन्तु कन्न किन्तेन सम्पद्यपि चेद्विपन्नः ।
सम्पद्य पश्चादविपन्नभावात्संसार एषोऽन्वययुक्तया वा ॥२७
नेत्रात्मता यद्यपि पादपेषु सशूलवम्बूलमुखेषु तेषु ॥
सा पत्त्रता ते हि यतो रसालफलोदयं मादृगुपैति बालः ॥२८
हे पादपायं जड़तामुपेतस्त्वदंघ्रिसंलग्नतया तथैतः ।
दलान्वयं प्राप्य च सौमनस्यं सतां शिरोलङ्कृतयेस्त्ववश्यं ॥२९
देहेऽपि गेहे पुनरन्य एव दीपो यथा त्वन्तु मुदेकदेवः ।
छन्नाग्निवच्छन्नतयाप्रलीनभावं व्रजामो जगतीत्यहीन ॥३०
कायोऽनुगृह्णाति भवन्तमेष योऽस्मादृशां विग्रहनामशेषः ।
बढे रुपग्राहिणमस्तदीपमुपैमि वायुं महतां महीप ॥३१

गन्तुं पदाभ्यां बहुशिक्षितोऽपि माहग्जनो दुर्व्यवहारलोपिन् ।
स्खलन्यलं चेदुपघाततस्तु तदत्र किन्ते खलु दोषवस्तु ॥३२
कृत्वा कुकर्मातिमितोऽसुधीर शपेत्स पापी सदुपायकारिन् ।
वृथैव ते मार्गनिदर्शकाय कुपथ्यसेवीव चिकित्सकाय ॥३३
दुरन्तदुःखाम्बुधिमध्यपाती त्वत्पादपद्मोपजपंकतातिः ।
मलीमसात्मा महदग्रगामिन्काष्ठाश्रयेणायसवत्तरामि ॥३४
भवांस्तरंस्तारयतीतरन्तु निर्वेदकाधोमुखकुम्भतन्तुः ।
विपत्पयोधौ ब्रुडतीव माहक् यस्याश्रयन्ती विषयान्सदाहक् ॥३५
तवागमोऽमान्यगवं प्रशस्ता दशोऽप्यकारस्य वधादधस्तात् ।
अलौकिकीं वृत्तिमुदाहरामः प्रमाणिनामन्यतयेति नाम ॥३६
भवान्सुरश्चाधिकलो यतो नः स स्मानसीयो भगवन्मघोनः ।
प्रणीतयः कवासुरभा भवन्तु वयं वयामः सुमनोन्वयन्तु ॥३७
यदीयधर्मस्तव मंस्तवस्तु त्वमेव पश्यंस्तव किन्तु वस्तु ।
कदाहंत्प्रार्थयतः पिपासां स चातकस्याम्बुद इथमाशा ॥३८
न सन्ति के तेऽप्यनुरागवन्तः विरागिणीश त्वयि चास्मदन्तः ।
कर्पूरखण्डादिषु स सु सोऽरमश्नात्यहो वह्निकणांश्चकोरः ॥३९
वाञ्छत्रवेः शर्मसमेति कोकद्विषंस्तथान्ध-वमुलूकलोकः ।
निरीहतामाप्तवतोऽपि यद्वद्दहीति हऽर्हन् भवतोऽत्र तद्वत् ॥४०
दृष्टाप्यकर्णस्त्वमथान्यथाहं किलाधिका दन्तरतोऽवगाहं ।
लप्से परं द्वारि परिस्थितोऽपि श्रीम करोऽतस्तव चेत्कुतोऽपि ॥४१
भो भो भवाब्ध्यर्थमिनप्रभावः करावलम्बस्य किल प्रभावः ।
कमण्डलुर्बोधियरैकहानिस्तरन्त्यलाबूनि च वंशजानि ॥४२

यस्याङ्गपिच्छा भवताद्दतापि घनोदयोपात्तबलः कलापि ।
सर्पस्य दर्पप्रतिकृत्प्रशस्तिः समौलिमूर्धा जगतां समस्ति ॥४३
भूमावहं त्वं स्वरुदग्रभूपा किन्तेन वाकाशगतोऽपि पूपा ।
किन्नानुगृह्णाति पयोरुहन्तं स तस्य पार्श्वे क्रमते यदन्तः ॥४४
सुमानसत्त्वावतरन्तमन्तः स्थले जले वा विमलेऽथ सन्तः ।
दूरे भवन्तश्च विभो भवन्तं यंति स्तुवन्तः शशिवल्लसन्तं ॥४५
हृता शनैः स्याज्जडता न चित्रं त्वामीक्षमाणस्य तु विश्वमित्र ।
कुतोऽस्तु मोहस्तव गन्धमात्रमाजिघ्रतो हे नयसादरात्र ॥४६
मतं त्वनेकान्तमदुत्तमन्ते दृष्टेष्टयुक् सत्पुरुषा लभन्ते ।
तुच्छं परैः पुच्छमहोत्त्वरस्यावाप्त प्रभो कष्टकरं परं स्यात् ॥४७
उन्मत्तवद्यस्य मतं न चारु वृथैव तस्याध्ययनं च कारुः ।
मूलं विना स्कन्ध उतच्छदावाभिन्निस्तदस्याश्च परिच्छदा वा ॥४८
पयोनिधौ वाडवमम्बुदेऽनः शम्यां प्रदीपेऽजनमेति नेनः ।
नास्तित्वमस्तित्वगतं न लोकस्त्वदुक्तमन्तस्तमसां स शोकः ॥४९
समानभावादिह यः पदार्थः बिभर्ति वैशिष्ट्यमपीन्यपार्थ ।
चमत्तरं नेन्दुवदेव राहुं नभश्चरन्तोऽपि जनाः समाहुः ॥५०
प्राणयङ्गभावानुपलम्भतकल्पमश्नान्यहो नाथ वृथैव जल्पन् ।
पयोऽभिवाञ्छन्नमितोऽपि मातुस्तदीयविष्टां किमु याति जातु ॥५१
रसाद्यदेवामलकं कषायं तदेव रूपात्किमुना कषायं ।
सत्वादुपाख्येयमिदं द्विवाच्यं तदर्थपर्यायनया त्ववाच्यं ॥५२
गुणप्रसङ्गाद्दर्पमत्तरङ्गागङ्गा विभोऽसौ तव वागभङ्गा ।
पुनातु नातुच्छरसात्रिलोकीं वदन्यदा खिन्नतया जनोऽकीं ॥५३

प्रत्यक्षमक्षो नवको गुणेन रूपान्तरं सन्दधदप्यनेनः ।
स्वभावभागेवमिहार्थसार्थः सम्प्रत्ययोऽयं तव भो यथार्थः ॥५४
मिथोऽनुगंस्तन्तुभिरम्बरन्तु ज्ञानं नयैर्वस्तुगुणैश्चरन्तु ।
हे नाथ के नाथ महानुभावाः केषामिहाभान्तु दुराग्रहा वा ॥५५
स्वतन्त्र्यकर्तृत्वमभीच्छता वा प्रकृप्यमाणोत्तमचित्स्वभावात् ।
न्यदर्शि भो केवलवित्तयात्माखिलस्य कोऽन्यो भवतो महात्मा ५६
को नान्वियात्सर्वविदं प्रपश्यन्स्वप्ने विदूरादिपदं तदस्य ।
भ्रान्तिन्तु देशादितयैव सन्तः स्तुवन्त्यनेकान्तमतक्रमन्तः ॥५७
चिदात्मनोऽथानुभवेत्तदस्तु पर्यायमाल्यं हि यतस्तु वस्तु ।
पूर्वापरत्वेन गतागमिष्यद्भावा भवन्त्येकमिहानुविश्य ॥५८
एकक्षणस्याव्यवहारभावात् पश्यन्ति सर्वेऽपि जनाः सदा वा ।
त्रैकालिकं तावदुदीयमानं प्रमन्यमाना भुवि विद्यमानं ॥५९
कथाञ्चिदाप्नोति विकारमाराम्नुरस्ति लग्नाप्रकृतिर्विचारात् ।
सैवानुबध्नात्युदयन्तमेनं मणिर्यथा पावकमित्यनेनः ॥६०
त्वदीयपादोपगतो गिरीशः सिंहो यदुच्छिष्टभुगस्तुकीशः ।
श्वेवास्यदर्शी तरनुः सवायः स्वमीहमानः पुटभेदनाय ॥६१
पीयूषपिण्डोडुपखण्डकानां मिषान्नखानामनुमानखानां ।
प्ररूपणा अत्र निरूपयन्तं भजन्तु भव्या भगवन्भवन्तं (?) ॥६२
सुभासनेऽस्मिंस्तव शासनेऽपि मालिन्यमेवानुभवन्ति केऽपि ।
मार्गे समन्तात्सरलेऽपि चाथः सर्पः सदर्पोनृजु याति नाथ ॥६३
पृथक् जनास्त्वामनुयान्ति नेश तदत्र कोऽप्यस्तितमां विशेषः ।
मूल्यं मणेः सन्मणिमाणवो हि कुर्यात्कुतो दारुभरावरोही ॥६४

सर्वांशतो नांशुमतः प्रकाशमाच्छादितुं सम्प्रभवेद्यथा सः ।
घनाघनः केवलबोधमेतदाच्छादनाख्यानविधिः सुनेतः ॥६५
ततस्तदंशानुगतप्रयत्नी संशोधयेत्प्राप्यमलं त्रिरत्नी ।
स्वर्णोपलात्स्वर्णवदित्यवायसमथनः स्यादिद्विदुषां निकायः ॥६६
प्रत्यात्मसम्वित्तिवशेन विद्वानंशांशिभावादनुमानविद्वा ।
धूमेन वह्नेरुपसांशुनाम्नः यथा तथा केवलबोधधाम्नः ॥६७
कालादिलब्ध्या सुतपोन्वितेषु सिद्ध्यत्सु सिद्धान्तकथाश्चितेषु ।
केचित्तु कंङ्कोडुकवच्चणेषु वचोऽम्बुनेपूत शिलातलेषु ॥६८
जडेषु दारुः स्म गताश्चिराय संक्लिद्यते पावकः सर्वथा यः ।
आत्मा त्वयाप्नोतु नियुज्यमानस्तेजस्विताभाशु कुतोथ वानः ॥६९
सत्सङ्गसौहार्दजितेन्द्रियत्वैरमत्र तैलोदयवर्तिसत्त्वैः ।
सम्प्राप्यते चेत्तव सच्छलाकायोगः प्रकाशोऽथ कथाथवा का ॥७०
निरन्तरायं द्रहतोनिरोतिसारेत्सुरीत्याथ समुद्रमेति ।
द्रहे समुद्रेऽम्बु च तावदेवाङ्गिराशिस्त्वं भुवि वा शिवे वा ॥७१
युक्ते वियुक्तेऽपि शुभे शुभस्य नाधिक्यमूनत्वमसीति तस्य ।
मुक्तावितः सम्व्रजतोऽपि जीवराशेः स्थितिं पश्यतु हेऽङ्गधीवैः ॥७२
ध्वनिर्निरश्वन्नपि झल्लरीतः सोऽत्येति किं साम्प्रतमप्यधीतः ।
संसारवार्धेरिति जीवराशीः किलाक्षयानन्त इतस्तवाशी ॥७३
विपत्पयोधौ पततु सेतु-भावो हि तेऽभ्युन्नतयेऽस्तु हेतुः (?) ।
स्वता कुतः स्यात्परतामुतत्त्वं गतस्य कर्ता विपतेद्धि गर्ते ॥७४
विश्वस्य विश्वासमहीन किं सा त्वत्सम्मता या भगवन्नहिंसा ।
नानात्मने सम्वदतः परस्मायवाञ्छतः किन्नगदान्यकस्मात् ॥७५

वाञ्छन्नपि स्वं •वमरं प्रमत्तः परं पुनर्मारयितुं प्रवृत्तः ।
स एव हिंसाधिपतिः स पापी क्व कोऽपि जीवो म्रियते कदापि ॥७६
सहिष्णुरन्यान प्रभवद्वदान्यः स्ववर्गकार्यं प्रतिय•नवान्यः ।
द्वितीयकत्तामधिगम्य तिष्ठन् तवाश्रमे सर्वविदा मनिष्ठे ॥७७
एकः सवस्कानननुबन्धशस्तानुद्दीक्ष्य तत्कार्यविरोधिन•तान् ।
न मोढुमीशः सुतरां जघन्यस्त्वच्छासने भो जगदेकधन्यः ॥७८
स जीवलोके गुणधर्मकुल्यं स्ववर्गतुल्यं परवर्गमूल्यं ।
विदन्नपि स्वन्त्वनुमन्यमानः कौपीनवित्तोऽङ्गभृतां प्रधानः ॥७९
निजं परं नानुवदन्समान--दृशत्तमागः परितः सदानः ।
आल्हादकारीन्दुवदाप्तवेशः विश्वस्य विश्वासनिधिः स एषः ॥
यत्रान्तरात्मा परितापमेति तन्कर्म कुर्यान्न तदव्यथेति ।
त्वदुक्तराद्धान्तपयोधिसारं निभालयामोभगवन्नुदारम् ॥८१
नोद्दिष्टमन्नं च दिशैव वासः शय्यावनिस्त्वत्पदयोर्निवासः ।
कदा भवेम स्वयमेवमन्तर्जल्पं निजात्मानमभिष्टुवन्तः ॥८२
हे नाथ रत्नं तृणमासनन्तः जनीमिदानीं जननीं तु सन्तः ।
स्वस्यानभिप्रेतमना चरन्तः परेष्वपि स्वात्मनि सन्तुपन्तः ॥८३
गुणैरगण्यैर्ग्रथितात्मनस्तु दिगम्बरत्वं स्फुटमेवमस्तु ।
सुवीहसम्बंधविभक्तिभृत्तो वदामि वृद्धैर्बहुशस्यवृत्तेः ॥८४
क्षमारुहत्वेन भवन्तमस्य साफल्यमिच्छुर्जनुपो निजस्य ।
समेत्य सम्यक्सुमनोलतातः विपत्त्रतामत्र समेति तात ॥८५
दग्ध्वाशु रोषाद्दुरितं समस्तं भस्मीकृतं प्रोत्क्षिपतोऽप्यतस्तं ।
न पृष्टमप्यर्हत एव तेऽतः सहिष्णुता का खलु जिष्णुचेतः ॥८६

अनन्यजं गौरवमप्युपेतः भवान् किमूर्ध्वं भुवनादुतेतः ।
स्मृतं किलायोमययानमुक्त्या नैकान्तता ग्रोदनायघटनाययुक्त्या ? ॥८७
त्यक्त्वा विलक्षान्त्रजगतस्तवेदं मनो मनाङ् नार्द्रमभूत्सुवेदः ? ।
अस्मादृगम्भोभिरभिश्रवद्भिस्तन्मार्दवं वा गलितं वहद्भिः ॥८८
सद्वृत्तभावात् सरलं स्विदन्तर्दिग्वाससो निष्कपटत्वकं तत् ।
जनस्य नैकान्तमतानुगाभिस्तव प्रतिज्ञां दधतोऽनुयामि ॥८९
तान्निश्चितं तूक्तवतो व्यलीकत्र्युदन्त्रुवाणोऽवितथप्रतीक ।
सदा स्वयं नैकमतस्थितोऽसि मतामनः किन्नु मनोस्तु नोपि ॥९०
भूपान्नृपो माण्डलिको महद्भिस्ततोऽर्द्धचक्रीति ततोखिलर्द्धिः ।
न सन्तुपश्चक्रिपदेऽप्युदासः सन्तोषवर्द्धवेडवोऽसि दातः ॥९१
त्वदुक्तमित्यत्र यदेव सत्यं तदेव नान्योदितमर्थकृत्यं ।
रूपन्तु संधारयतस्तवार्थाद्विरागता चावगता कृतार्था ॥९२
तवात्मनो ज्ञानमहो विचारिन्ममश्नुतः पात्रमिवार्थकारि ।
यदेव दुर्नीतनया परेषां विकारभृद्धात्रि समष्टिरेषा ॥९३
कषायिनः पोषयतोऽपि पापं वैद्यस्य संशोषयतोऽपि नापत् ।
स्याद्वादविद्याधिपमस्मनं ते किमर्थमन्ये जगति क्रमन्ते ॥९४
वैरस्य सत्तां जगतीत्नमाणं विरागिणां त्वां शिरसि प्रमाणं ।
अर्हन्नुदासीनमहो वदामः कुतः शयानं सुमनस्सु नाम ॥९५
उपेत्य चास्मन्यक्तनामुपास्ति कृपं कटाक्षो न तवाथवास्ति ।
दीपस्य किं पश्यति रङ्गमङ्गविदग्धवृत्तिश्च भजन् पतङ्ग ॥९६
वैरस्य भावादुतमानिनास्तु प्रतारणार्थं न किमागमास्तु ।
तवांघ्रिकञ्जारिवरायकेयं सत्ता जगज्जित्कपदाभिधेय ॥९७

विशुद्धमित्यात्तविदस्मि हन्त प्रयत्नवान्त्रञ्जयितुं त्वदन्तः ।
नो वेद्मि मत्कैर्भगवन्दुरन्तं सकज्जलैरश्रुजलैर्धृतं तत् ॥६८
त्वदपादपांशुममूर्धभूषापूता न किं गोसकृताग्रभूसा ।
भवान्यतो भात्यमृतैकधामा दृगञ्जनेनास्तु यथा ललामा ॥६६
विचारभृत्तेऽलमविक्रियत्वं स्वच्छन्दवृत्तेश्च जितेन्द्रियत्वं ।
विलोक्य लोकस्य हृदि स्मयः स्याद्भवावहो किं तमसः समस्या॥१००
ग्रीष्मे स्वभावी जन एव यस्य शीते सदा कम्बलमभ्युदस्य ॥
जडप्रसङ्गेऽप्यजडस्थलस्यासक्ता तवानन्यतमा तपस्या ॥१०१
विहाय सद्योवनिनाथमश्वं भवाँस्त्रिलोकाधिपतित्वमञ्चन् ।
प्रवर्तते वृद्धिभृदग्रगामी त्यागं तवेमं न हि विस्मरामि ॥१०२
प्रत्यर्थिनं तुल्यगुणं सुवृत्तः प्रकुर्वतः प्रादुरभूद्भवत्तः ।
कल्पद्रुमस्याविरमो विकल्पाश्चिन्ताथ चिन्ताख्यमणेरनल्पा ॥१०३
मनोरथार्थीत्यवशं स ईश त्वामाश्रयेत्स्वस्थलसन्मनीषः ।
परेण किं वाधवरेण साध्यं पश्यामि रोगं त्वगदेन वाध्यं ॥१०४
वदन्सदन्तेऽभिमतं स्विदर्थं प्रयच्छतस्ते यदि नः समर्थं ।
शक्रादयः सेवकतामुपेता न कश्चिदस्तीति कुतः सचेता ॥१०५
कुतोऽस्तु चित्तं प्रवरावरासु समुत्तमायां तव चेद् गताशुक् ।
मुक्तिश्रियां सूक्तिधरैरपापीन्विवर्णिता न खलु वर्णितापि ॥१०६
स्त्रियां कुचं मोदकमित्थमेके पश्यन्तु योगिन्नुदिते विवेके ।
त्वमस्पृशन्दूरचरश्च मारमातङ्गकुम्भैकधियोत्थिताऽरं ॥१०७
नापत्यजां नो जडतामतुल्यान्तरन्ति तेषां सुतला च कुल्या ।
भवत्यहो साश्विनदर्शने तु तव स्तवोऽनः सुखहेतुसेतुः ॥१०८

सिद्धेस्तु गार्हस्थ्यमुतान्तरायः भवन्मते सत्कृतयेऽभ्युपायः ।
संकल्प्यते संघसमुद्भलस्य तुषं प्ररोहाय हि तन्दुलस्य ॥१०६
सा मेघभाषाढविधौ यथाभूत्समन्ततोऽसौ विषमां तथाभूः ।
क साद्य यत्राश्विन ते प्रणीतिः सूर्योदये का खलु चोरभीतिः ॥
गत्वा नभोगाधिपतिञ्च भोगवाञ्छा भवेत्त्वां सुदृढोपयोग ।
सरोऽमृतस्याप्यवगाह्य शेषा तृष्णास्ति भो भो जगतीह तेषां ॥१११
घृणाङ्कमन्वेषयतामदन्यः नादर्शि कश्चिज्जगतां जघन्यः ।
सतामहोऽर्थोर्हति भाति यावान्प्रमाणतःस्यावदहं घृणावान् ॥११२
विचार्य कार्यं व्रजतोऽत्र तात वताविचारे सति गर्तपातः ।
सुनिश्चितासम्भववाधकं वः सूत्रं समन्ताज्जगतोऽवलम्बः ॥११३
परापवादप्रतिवादिनापि परायवादस्त्वकयाभ्यलापि ।
सतां समानत्वमधिष्ठितेन विमानिनामाप्तसताप्यनेनः ॥११४
अहो महत्त्वं महतामिहेदं सहन्ति शीतातपनामखेदं ।
द्रुवत्परेषां स्थितिकारणाय सदैव येषां सहजोऽभ्युपायः ॥११५
युक्तिं गतो गौरवभाक् सुचेतः समन्ततो वत्सलतामुपेतः ।
महीतलाच्चान्द्रकथावलोपी कुतः पुनस्त्वं मधुरत्वगोऽपि ॥११६
परीक्षकोऽहं निकपप्रसङ्गः सदाऽभवं भृङ्गनिभान्तरङ्गः ।
तत्रोत्तरञ्जातु न हेमगाथः सतां शिरोलङ्करणाय नाथ ॥११७
यतेन शैष्याय न शिक्षकः स्याद्गुणीति च सम्भवितु समस्या ।
कृत्वा तु विश्वं निकपायमानं मनः सुवर्णत्वमियात्सदा नः ॥११८
मरासृजां शोषणकृज्जलौकः कल्पोऽभवं लब्धपदोऽपि नौकः ।
पयोऽम्बुसम्भेदकहंसवंश-गुणस्य भो भो भगवन्नहंसः ॥११९

परं परंपरां पथदर्शकत्वं दीपोऽववाहीव दधामि तत्त्वं ।
तमस्युपेतोऽपि कथं तवाथ स्वोद्योतकोऽन्यद्युतयेऽस्तु नाथ ॥१२०
प्रसङ्गिनोऽन्ये बहुलोहकत्वाज्जाताश्चमत्कारकृतोऽत्र सत्वाः ।
हं प्राणिकल्याणमतेः पुराणपापाणहृत्को निवसामि शाणः ॥१२१
सिद्धान्तितत्त्वं चाध्ययमायभीरुं धिङ्मासुदिङ्मान्द्यमुदेत्यभीरु ।
श्रुत्वापि नास्वादयतः कषाय-भियाऽगदं रोगवतोस्त्यपायः ॥१२२
कोणस्थसंसूचककाष्टकल्पः परोपदेशाय नरोऽस्त्यनल्पः ।
श्रितं रथः सङ्क्रमयन्नभीष्ट-स्थानं पुनर्गच्छति सैव शिष्टः ॥१२३
श्रुतानुवर्त्तैव न बर्हितुल्यः स्याऽकिन्तु नाकच्छपकल्पमूल्यः ।
निमज्ज्य पीयूषनिधौ पिपासा-हरो विपद्यङ्गधरः समासात् ॥१२४
गुणेषु भो धीवर ते स्खलामि कदंघ्रिभावादुत किं वदामि ।
रूपं तवेदं मधुरं यथापि वाचालतापल्लविनेऽयथापि ॥१२५
सुचारु मुक्ता तव शाकटायनमपीह गीर्वाणपदैशिणां मनः ।
समन्ततस्त्वय्युदुपायने च नः क्व पाणिनीये प्रभवेदहो जिन ॥१२६
नगरं नगरत्वेन वदन्ति निखिला जनाः ।
कान्तालत्वं गृहस्थापि भवानेवं महामनाः ॥१२७
येषां समस्ति कुलता मुलताभिलाषा
तेषाभितो व्रजति लक्षणमात्र आशा ।
सम्पत्तिदुःखसमरो च मुदश्रुदम्भा-
न्मुक्ताकुलत्वमिह ते मुदिरोपलम्भात् ॥१२८
समभूरामरकुलैकवंद्यः केवलबोधभृदेवमनिन्द्यः ।
जय जय पर्वत रराज निकन्द तव स्तवं कर्तुमहं मन्दः ॥१२९

शास्तरितस्त्वं जगतां मोदाब्धेर्विधुः तिमिरहान्तरङ्गस्य
श्रेष्ठो भास्वतः ।
सिद्धेरस्तु शुभाङ्ग भक्तलोके तव
वक्ताशावति शासितोऽधुनातः स्तवः ॥१३०
(शान्तिसिन्धुस्तवः चक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
सर्गस्तेन जयोदये विरचिते स्याद्ब्रह्मविद्यालयां-
तेवासिप्रथितेन याति गणिनोप्येकोनत्रिंशाख्यया ॥

इति श्रीवाणीभूषण-ब्रह्मचारिभूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये एकोनत्रिंशः सर्गः

अथ विंशतितमः सर्गः

जगदाह्लादकरं राजानं विनियम्याथ तपननामानं ।
अभ्युदयन्तमसहमान इव राजराजमभियर्यौ सपदिवत् ॥१
बहुधावलिधारिणीं स्रवन्तीं नितरां नीरदभावमाश्रयन्तीं ।
जयराट्जरतीतिनामबोध्यां द्रुतमुल्लंघ्य जगाम तामयोध्यां ॥२
स्वमुपपयोधरदेशं चलदुज्वलध्वजनिवसनविशेषं ।
त्रपयेव वोन्नयन्तीं श्रियाखिलं विश्वमपि जयन्तीं ॥३ युग्मं
प्रणयातिशयाय पश्यताथ बहुत्तानशयोपलक्षितां ।
महतीमनुजानताक्षितावपि विश्रम्भपरायणां हितां ॥४
उच्चैस्तनकुम्भवलाच्छकलोदितवर्गंकुलानवता ।
कामितयेवाश्रिमृताप्रासादततिस्तु तेन सता ॥५ युग्मं
मधुरसमुन्नतनरमहितायां कुशलक्षणपरिणामहितायां ।
अथ मध्यस्थराजहंसायां वात इवायातः स सभायां ॥६
सरसीवरसिद्धान्तमितायां सुतरां कविकुलकलकलितायां ।
कल्लोलाश्चितवारिचरायां शुशुभे चाशुशुभेङ्गितभायात् ॥७ (युग्मं)
सदनुमानितेतरलितो हितं परिपदास्पदं भरतमाददे ।
यदिव खञ्जनः परमरञ्जनमथ नभस्तले शशिनमुज्वले ॥८
अनुसमग्रहीत्तमपि किन्न हि स च तमोभिभित्स्वमृदुरस्मिभिः ।
कौमुदस्थितिं वर्द्धयन्निति सम्बभावतीद्धापरिस्थितिः ॥९ (युग्मं)

भालं जयस्य नमदादिमचक्रपाणेः पादाग्रतस्तु समभादिह तत्प्रमाणे ।
नित्यं विभावमयदोषविशोधनाय पङ्केरुहस्य पुरतः शशिनोऽभ्युपायः
शतशः स्फुरत्किरणभृन्नखाग्रवत् करसंयुगं भरतचक्रिणोभवत् ।
रविबिम्बशोभि सहसोभिमातरः शशिशोभनं जयमुखं समुद्धरत् ॥११
विबभूव भूः परिकृतेरपीति यत् प्रतिपत्कलोदयकरी कर्वेरियम् ।
समभूत्तमां सुरुचिभागिहोत्तमासदसः प्रहर्षणगणश्रियाममा ॥१२
कल्पवल्लिदलयोः श्रियं तयोः सद्योजात्फलोपलम्भयोः ।
पाणियुग्ममपि चक्रिणो जयत्तच्छिरोमृदुगिरोऽभ्युदानयत् ॥१३
उपलम्भितमित्यथोपकर्तुं हृदयेनाभ्युदयेन नामभर्तुः ।
उदयदिवोदयभूभृतस्तटं तच्छशिबिम्बं जयदेवत्र क्रमेनत् ॥१४
हस्तावलम्बनबलेन किलोपलभ्य स्वागालिलिङ्ग गलतः प्रणतं ससभ्य
सर्वस्वमूल्यमिति तुल्यतया निजस्य कुर्याच्छ्रितं
लघुमपीह जनः प्रशस्यः ॥१५

हर्षितेऽवनियतावनुभावाद्बान्धवागमननोऽत्र तदा वा ।
आमनोपकरणव्यपदेशादुल्ललास सहसावनिरूपा ॥१६
तदासनं तत्र तदा समन्वाश्रितं श्रितस्फीतिजयस्य तन्वा ।
दृशापि संस्पर्द्धनसंस्पृशापि श्रीपादपीठं महनीयमापि ॥१७
दृग्भ्रमरीविनिवृत्त्येनरतः जयमुखकमलेऽनिष्टन्क्रमतः ।
रसितुमतिथिसत्करणफलस्वाख्यचिणी च नृपतेरविलम्बात् ॥१८
नयनतारक मेऽप्युपकारक सुहृद आव्रज वैरिनिवारक ।
स्वजनसज्जनयोः परिचारक चिरत् आव्रजसि क्व शयानकः ॥१९
इति प्रौढसम्भाषणोपात्तपाणिः मृदुप्रायपङ्क्तीः कुमारस्य वाणी ।

विभीरुः शनैरुघर्यौ हेऽनुमानिन् महीभृत्यतेः पाददेशे तदानीम् ॥२०
तारक इवास्मि मालिनः सदसि समस्तार्थदर्शि नितान्तमिन् ।
तव सुदृगनुकारिण्यां प्रान्तेष्वनुरागधारिण्यां ॥२१
मृदुहृदा विवदंस्तव सूनुना सखिशिरोमणिनापि विभोऽमुना ।
तनुतमस्वरसार्थमहन्नुतत्परमबांधववन्धुतया युतः ॥२२
सुतनौ सुरोचनायां लोलुपतामत्यजिष्यमथ तर्हि ।
किं समगमिष्यमेतां महितां सुरभेः रतिं कर्हि ॥२३
अहमेवमनर्थकृद्भवेऽयं भवदुक्तस्य समर्थको भवेयं ।
दिवसेन च नक्तसङ्गमस्स्यादपि गम्भीरतमा यतः समस्या ॥२४
यतः समर्थकत्वदङ्गजात आक्रमः कृतः
कृतघ्नभावतो मही महार्कमभ्युदाहृतः ।
हृतश्च सम्भविष्टतीन्दुवन्नकालिमावतः
वत प्रयत्नतः कलङ्क एष मत्त आयतः ॥२५
नाथ नाथ विपदा विपदा मे सम्भवन्ति अरदादरदा मे ।
सोऽयमत्र भवतो ह्यनुभावः शीतगावपि रवेरिव गावः ॥२६
कस्मादकम्पननृपस्य नरामुदारगाम्भीर्यकौशलकुलादसकौ विचारः
मस्तिष्कतः कथमभून्मम भूतिहेतुः
पाथो निधेरिव च वाडवधूमकेतुः ॥२७
पित्रार्प्यते गुणवते स्वसुतेति रीतिं सनातनीमननुमन्यमुधादरीति
श्रीमानकम्पननृपः समभूत्किलेतः किं तत्र चाश्वतु रुचिं चतुरस्य चेतः
वार्द्धक्यतोप्यपरतोऽपि कुतोऽपि हेतोः
सम्भाव्यतां तदपि तद्धृदि नीतिसेतो ।

अस्मादृशा अपि दृशा विबभुर्विहीना
अर्थित्वतः परवशा समितानवीनां ॥२६
लूताकृते किमुत सौधगणग्रहीतिः यद्वातु पोतपुरतोऽमृतजातवीतिः ।
स्वायम्भवरीति खलु रीतिरियं प्रतीति
मायाति भो भरतभूभृदनर्थनीतिः ॥३०
सदधिपवदनेन्दोर्गोचरोच्चारणेन जय हृदयपयोधिः साम्प्रतं कारणेन
सुतरलतरवीचिः प्रोज्जजृम्भे किलेति
ध्वनिरपि च तदुत्थास्मेत्युदारा निरेति ॥३१
इति तद्गिरमानिशम्य सम्यग्नृवरो वारिगणं ववर्ष तं यः ।
स च वर्हिसमर्हिताद्धरम्यः सुतरां शस्यसमाजराजगम्यः ॥३२
यदवाप स वा पराभवमधिकुर्वंस्तु सुलोचनां तत्र ।
किमु तत्र भवेत्कदाश्रव उचितोपायपरायणोत्सव ॥३३
न हि तत्र समस्ति शोचनीयं गतिरुत्सीमगमस्य भाविनीयं ।
निशमिन्दुनियोगिनीं वुभुक्षोः पतनं किन्नरवरहो मुमुक्षो ॥३४
विमृश्यकर्त्रेदमकम्पनेन संयोज्य नूनं किमकार्यनेनः ।
अर्केण बालामतिकर्कशेण किं मल्लिमालान्वयतं कुशेण ॥३५
जगदुद्योतनहेतोर्वंशान्न उदेत्ययं समरसेतो ।
दीपात्स्नेहाधारात्कज्जलवन्मलिनतम आरात् ॥३६
जगदाह्लादकारिणो कुले किलास्मारकममरताधारिणि ।
शशिनि कलङ्क इवायं प्रवर्तते षट्पदच्छायः ॥३७
अथ श्रुतिप्रान्तकृताधिकारासमन्ततोरूपनिरुक्तिसारा ।
भूमण्डलेऽलं कृतिरत्नमाला मुखे तु दध्यद्युदेति बाला ॥३८

भद्र वाराणसीशेन तस्यामेष नियोजितः ।
कज्जलवच्छ्यामलोऽपि दृश्यते सज्जनैरितः ॥३९
वीटिकया परिधृतः पलाशः केतक्या कलितः किल काशः ।
आद्रियतां महतापि तथा सः बालयानुकलितो नरपाशः ॥४०
लोकत्रयात्त्रिगुणिताद्बहुमूल्यमेतत् स्वं जीवनं यदि ददीत महाशयेतः
दृग्देशितेषु परिवृत्तितया सुदेश
सम्वेश एष खलु मुख्यतमोऽस्तु लेशः ॥४१
लोकज्ञताहेतुतया स्तुतिः पितुरादीयतामत्र किलात्र सापि तु ।
मत्सी सरस्याश्रयिणी यदृच्छया सा प्रेक्ष्यते साम्प्रतमम्बुपृच्छया ॥४२
विधिरेष विदेहभूजितः निधिरात्रिर्भवतीत्यसावितः ।
स्वयमस्तु सदेहपूजितः किमुनानंदसमर्थकोऽमितः ॥४३
वसुधामहितस्येति वारिपूरं जयदेवः
कन्दवृंद इव सन्निपीय पीनः पुनरेव ।
परमध्वनिमानमत्रेव माबभार तस्य
परमध्वनि विषयस्य सम्पदाश्रयः प्रहृष्यन् ॥४४
मातेव खेलितुमितं तनयं महीपते
सा वन्धुता च जनता किल मां प्रतीक्षते ।
गंगातटे विधुमतीतवती कुमद्वती
वोत्क्लिश्यते किल सुलोचनिका महासती ॥४५
श्रीमत्तरङ्गिणीं तीर्थाभिसिक्तां राजसंसदः ।
प्रस्तुतप्रसवायास्तु निवृत्त्याजय आययौ ॥४६
मत्तेभवत्यथैतस्मिन्नापगा सारसाधिका ।
मध्यं स्पृशति कल्लोलैः समभूत् परिवारिता ॥४७

अन्तस्थया च तिमिलक्षणयोद्व्रजन्ती
वृत्त्यात्तया तिरयितुं समभूत् स्रवन्ती ।
पद्मेश्वरं च करिवाहनमेवमेनम्
सन्ध्येव साम्प्रतिकबुद्बुदभावनेन ॥४८
सिन्धुरमिममित्यथोपकर्तुं द्युनदीत्वं किल पुनरुद्धर्त्तुं ।
निम्नगात्वदुर्यशोऽपहर्तुमुच्चचाल साग्रतोऽस्य भर्तुः ॥४९
नभोभिर्धैकतां कृत्वा धृत्वा स्ववीचिबाहुभिः ।
याति स्मालिङ्गितुं यद्वा प्रजवादम्बु अम्बरं ॥५०
क्षालितेवाम्बुना वीरवरस्यासीत्तु धीरता ।
विपत्प्रभावमादातुमभ्यवाञ्छत्तु धीरता ॥५१
जगतां जीवनेनापि किमित्यत्र न वारिता ।
समश्च विषमः सूक्तिरित्येपास्ति न वारिता ॥५२
शरैर्नरो वैरपरं रणेषु मर्दं चिरायापच तत्क्षणेषु ।
शिरोभवत्कं तु तदा पदं स सारस्वतं स्माश्रयति राजहंसः ॥५३
प्रतीक्षयामास जयं किशोरी यथोदयन्तं शशिनं चकोरी ।
सृष्टः सकष्टं तमसोपमृष्ट—रमेण नीरो रुचयेन दृष्टः ॥५४
छायेवानुवर्तिनी भर्तुर्यतमाना मनीषितं कर्तुं ।
विपदं गते सुखगता नासीत्तस्मिन्सेति कुतस्तु सुभाषी ॥५५
सुदृशो दृशाविरसताऽपूरि जयस्यान्तरम्बुजाय भूरि ।
अविरलजलयाथयो हि बन्धुर्विपत्क्षणे स च भवतादन्धुः ॥५६
यदलिगणं हिमकरास्य एप उच्चतार महिमास्य विशेषः ।
पदजलजे उत्तरतामस्माज्जलजातादुपद्रवात्कस्मात् ॥५७

अभावमत्रानुभवाम आतुरानतेऽनुग्रह्णन्तु किमीश्वरास्सुराः ।
शयालवश्चेन्मम दृष्टिवृष्टितः स्फुटं सहायाः स्युरथासुरा इतः ॥५८
अनुतापमहार्णवेऽधुना धृतलेखेव दृढीभवन्मनाः ।
शुचिवर्णनयाश्रितास्तु नः महनीयामलमानसैः पुनः ॥५९
प्रत्याकलितं साहसमस्थानिर्गलदपि किल साह समस्या ।
स्खलदवलम्ब्य बलान्नवलाया आदरयित्री हृदयमपायात् ॥६०
अहदुक्तिसन्नद्धहृदाराप्रतिकर्तुं प्रबभूव च वारा ।
आत्मनैव भाव्यं शवरेण धन्विपतापि यथा शवरेण ॥६१
सुरतरङ्गिणीं तां बहुमानामनुकूलोचितविटपविधानां ।
वारस्त्रीमुदयन्तीमार्यमापातयितुं हटाद्विचार्य ॥६२
तिरष्कुर्वती सती निकाममित्येषा सहसा निजगाम ।
शमुदूदीपितं साहसमस्याः या विकटा खलु साह समस्या ॥६३
शीलसहस्रांशुतेजसेव शुष्यत्सलिला सा सरिदेव ।
आनुलग्नतामवाप तस्याः सम्प्रति लघुतरभावसमस्या ॥६४
पतिव्रतानां खलु सम्पदापदं निषेवते याति तथापदाऽऽपदं ।
अहो यदन्तः शयनेप्यघापदं भवत्यथायं भवसिन्धुरापदं ॥६५
कार्तस्न्यतः प्रत्युपकारपूर्तिराविर्बभौ विघ्नितविघ्नमूर्तिः ।
रङ्गेऽत्र गंगेत्यभिरामनाम-देवीमुदे विस्मयिनो निकामं ॥६६
समस्तनारीनिकरैकभूजिदपूर्ववस्त्राभरणैरपूजि ।
वाराधिकारादिह सेचयित्वाऽनया नयामात्तगुणाश्रयित्वात् ॥६७
समुनसि मनसि च जयस्य जातं किमिदमभूदिति कण्टकपातम् ।
नखचुण्टिकयेव नूत्नया चाभेदितया निम्नाङ्कितवाचा ॥६८

विपिनविहारे व्यालीदृष्टाभ्यतीत्य नारीरूपमकष्टात् ।
सुदृशा घोषितमनुप्रसङ्गाज्जाताहमहो देवी गंगा ॥६६
+भुजगीचराचण्डिका देवी दुष्टात्वायिरुष्टागुणिसेविन् ।
स्मोपद्रवकर्त्री ह्यायाति समयमाप्य विकरोति विजातिः ॥७०
ऋद्धिमुपेत्य भवत्या वृद्धिमात्रमेतदेवात्र सक्तद्धि ।
अर्पितवत्यहमेषा दासीहतु सम्यग्दर्शनाभ्युपासिन् ॥७१
ऋणीकृताहं च कदा नृणत्वं भजेय भाजेतुमिति त्रणित्वं ।
तद्वृद्धिमात्रैकविशुद्धिहेतुभूते व्रजामीत्त्वणधृकचरणे तु ॥७२
इयं गुरुत्वान्महिमानमेति निरुत्तरं त्वाम्बरमाश्रितेति ।
विश्वं त्वरं कर्तुमुपैमि देव गुणोदयं तेऽथ विमानमेवं ॥७३
तयारसोद्वेलनकेलिमेतयोः स्रजाचराणामिति कूर्णकूपयोः ।
समुद्ययौ स्पर्द्धितयातरामिदञ्जगज्जयः पूरयितुं तु वारिदः ॥७४
न दासि अस्माकमिहासुदासिसमासिमध्याप्युतदेऽवताऽसि ।
जगत्त्रयेऽस्मिन् परमुत्तमापि सूक्तिर्भवत्या सुतरामवापि ॥७५
तव प्रणोद्यचरशोऽधिगत्य वृद्धिं सदाजीवनकृत्तु सत्यः ।
वाच्यो न वा किं करता भवत्याः कर्णं त्वरं कर्तुमहो जगत्याः ७६
लेखीभवत्यत्र सदाचलानां समाश्रयायैवमथाखलानां ।
यामो वयं ते खलु यत्र भावमहोदयास्मासु महोदया वः ॥७७
तृणं ममात्मैव तवासनाय समञ्जलित्वं चलनोदकाय ।
मद्बुद्धिवीरुद्धिदधातु कानि सम्माननार्थं न हि कौतुकानि ॥७८

+ सर्पचरा चेति पाठः स्यात् ।

यशसा श्रुतिः साम्वरा यासां दीव्यति दक्पुनरद्य सुभासा ।
जयति प्रखोऽपरश्च शकान्नात्किन्तु पवित्रा पाशकला सा ॥७६

श्रियो निवासाय समस्ति साशिकाथ शर्वरीतो भुवनस्य भासिका ।
श्रिता भवत्या च गुणाधिकारिणी
विमानिनीयं न हि किन्तु मानिनी ॥८०

त्वया मरुत्सम्विदिते प्रमाणितां विमानिनीयं न च मानवीचिता ।
धराऽतरेऽस्मिन् समभावि मत्प्रिया
सुरोचिता नाम समस्ति यात्क्रिया ॥८१

यदस्ति भक्ताय समत्वताप्तिस्तवः स्वर्गिणि सूपकारः ।
व्यधायि अस्माभिरहोललामा शुभत्वणायाञ्जलिरेव सारः ॥८२

पत्युक्तिमर्थातिशयेन गुर्वी धृत्वा कराग्रेण मुदां स दुर्वी ।
स्वयं लघुत्वाच्चलनैकदक्षा बभूव सौभाग्यसुमैकसृक्ता ॥८३

ह्रीविस्मितिस्फीतियुजेत्रिनद्यां स्नात्वेव वृत्तोत्तमपुष्पभासा ।
चक्रे सुनेत्रा पतिदेवतार्चा रंदालिक्लप्ताभिनवांशुका सा ॥८४

आमन्त्रदाना किमुदेवताह महोमदिष्टा किमु देवताऽऽह ।
मश्चितभानामसुदेवतापि त्वं येन लोकेष्विन देवतापि ॥८५

देवीति यासौ नवनीतसम्पत्तयोदियायाभ्युदितानुकम्प ।
दुग्धस्य धारेन किलाल्पमूल्यस्तत्रानुयोगा मम तक्रतुल्यः ॥८६

त्वां मदनमनोहरं व्रजामि यथा तथा कुवलयेन यामि ।
किमुपवनश्रियमेनां स्वामिन् परमञ्जरीङ्कितं विदधामि ॥८७

त्वदंघ्रियुग्माय मयासनं ननकलाञ्जयुग्मं भुवि दीयते पुनः ।
न्यगाद्ययुक्तं खलु देवते क तत् विना ममोरःपरमासनं च सत् ॥८८

सत्सुरतेयं तव सुमनास्त्वं कृत्वा मधुरचर्णैकतत्वम् ।
अभ्रमरीतिकरीनिगदामि मानवलोकमिमं शिवगामिन् ॥८६

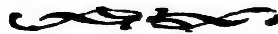
सत्करोमि यत् पदयुगं सन्निधिरयमिहनाम् ।
मम कर्मासन्निवृ॑तं सम्मधिगतं ललाम ॥६०

भक्तानामनुकूलसाधनकरम्वीक्ष्यार्हतां संस्तवं,
रङ्गत्तुङ्गलरङ्गभृद्घनवने पोतोपमं प्रीतिदं ।
तस्मिंस्तिग्मकरोदये च न इहास्त्वन्तस्तमोनाशनं ।
नर्मारम्भकसारमद्भुतगुणं वन्दे सदङ्कं पुनः ॥६१

(भरतवन्दनश्चक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुज स सुषुवे भूरोमलोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
सर्गः सम्प्रति याति विंशतितमस्तन्निर्मितेऽस्मिन्नयं,
स्फूर्जद्धारितरञ्जिताखिलजगत् चित्तः प्रतीतः स्वयं ॥

इति श्रीवाणीभूषण-ब्रह्मचारिभूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये विंशतितमः सर्गः



अथैकविंशतितमः सर्गः

शासनं समुपगम्य भूपतेः पत्तनं प्रति पुनर्विनिर्गतेः ।
इत्यमाह समनीकनीश्वरः गत्वरं वसमयाति सत्वरः ॥१

सज्जितास्सपदि हस्तिसश्चयाः स्युश्च कस्य कुथसंयुता हयाः ।
युग्यसंयुतयुगा अथोरथा गन्तुमाग्रहधराश्च सत्पथा ॥२

सर्व एव कटिबद्धतामतिसद्य एव निजपत्तनं प्रति ।
यान्तु सम्प्रति हि गम्यते विभोर्जायते समववाद एष भो ॥३

प्रस्फुरत्तरमुदङ्कुरश्रियं वर्मितुं वपुरनल्पसत्क्रियं ।
अद्भुता ननु जनेष्वभूत्त्वरा निर्गमक्षणसदेशतत्परा ॥४

आव्रजत्यतिजवेन पत्तनं माविचारमिह यांतु किश्चन ।
ग्रीवया लुलितया मुदं वहन् निर्ययावपि महाङ्गसंग्रहः ॥५

स्पर्द्धितापि पुनरग्रगामिता–सन्नियोगविषये मिथो रसात् ।
तद्रथस्य च मनोरथस्य चानन्यवेगिन इहाविराय सा ॥६

स्यन्दनं समधिरुह्य नायकः कौतुकाशुगसरूपकायकः ।
प्रीतिसद्म्सुमृदुरूपिणी प्रिया स प्रतस्थ उचितादरस्तया ॥७

मत्स्यकैरपि वरासयस्सयास्सत्तरङ्गतरलास्तुरङ्गमाः ।
सामजा हि मकरानुकारिणः सैन्यसागर इहाधिकारिताः ॥८

राजते हि जगती रजस्वलाऽमीस्ततो हि तुरगास्सुपेशलाः ।
स्मास्पृशन्त इति मान्ति कष्मलाद्भीतिमन्त इव तावदुत्कलाः ॥९

मार्गमस्तमयितुं तुरङ्गमाः शीघ्रमेव मरुतो द्रुतं गमाः ।
उद्गिरन्त इव तुण्डतः चुराञ्चेलुरत्र तु परास्तमुं मुराः ॥१०
कुर्वतीव हि खलीनकर्षणं सोढुमक्षमतया निधर्षणं ।
सत्तुरङ्गमगणस्स्म धावति स्वामिनि स्वयमयं लसद्गतिः ॥११
पादिनामतिजवेन गच्छतां तेच्छदारव तदा गरुन्मतां ।
रेजिरे भुवि भुजा निरन्तरं सञ्चलन्त उचिता इतादरं ॥१२
अश्वकर्तनविवर्तविग्रहास्तेऽपि वर्द्धितपरस्परस्पृहाः ।
शीघ्रमेव गमनश्रमं सहाः पत्तयोययुरमी समुन्महाः ॥१३
सच्चमूक्रमसमुच्चलद्रजो व्याजतो व्रजति स स्म भूभुजः ।
नीरुजोऽस्य विरहासहासती पृष्ठतो वसुमतीव सम्प्रति ॥१४
वायुवर्त्मनि चलन्त्यसौ बलात्केकपङ्क्तिरुडुपांशुनिर्मला ।
तस्य कीर्तिलतिका स्म भासते वर्द्धमानकतया महीपतेः ॥१५
निर्गलन्मदपयःप्रसारिणी मत्तवारणघटा भटेशिनः ।
भर्त्सिता भृशमथानुतापतोऽकीर्तिरेव किल सिम्रिणीजिनः ॥१६
भूयशोऽगुरुविलेपनश्रियं सन्दिशन्निव दिशामतिप्रियं ।
खातमर्वचरणैर्नमस्यद संजगाम जगती रजःपदं ॥१७
साङ्कुशं स च तिरोवहन् शिरोस्म्संप्रसारितकरो वशां पुरः ।
संगतां प्रतिनिवेदितुं गजः शीघ्रमर्दितमृणिग्रहो व्रजत् ॥१८
खादति स्म सरसं समीहया केनचिन्निजजनप्रतीक्षया ।
सादिनैव सरणौ मुहुर्धृतः सान्द्रमुष्ट्रकयुवेदमग्रतः ॥१९
लाघवप्रतिमितक्रियाजपिन् स्फालनानुकृतलालनानपि ।
अश्विनोधिरुरुहुर्हयान्स्वयंवङ्कशोङ्कितसवल्गपाणयः ॥२०

एक आपनवयोदरश्रिया शोभनाममलनाभिचक्रया ।
गन्तुमेव सुखतो रथस्थितिमात्मवानविधुरां वधूमिति ॥२१
सादिनो न हि दधुर्दवीयसे यावदासनकमध्वविप्रुषे ।
व्युत्थिता द्रुतमसह्यरंहमश्चेलुराशु करभाः सहस्रशः ॥२२
धीयमान इह सम्भरं तदोत्थाऽनुरेष विधृतो बलात्पुरः ।
सम्बभूव रवणो यथार्थक-निर्गलत्कवलकातरस्वरः ॥२३
आगतोपकृतये विचारिभिर्जन्मनश्च सफलत्वकारिभिः ।
शाखिभिः स सुखमापतत्वतः साम्प्रतं मदुलपल्लवत्वतः ॥२४
वंशसम्वृतिभवत्परिक्रमः श्रीमृदङ्गमितगोमयश्रमः ।
ग्रामधामनिचयेऽनुरागवान् सम्बभूव महतीश्वरो भवान् ॥२५
चापलात्समुदधूलयन् दिशः सैन्धवास्तु चरणैस्तदा स्तुताः ।
भद्रभाववशतस्स्म वारणास्स्नापयन्ति मदनिर्भरैस्तुताः ॥२६
स्यन्दनैरपि हरिद्भिरङ्कितं धन्विभिर्यदुतखड्गिभिर्मितं ॥
कन्नमात्मपरिणामवत्सलं दारुणोचितमवाप सद्बलं ॥२७
दृष्टिमेष परितः प्रसारयन्नित्युदीर्य गुणितां चा धारयन् ।
वाचमाचरितचापलो व्यभाद्भूपतिश्चरमयन्स्त्रवल्लभां ॥२८
अङ्कुशाहतिमुपेत्य वेगतश्चैक आर्त्तविरवोन्यतो गतः ।
एष चास्तभरमेप्यथादयोऽन्योन्यतश्च कितयोरिभोष्ट्रयोः ॥२६
हे सुकेशि करहाटसंयुतं सर्वतोऽलिपकपूरपूरितं ।
ओटिमत्सर इवेदमन्वितं रोचनादिभिरपेक्षिणां हितं ॥३०
राजते यदतिमुक्तमन्मथा सार उद्यदनुबन्धमोचकः ।
कन्नबन्ध इह तन्विरोचकः प्राणकप्रतिहितो यतीन्द्रवत् ॥३१

देववृन्दमहितो विराजते राजते च मुनिसंघसेवितः ।
नव्यभव्यनिवहैरुपासितो दृश्यते जिन इवेष्टिमानितः ॥३२
विक्रमातिशयसंयुतो धनुर्बाणसंहितसमन्वितः स्वयं ।
गौरिसज्जकवचप्रसाधनः प्रौढशूर इव राजतेप्ययं ॥३३
कर्णरूपपरिणामसंयुतः श्रोणिबद्धसुरसासमन्वितः ।
सर्वतश्च सकटाक्षदर्शनः कामिनीजन इवानुमानितः ॥३४
वातकेलिपरिवारितोप्यथालोक्यते कुहरिताश्रयस्तथा ।
सद्रसालसहितो महापथा राजते च सुरताश्रमो यथा ॥३५
सत्कुशासनविराजितस्तु न भूरिभूतकरुणान्वितः पुनः ।
सानुरेष तु सुखाशसंहतिः वर्णिवत्तरलकर्णिकावति ॥३६
भासतेऽखिलजलाशयाधिपः कर्बुरौघमपि यः किलाक्षिपत् ।
सिन्धुवद्वरुणवल्लभोभितस्सम्भवत्तरणिचारवारितः ॥३७
वेणुवारसहितश्च तम्बिकापूरितः सघन इष्यतेऽन्वयः ।
नर्तकप्रतिगुणोऽस्य चोकाचीव भाव इव नतनालयः(?) ॥३८
वायुराहुरभिवादकोविदा आयुरेव पदवादसम्भिदा ।
अङ्गिनामनुवदाम्यहं महाभूतमेतदपि तन्विरंकहा ॥३९
नैककल्पतरुतर्पितस्थितीन्स्वप्सरोवरसमर्थितानिति ।
संजगाम पथि शक्रवद्द्याभाकनाम दधतो जनाश्रयान् ॥४०
श्रीधनुस्थितिमितः समुद्धरत् संगराश्रयतया वनं वरं ।
हे सुकेशि मदनैस्समन्वितं सैन्यवल्लसति विक्रमाङ्कितं ॥४१
रोमहर्षणसमन्वितत्वतः पश्यताच्छिखरिणीश्रितस्त्वतः ।
उल्लसन्मदनसारकारणादप्युपैत्यपि विलासधारणां ॥४२

हे प्रिये परमपावनोऽसकौ गन्धबन्धुपवनो वनस्य कौ ।
अत्र नः खलु पथः परिश्रमं दूरतो हरति वै ससम्भ्रमं ॥४३
तन्वि बालतनयान्विता हि तादृग्रतस्सहचरीसमाश्रिता ।
नेत्रभागकलिताञ्जनावनी राजते कुलवधूरिवाध्वनि ॥४४
काननावनिमतीत्य वेगतः स्मात्मवान्समवलम्बते ततः ।
काञ्चनस्थितिमतीं वसुंधरामुत्कतामनुभवन्नथो नृराट् ॥४५
तत्र सप्रभविधेऽनुगत्वतः स्नेहमाप वृषवत्सलत्वतः ।
शस्यतोयजनसंश्रयत्वतस्तुल्यतामनुभवन्महत्वतः ॥४६
हे सुकेशि तव केशपाशतो व्यस्तपिच्छ इव पश्यतादितः ।
सालशालिविपिनं विशत्यथासावपत्रपतया शिखावलः ॥४७
मन्दगामिनि तवालसां गतिं शिक्षतेऽथ कलभोऽसकावितः ।
वीक्षते दृशि पराजितो मृगोऽङ्कं पलायितुमयं द्रुतं व्रजन् ॥४८
सालकाननतया मनोहरामभ्युपेत्य नरनायको धरां ।
प्राप्तवान् सुरतरूपसम्पदा सन्निकृष्टविकशत्पयोधरां ॥४९
सौष्ठवेन तु सदिक्षु मानितां भूरिधान्यहितकद्गुणाङ्कितां ।
मेदिनीं प्रभुमुदेव लोकयन् किन्न भद्रपरिणामभृज्जयः ॥५०
हस्तिमौक्तिकफलादिकं मुदा भूपतेः शवरनायकास्तदा ।
दर्शनार्थमभितस्समागतास्स्त्रागुपायनमुपेत्य सन्नताः ॥५१
श्यामसुन्दरशरीरसम्पदोऽस्पष्टदृश्यमृदुरोममञ्जरी ।
कृष्णला रचितकण्ठभूषणा चञ्चलद्दलदुकूलमञ्जुलाः ॥५२
मण्डनार्थमथ वैणनाभिकाश्चिन्वतीस्तनुतरावलग्नकाः ।
तत्र भील्लतनयाविलोकयँल्लोकराट् स मुमुदे वनस्थले ॥५३

मोदमाप महिषी मनोहरान् मातृसारखचितक्रियापरान् ।
प्रस्फुरद्धवलधाममण्डितान् वीक्ष्य गोपनिलयान् स्वसंहितान् ॥५४
भूरिशोभिनवनीतिचेष्टिताद्गोकुलाद्रितमधात् प्रजापिता ।
आत्मवत्सदधिकारवाञ्छितादेवमेव गुणितक्रमाश्रितात् ॥५५
घोषकोलुपलसत्कुटीरकप्रान्तमेवमवलम्ब्य बाहुना ।
वल्लवा नृपवरं सविस्मयं लोलयाथ ददृशुर्दृशाधुना ॥५६

तेषु सन्निधिमुपाश्रितेषु चानेकधान्यगणकुष्टिमद्रुचा ।
ग्रामकेषु समुदारतां श्रियं वीक्षमाण उदगादपि ह्रियं ॥५७
मंथनश्रववशात्परिस्फुरत्सिप्रविन्दुवदनं महीभृता ।
प्रस्फुरामृतकणं सुधारुचो विम्बमैक्षि खलु गोपयोषितां ॥५८
मंथनातिशयतस्समुच्चलत्तक्रविन्दुनिकरोऽकरोद्धियः ।
पीवरस्तनतटेऽथ संसजन् यत्र मौक्तिकसुमण्डनश्रियं ॥५९
मन्थकर्मणि जुषः कुचद्वयं गर्गरीमतुलयत् यतः स्वयं ।
व्युत्थमस्तु लवयोगतो हसत् घूर्णते स्म किल विस्फुरद्दृशः ॥६०
मन्थिनीमुदधिसन्निभां महीशानसुन्दरगुणेन यत्र ताः ।
लोडयन्ति ललनास्स्म मन्दरप्रायमन्थकलिनामृतायतां ॥६१
शस्यवर्गविभवेन संधृताः कौशलेन समिता अदूरतां ।
संभविक्रमधराय पद्धतावीष्टवोऽकहरणार्थमस्यताः ॥६२
आगताश्च दधिभाजनादिभिर्घोषका नृपसुदृष्टये कृती ।
प्रीतितः कुशलपृच्छनादिभिर्न्यायवान् स विससर्ज भूपतिः ॥६३
रामनामदधतोदधुक्षतोऽभ्याजतोऽतियतिनीं सहुक्तनि (?) ।
धेनुमैक्षत जयस्तदास्तनाभ्याससंकलिततूर्णतर्णकां ॥६४

प्रेयसीप्रणयपूर्णमानसः शीघ्रमेव निजमण्डलावधिं ।
सच्चिदैकहृदयो मुनीश्वरः प्राप मुक्तिनगरीप्रघाणवत् ॥६५
आतपत्रमितफेनरङ्गिणी सञ्चलद्ध्वजबृहत्तरङ्गिणी ।
चन्द्रहासझषलासनाहिनी निस्ससार विभवेन वाहिनी ॥६६
अवलम्बितमत्तवारणस्त्रजमत्यादरतो महीपतिः ।
विरहादिव लम्बितालको नागरीमेष ददर्श सम्प्रति ॥६७
गगनं कषमन्दिरध्वजामरुता सत्तरलाञ्चला सती ।
प्रथमं खलु वीक्षिताजनैर्यदि वा स्वागतमेव तन्वती ॥६८
पुरसिम्नि पुनः पदातयोऽथ पदार्थौ विनियम्य चक्रिरे ।
परिशोध्य हि पदरच्चिका उपसंव्यानकविस्तरंतराम् ॥६९
तुरगा अपि ते रजस्वलाऽवनिसम्पर्कत् आप्तकम्मला ।
श्रमवारिभिरेवमाप्लुताः प्रबभूवुः खलु तत्र विश्रुताः ॥७०
गमनातिशयाज्जनीजनः शिथिलं साम्प्रतयान्तरीयकं ।
दृढयन्नथवा प्रसाधयन् स्म मुहुः पश्यति लोलया दृशा ॥७१
पवनप्रतिभावितोप्ययात् परितोधूसरिताङ्कशङ्कया ।
रथराजवितानकं पथीत्यधुना शोधयति स्म सारथी ॥७२
मनुजास्तनुजायनश्रमं किमपीमं न हि मेनिरे तदा ।
निजपत्तनदत्तनर्मणां परिवारैः परिवारिसम्पदां ॥७३
चरणद्वितयेन पत्तिभिः पदवी संसृतिवद्द्वीयसी ।
स्वरमाभिगमाभिलाषिभिः सहजेनाप्यतिवर्तितारसिन् ॥७४
हृदयस्थितकामपावकं कलयन्नञ्चलकैः किलावृतं ।
वनिताजन एकतस्तरां तनुते वातततिं स्म साम्प्रतं ॥७५

अतिवर्त्य नदीवनादिकं पुरमात्मीयमवापि सेनया ।
नरपस्य यथा यतिस्थिति लभते संसृतितश्शिवं रयात् ॥७६
समियाय स जायया हतो नगरस्थापितमन्त्रिभिर्धनी ।
सहितः कुसुमश्रियामधुः कुतुकोत्कैर्भ्रमरैरिवाध्वनि ॥७७
नगरं प्रविवेश वैभवान्निजवृत्तं कियदेषु सम्वदन् ।
अथ कर्णपथं नयन्नयं स्वयमेभ्यो निजदेशवृत्तकं ॥७८
नरनाथमनन्यचेतसोभयतस्तावदुपस्थिता नराः ।
प्रणमन्ति तथा स्म ते किलानरपद्वारमुदारगोपुरात् ॥७६
सरतो बलवारिधे स्थितो द्वयतः पौरगणः क्रमागतः ।
समतिक्रमरोध आदरादनुचक्रे सहितीरमन्तरा ॥८०
वाणिजोमणिजोषमादरादुपहारं ह्यनर्घौ वणिक्पथे ।
ददुरेव चिरादुपेयुषे सुयशः श्रीसहिताय सुप्रथे ॥८१
तदा वधूकान्तिसुधां निपातुमभ्यागतानां पुरसुंदरीणां ।
मुखेन्दुसन्तानवशाद्बभूवुरन्यर्थसंज्ञाः खलु चन्द्रशाला ॥८२
विलोक्य कान्तं सुरभिस्वरूपं प्रफुल्लिता गात्रलतालताङ्ग्याः ।
तदाननेन्दुं मधुरास्मितान्तं दृष्ट्वा समुद्रोऽमलतोऽयमिष्टः ॥८३
प्रियां समुद्दिश्य नरः स्वमास्यं समस्पृशच्छ्रांततयेव चास्य ।
विलोकनात्संघृणयेव वामाऽधरं परावृत्यतरां रराज ॥८४
वनिताजनितातरलागीतिस्स तु तूर्यरवः समुदात्तः ।
सुविकशि नृपाङ्गणमाभूद्दर्पमितः सकलश्च निशान्तः ॥८५
विशद्भिर्जनैर्निस्सरद्भिश्च शश्वन्नृपद्वारमाभून्नियोगिप्रसिद्धैः ।
अतिव्याकुलं शब्दविस्तारयुक्तं तरङ्गैरिदानीमिवाम्भोधितीरं ॥८६

हेमाङ्गदादिष्वधुनास्थितेषु बबन्ध पङ्क्तिं पङ्करेष तस्याः ।
भाले विशाले दुरितान्तकाले भवन्ति भावारमिणां रमासु ॥८७

अथ कम्पनाधिनाथो भवेद्भवानेव देव भूमितले ।
भवदपरः कश्च नरोऽकम्पनसुततां व्रजेद् बन्धो ॥८८

अन्यदर्शकतया जगौ परः श्रूयते भुवि भवानहो करी ।
प्रत्युवाच पुनरेष साहसी त्वं च वाञ्छषितरां करेऽणुतां ॥८९

गोपतिर्जनतयासिभाषितोऽस्माकमाशु गुणवद्वृषस्त्वकं ।
आहसोऽथ वदतीतरे जय किन्न गोत्रिगुण एव भो भवान् ॥९०

अस्मदत्र तु भवान् मृगनेत्रीं प्राप्य गच्छतु परम्परभावं ।
प्राहसोऽपि गदतीत्यपरस्मिन्नस्मि किन्तु भवतः सुहृदेव ॥९१

इत्युक्तिभिर्वक्रतराभिराभिर्बभूव भव्यापरिहासगोष्ठी ।
गूढार्थपूर्वाधपरार्द्धभाग्भिः श्यालैस्समं हस्तिपुराधिपस्य ॥९१

वापीतटाकतटिनीतटनिष्कुटेषु हेमाङ्गदप्रभृतिबन्धुसमाजराजं ।
त्रिक्षेप सोऽथ रमयन्समयं नरेन्द्रः
केन्द्रेऽरिवृद्धिकनिदानभिदामधीशः ॥९३

पुनरमून्बहुमानपुरस्सरं प्रतिविसर्जितवान् विहितादरः ।
विविधरत्नसुवर्णविभूषणैरतिथिसत्कृतिमन्मतिमान्तरः ॥९४

आशास्य चारुवचसां चयैः श्वसारं नयैकचित्तास्ते ।
प्रीत्याभिवाद्य च जयं विनिर्ययुः पत्तनात्तस्मात् ॥९५

गत्वान्तिकं तावदकम्पनस्य नत्वा स्वश्रुः स्वश्रूपतेर्वदित्वा ।
क्षमं गदित्वा च मिथोनुरक्तिं ते नीतवन्तोऽप्यमुकं प्रसक्तिं ॥९६

पुत्रीन्तु सुत्रितसद्गुणं विदुषीं सकाशीराडुडुप–
रम्याननां परिणाप्य सद्विधिनाधुना निपुणात्मजः ।
मानवशिरोमणिरात्मविम्बिनबन्धशर्मण्याशयं,
यशसां पुनस्तरसा समागमपण्डितो जगति स्वयः ॥६७

(पुरमाप जयश्चक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
द्वाविंशप्रथमो जयोदयमहाकाव्येऽतिनव्येऽसकौ,
सर्गस्तेन महोदयेन रचिते यत्कल्पमल्पं हि कौ ॥६८

इति श्री वाणीभूषण-ब्रह्मचारि-भूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये एकविंशतितमः सर्गः



अथ द्वाविंशतितमः सर्गः

अथ भो भव्या भवेन्मुदे वः सारसबन्धुरयं जयदेवः ।
सा रजनी रामा बहुमानं तमनुबभूव च धामनिधानं ॥१
मधुरं वचो हैममुत रङ्गं सातपमत्राखिलमप्यङ्गं ।
शरदमुपेत्य निगरमबलायाः सर्वर्तुमयामोदमथायात् ॥२
घनोदयं कुचमत्युत्तङ्गं मृदुशशिशिरसमवायमभङ्गं ।
यया सुविधया सम्पदाश्रयः समयमन्वयं नयन्नपि जयः ॥३
कापि मधुरता जगत्प्रसिद्धान्वभूयया सहकारमियद्धा ।
सोऽनुत्तरसुखवर्त्मसाक्षिकः विभवमयो रवसम्पदापि कः ॥४
अविकलिताम्बरमणिमयभूषालम्बितापि खलतापतनुः सा ।
पायं पायमधररसमस्य तृषमुदपाद यदाशु जयस्य ॥५
अभ्यन्तररुचाभवत्सपुषः स्थानमिहास्यत्कवचनवपुसः ।
अङ्गमाप्य नान्तलक्षणं सा रेजे गुणगुम्फितप्रशंसा ॥६
विलसद्धारपयोधरभावात्सारसातिशायिसम्पदा वा ।
नवधान्यस्य मुदं सौभाग्यमाजुहाव सहजे न हि राज्ञः ॥७
शस्यवृत्तिमभिवीक्ष्य सदा वा चातक इव चकितस्तृष्णावान् ।
स च शरदमिवेनां भुवने तु सदपघनत्वममुष्याहेतुः ॥८
सुप्रसन्नभावेन हसन्ती सदुरोजातोष्मणा लसन्ती ।
पार्श्वे यस्य पवित्रा वारा सदा स्थितिस्तस्यापि तुषारा ॥९

सापत्नपता यत्र तदेनां जगतां कल्पतरुश्चनिरेनाः ।
नवप्रवालोपादानाय शिशिरश्रियमनुबभूव चायं ॥१०
कौमारं खलु लंघितवत्या नखाच्छिखान्तं जयः सुदत्याः ।
आलम्बितो हितोक्तसमाधावथ का कुसुमशरस्य च बाधा ॥११
त्त्रपोऽभवन्नादिमतेन खररुचिरिपुरिति सम्प्रति तेन ।
परिवारिता सुमध्या वारा संकुचतः कुड्मलादुदारा ॥१२
समुद्रसद्रसनादरतायामस्तु सज्जनाभिनर्मदायां ।
का निमज्य हा निदाघभीतिर्यात्रिलग्नकेवलिप्रणीतिः ॥१३
सजयो महोदयोऽप्यपश्रमं प्रावृषि नाभिदरीमरीरमत् ।
मदनभुवो भववनेऽपि लब्ध्वा पृथुनितम्बभाजो नववध्वाः ॥१४
पद्मिनीं शरदिसोऽन्वभूद्वशी संकुचद्विगुणकुड्मलां निशि ।
सुप्रसन्नमुखवारिजां जयः सौरभावगतवृत्तिमप्ययं ॥१५
उच्चैस्तनमोदकाय सिद्धा निस्वेदया रुचा जगतीद्धा ।
हेमन्तश्रीरिवाभिरामा महीपतेः सा बभूव रामा ॥१६
उच्चैस्तनसानुनानुमातुं मरुतां विस्मयकरी प्रिया तु ।
किमस्तु माघस्याप्यसानं यदि तस्य वियत्रताभिमानं ॥१७
प्राप कौतुकातिशयधरं सच्चित्राख्यातमासिधृतशंसः ।
अनुमदनविकाशं विलसन्तं दारसारमवनौ च वसन्तम् ॥१८
शर्वरीति मृदुचलनासालं चक्रे विस्तृतकरं नृपालं ।
भास्वन्तं भुवि वेशश्चायं जेष्ठो जडतापकारणाय ॥१९
मनोमयूरमुदे साऽपापासरसेङ्कितापहृतसन्तापा ।
चपलापाङ्गकृतचमत्कारा सज्जघनोदयमुपेत्य वारा ॥२०

विशदाम्बरा च मञ्जुलतारा कमलान्वयिभ्रमरविस्तारा ॥
प्रातालङ्कृतमृदूदराऽराच्छरदिवान्वमानितेन वारा ॥२१
मकरकेतुसंक्रमोदितायाशीतश्रीरिव साऽभूज्जाया ।
कमलस्याभावार्थमवश्यं सरसमानसस्यावनिपस्य ॥२२
सङ्कुचति कुड्मलेऽब्जास्या यः प्रससार करो राज्ञश्चायात् ।
हसतीह सतीर्थंजनतायाः सकोचं समये तूपायात् ॥२३
स्पर्शनेनरोमञ्चनभावाच्छिशिरश्रीरिव कम्पनदावा ।
विषमाशुगसाधितसीत्कारपुरस्सरं धृतरदच्छदारं ॥२४
ललितालकां मूर्धभुवमस्यामुक्ताश्रितामुरोजसमस्यां ।
अमृतमयं रदनच्छदबिम्बं लब्ध्वा चाम्बरचुम्बिनितम्बं ॥२५
रामां च द्यामिव च निगद्यासौ सर्वेष्वङ्गे नवद्यां ।
नाकिजनानामपि समृद्धिमुक्तिरियं न तु विस्मयकृद्धि ॥२६
नाकमवापानुष्ठानेन सुदृशमाप्य किमु चित्रमनेन ।
निर्वाणभवं शर्म तथापाद्धं ततयालिङ्ग्यातमपापां ॥२७
सम्मिलदुच्चैस्तनकोकवतीमुषसमिवाप जयस्त्विषां पतिः ।
सम्प्रति कवरीकृतान्धकारामुत्फुल्लाम्बुजमुखाञ्च वारां ॥२८
सदसि यदपि भूभुजां च मान्यः सेवक इव खलु भुवो भवान्यः ।
आत्मानं पश्यतोऽपि नान्यः स नतस्य दृशीति यद्वदान्यः ॥२९
मदनधरा च धरम्भ जयस्य द्वे प्रिये श्रियेऽभूतां तस्य ।
भूभुजे भुजे इवानुवृत्ते तुल्ये सन्निदधत्यौ वृत्ते ॥३०
रोमाञ्चनमालिङ्गनेऽन्तरं योजनवदमानीत्यतः परं ।
दृशि निर्मिषः सम्वत्सरतुल्यः लब्ध्वा ताभ्यां प्रेमामूल्यं ॥३१

वेणूदितसम्पदोऽबलाया गुणमाप्त्वाभूच्चापलता या ।
सरलं तरलं मनोवरस्य यदानङ्गमदहानिकरस्य ॥॥३२
हारमिवाह हृदः पतिमेषा तस्य दृशस्तारेव स देशा ।
सगुणावृत्तकवलं मृदुवेशा जगदानन्दसमुद्भूतये सा ॥३३
अजवपुषा गोपता तथा या महिषीकामधेनुतां साऽयात् ।
अविकलहृदाऽमुना यदापि अविर्नीतां साकुतः कदापि ॥३४
मदनप्रेमसदनयोः साम्यात्संभोक्तुं न शशाक भिदा या ।
सन्दधार साध्वीद्वयमेषा कुचयुगपदि हृदि सापरिशेषात् ॥३५
यद्यपि साऽसीन्महिषीशस्तानावश्यककर्मणि परहस्ता ।
देवीत्युदितापि निजे हृदये स्वां राज्ञीं नान्वभूद्गुणमये ॥३६
तस्मिनसाधुसपर्याधीने तमनु च कारपथीहाहीने ।
देवाराधनसमये वारा ददती तस्मै सोपष्कारान् ॥३७
सेशमर्तिं सायं विधिमग्नामाप्याभूद्गृहकार्यनिमग्ना ।
सपदा प्रजाहितायनयात्री सापि तदोचितसम्मतिदात्री ॥३८
तेजस्विनः करेणापन्नामृत्वणतनुरासीन्सास्विन्ना ।
समुदियायतस्यापदपाङ्गश्चित्रं सोऽभूत्कण्टकिताङ्गः ॥३९
सविटपभावमवाप यदातुलताभूयमालिलिङ्ग सा तु ।
मोदमंदिरे तस्मिन्वालादीपशिखेवाह्लादरसाला ॥४०
खगतामाप यदा सुलक्षणी सहसैवासीत्सापि पक्षिणी ।
तडिल्लतालङ्करणायेव सा यदि मुदिरोऽभूज्जयदेवः ॥४१
जगदुद्योतनाय सति दीपे साभा सा भाति स्म समीपे ।
नरशिरोमणिर्भुवि निष्पापः सापि सदाचरणे गुणमाप ॥४२

अमरहृदो मृदुहारमणीया भवति स्म श्रीमहारमणीयान् ।
समय इवागाद्वाऽरमणीयान् शरदोऽस्य सुधा वा रमणीया ॥४३
परमापरागतोऽपि जयन्तं समधिगम्य समदृशा जयंतं ।
कुसुमलत्रासुसमाश्रयमेषा परिदधनीह स्म रसविशेषा ॥४४
मध्यमवृत्तितयाकरमाप भुवनादधुना सकावपापः ।
कौतुकेन महता मुहुरध्याश्रिता सता समभूच्च विमध्या ॥४५
मोदसमुद्रसमृद्धयें तस्या मृतगुत्वं निदधत्यें न स्यात् ।
किमुद्रयाङ्कुरः परं पवित्रः कामधेनवे तस्यें मित्र ॥४६
कोमलपल्लववती सतीतः सच्छायः स च जयः प्रतीतः ।
अश्रुतपूर्वमुत्सवं व्रजतः स्म लतातरुणाक्रान्ता स्मरतः ॥४७
समहानसत्वमाप नयावत्साहारसं पदमधात्तावत् ।
वीजनंदधरैवमुदारं रसति तु तस्मिन्ननेकवारम् ॥४८
कौतुकतोऽपि करं सन्दधता कराटकितापि ततोनुमृदुलतां ।
तयाशयश्चेत्स्पृष्टुमदर्शिस्मितकुसुमं विटपेनावर्षि ॥४९
तमस्युद्धतत्वेन खण्डितौ नखलेनकिलेनेशितुर्हितौ ।
दोषोज्झितौ कुचाववापतुर्हियेवावृत्तिं सुतनोरिह तौ ॥५०
स्वादिनैव मनसोऽनुभवेन तस्य रतेः कान्तताश्रयेन ।
सुलोचनायामभूद्विचारः इत्युभयोरुत्तमप्रकारः ॥५१
सुधालसत्कृतिमाञ्जयदेवः भो सुमनसोऽस्ति किन्न मुदे वः ।
सौवर्णेन हरिद्रवाराद्वयोपयोगेऽनुराग आरात् ॥५२
नागदलत्वणमाप्तवोदारं सुघावाक्तु सा सखदिरसारः ।
द्वयीत्यसौ समुदितप्रमाणा मुखमण्डनाय सत्पुरुषाणां ॥५३

श्रीर्हरेरुरसि शर्मापश्यत्साद्धं भाव उमयापि मृडस्य ।
सातमाप सरिदम्बुधितुल्यं तत्त्वमत्र खलु जीवनमूल्यं ॥५४
सुरवरवंशमपूर्वख्यातिवनमपि नवनन्दनं स्म भाति ।
पुण्यसदनमिव तयोः सदा वा दम्पत्योः सत्कृतैकभावात् ॥५५
मीनमञ्जुचक्षुषे सुवस्तुजीवनमेव समादधतस्तु ।
भूमिपतेः साचासीन्नवलालोचनखञ्जनाय चन्द्रकला ॥५६
नावान्ता सा नदीजयेन सम्मानिता विचारमयेन ।
सागरमेनमवापामध्यास्थितिस्तयोरित्यसावबध्या ॥५७
न स्वप्नेऽपि हृदोज्झि कदाचिन्नतभ्रुवः कथमस्तु स वाचि ।
कर्मणा तु विनयैकभुजापि व्यत्ययेन यज इत्यथवापि ॥५८
चलनमिहानुभूय गुणधामासनमाप सती राज्ञो वामा ।
अपि मुकुलितकलकमलललामा पद्मिनीव विनतयेऽभिरामा ॥५९
विस्तृतचरितेऽम्बर इव तस्मिन् सद्गुणगणिनीव स्मितरश्मिः ।
जल इव तृडपहारिणीशे तु स्वादुतेव सासीद्रुचिहेतुः ॥६०
समालोचकत्वं दधतीवामुष्मिन्साऽभूद्रूपाजीवा ।
मृदुवादित्रपरायणो सदाप्युच्चैस्तनढक्काशुसम्पदा ॥६१
भुवमनुमातुममुष्मिन् लम्बं साह हेमसूत्रं स्वनितम्बं ।
यदि गुणिनि स्वर्गेऽस्य विचारः निजमम्बरमियमिहोद्धधार ॥६२
मदनद्रुतत्वमभवच्च यतः सदापि कान्तामनुगम्य सतः ।
न कामधुरता बभावुदारात्र कामधुरतामवाप साऽऽरात् ॥६३
वलिसद्मनि तस्य यदा ध्यानं बभारोदरे सा सम्मानं ।
मुक्तालयमीक्षितुमुत्कस्यास्य मुदेस्तनमण्डलं तु तस्याः ॥६४

स्वमयं विश्वमियमिहोन्नेतुम्विश्वप्रेमपरे नृवरे तु ।
सदाशावती सदाशर्मणि तस्य शर्मभाक् किल सवर्मणी ॥६५
उरीकृतापि भुवमलञ्चक्रे वक्रभूः किल विधाववक्रे ।
सर्वाशाभामामीशेन साशातीतमधुरिमा तेन ॥६६
जडलोकसुधारणे प्रचेताः धनदो दीनजनाय विजेता ।
दण्डधरोऽपराधिवर्गे तु तत्परोऽथ शतशः क्रतुमेतुं ॥६७
वीणावती स्वरेण सतोरीकृता तथा सास्मि तेन गौरी ।
हरिणीदृशोत्पादिताप्सरसां चयेनाधरीकृतामृतरसा ॥६८
सकलसन्निधिर्नृपो यदाऽरादप्सरोमयीङ्गितेनावारा ।
सुधारान्वयेऽस्मिं तु सुधाराधरंवाप्यभूत्प्रमोदसारा ॥६९
स तु निजपाणिपङ्कजाताभ्यां परिमातुमिव सुगभीरनाभ्याः ।
मीलनके लोलोचनोत्पले सन्दधार परिणामकोमले ॥७०
सा तूत्तुङ्गकुचतयापि तयात्र निषिद्धाविद्धाथोत्थितया ।
भुजयोर्नवनवकण्टकिततया मुद्रयतु किमीशदृशौ चरयात् ॥७१
सारसकेलिरापि मिथुनेन नदीपुलिनदेशेषु च तेन ।
यदङ्गभासुदिने सति कोक-लोकः प्रापाप्यशोकमोकः ॥७२
उच्चलदविरलकलकान्तिझले वानितायाः कोमले तनुतले ।
पातितमिति जलमपि नाज्ञासीज्जलकेलौ निरतश्च विलासी ॥७३
हीनताननाया अतिपीनस्तनतयापनापि करो दीनः ।
अभिषेक्तुं तावदितस्स्नात आनन्दाश्रुभिरीशो जातः ॥७४
मध्यस्थोऽसिर्वाशय आसीन् सम्प्रति सत्कृता यशसां राशिः ।
भुवो माविते सुगुणादर्शे हितमनुचिन्तयतो राजर्षेः ॥७५

सुगुरुतरोरोजयोर्भरेण मा त्रुट्यतु मध्यः स्विदनेन ।
सुगुरूरुकसन्धृतानुबन्धं सास्य कन्यया व्यधात्प्रबन्धं ॥७६

रात्रौ राज्ञि तु कैरविणीया सस्मितामधुरसा रमणीया ।
साऽलिजने किमु मुद्रणामगात्पद्मिनीति च दिनेऽहो सुभगा ॥७७

विप्लवलवधूस्वरेण सासभ्रान्त्रिप्रभावमापय दासः ।
कर्णधारकत्वं साप परं स यदा चारित्राख्यानकरः ॥७८

तरणिर्नवप्रभावत्वेन ससाभुववभानिनीगुणेन ।
जडधीति विधाकरः स सुमना अपि सा सुसज्जनौकस्तवना ॥७६

तामुच्चैस्तनकुम्भां च धरन्संचतुं वारिपु स धीवरः ।
कलाधरे रुचिमाप सुवासाः कौमुदाश्रिताभूद्रचिरासा ॥८०

तं खलु विशेषकायानुमतं केशरमाहुः सुमनस्सुहितं ।
नाभिभवां च मरुद्भिः शस्ताकस्तूलिकां विदेहजनस्तां ॥८१

जात्यावृत्तेनापि लसन्तौ सालङ्कारतया खलु सन्तौ ।
सार्द्धविरामावत्र जम्पतीश्रीच्छन्दसी गुणेन सम्प्रति ॥८२

जयः स्तभः सुवृत्तत्वाद्गार्हस्थ्यसद्मनोऽघृणी ।
अभ्यागतस्य विश्रान्त्यै साच्छायेवोपकारिणी ॥८३

माणिक्यनन्दितामाप सप्रमाणिपदेष्वित ।
सम्मानिता शुभार्याणां सा प्रभाचन्द्रसत्कृतिः ॥८४

सदेवागमसंख्याता सा विद्यानन्दमत्कृतिः ।
अकलङ्कस्य यशसः प्रतिष्ठानाय यन्मतिः ॥८५

तत्पादपद्माग्रलगत्परागिणी सासीत्तु सन्ध्येव सदानुरागिणी ।
विश्वैकभानोरुत सुप्तशायिनी पूर्वप्रबुद्धेति किलानुयायिनी ॥८६

गद्यचिन्तामणिर्वाला धर्मशर्माधिराट्परं ।
यशस्तिलकभावेनालंकरोतु भुवस्तलं ॥८७

सुमनस्सु वसन्तं च पवित्रं प्रतिजानामि जयं गुणिमित्रं ।
सारम्भाप्सरस्सु सद्पघना संबभूव परमब्जलोचना ॥८८

जयः कराशीराजितो वारोचितात्र सापि ।
कविताश्रयदोहानयेऽघस्य श्रमो ममापि ॥८६

जयः समुद्रः समुदायिभावादियं घटोघ्नी गुणसम्पदा वा ।
मायान्वयाचारितया च वारिप्रचारिताप्यत्र रयाद्धारि ॥६०

मिथुनमिति भवत्प्रणयमुत्सवस्थले घृतसितावद्वगतहितं ।
प्रतिपद्य विभवममुकस्य पुनः नयामि कथने प्रणवमुत च नः ॥६१

(मिथःप्रवतनमिति चक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
निर्याति द्व्यधिकोऽपि विंशतितमः सर्गोऽत्र भो सज्जन,
श्रीवीरोदयसोदरं शुभतमः शर्मैकसंसाधनः ॥६२

इति श्रीवाणीभूषण-ब्रह्मचारिभूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये द्वाविंशतितमः सर्गः

अथ त्रयोविंशतितमः सर्गः

समर्प्य राज्यं विजयाय नाकुलोऽनुजाय चामुत्र हितान्वितान्तरः
प्रजाप्रियोपायपरः प्रियाश्रयाभिमपहर्षेण सुखी व्यराजत ॥१

भयापहारिण्यमुकस्य शासने बभावपीयं प्रभयान्विता प्रजाः ।
अनारतं नीतिवलप्रचारकेऽप्यनीतिभावः प्रसृतोऽभवत् क्षितौ ॥२

अमित्रजिन्मित्रजिदोजसा भृशं विचारदृक् चारदृगप्यवर्तत ।
न सन्निधौ मग्नमनाश्च सन्निधिप्रियश्च सम्वेगधरोऽपि वेगजित् ॥३

गिरं विचारेण गिरा श्रियां श्रिया सुलोचनामात्मवशं नयन्नयं ।
मिथः प्रतिष्ठाप्रदया दयाश्रयस्त्रिवर्गशक्त्या स रराज राजराट् ॥४

मुखारविन्दे शुचिहासके शरेऽलिवत्स मुग्धो मधुरं मृगीदृशः ।
प्रसन्नयोः पादसरोजयोर्दृशं विशोष्य पद्मापि जयस्य सम्बभौ ॥५

शाकल्यभाजहविषानतभ्रुवोरतीशयज्ञे सुरतीर्थनायकः ।
निजानि पञ्चायतनानि तर्पयन्नवाप पापं नमनागनाकुलः ॥६

सुलोचना कान्तिसुधासरोवरी रसैरमुष्याः परिणामकोमलैः ।
वहन्त्वभावङ्कुरितां वपुर्लतां सदैव मुक्ताफलपूरितां जयः ॥७

वधूमुखेन्दोः स्मितचन्द्रिकाचयैर्जयस्य नक्तं च दिवा च भूपतेः ।
स्वयं प्रजायाः कुशलानुचिन्तनैर्बभूव तावत्समयः समन्वयः ॥८

महामनास्सौधशिरोऽधिरोहितो हितोऽभितो यौवतसेवितः स्वतः ।
प्रजाजनानां सजयोदयोज्ज्वलः सुखेन खेनाथ रराज राजघः ॥९

नभः सदा शर्मकरश्चरन्नरं विहायसा व्योमरथोवलोकितः ।
प्रभावतीत्युक्तवचा विचक्षणो मुमूर्च्छ जातिस्मरणं जयो व्रजत् ॥१०
जयोऽथ जातिस्मृतिमेव तां प्रियामलब्धपूर्वामिव सुन्दरीं श्रिया ।
किमेषु रन्तुं परदाभिदां ह्रिया बभार मूर्च्छामपि चावृतिक्रियां ।११
सुदृक्सदृक्षीं युवतिं ह्युपेयुषः क मादृशी वृद्धतरेत्यहो रुषः ।
स्थलं न वा स्यादिति वासनावशस्त्वनन्यचेता भुवमालिलिङ्ग सः
श्रवद्रवेणास्थपुटेन चोरसः कृतेन लौकैर्मलयोद्भवैधसः ।
नृपस्य सन्तापतमासहिष्णुना विभिन्नमाराच्छतशोऽमुनाधुना ।१३
किमेतदेतत्प्रतिबोधनत्वरासुयष्टिवत्सम्पततोऽस्य सन्धरा ।
बभूव चित्तस्य गरुन्मतो जवे जनेषु सैवोद्भमनैकहेतवे ॥१४
शरीरमेतत्तमसोदरी पुनरगाच्च गां व्युत्थितवर्तिवेश्मनः ।
तदुत्थधूमा इव कुन्तलाश्चला विरेजुरे तस्य विभोर्मरुद्बलात् ॥१५
करं क यासीति तु कोऽप्यधादरं त्वरौ व्रजत्प्राणरुरुत्सया परः ।
किमागसा रुष्टमिपत्पदौ पुनरिति स्म सम्मर्दयतीतरो जनः ॥१६
मदेकनाम्नोऽपि विधोरुचं निधेर्दशा शुशोच्येयमहो वशाद्विधेः ।
द्रवीभवस्तत्परिचेतुमागतः किलाब्दसारः परिवारितावृतः ॥१७
इहैव जातिस्मृतिमाश्रितामति-परावृर्तिं प्राप सुलोचना सती ।
विलोक्य पारावतजम्पतीरतीत्युपांशु मुक्त्वा वरनाम सम्प्रति ॥१८
अभूत्समायामनसोऽतिकम्पकृत्तदत्र कष्टेप्यतिकष्टमिष्टहृत् ।
यथैव कुष्ठे खलु पामयाऽजनि अहो दुरन्ताभवसम्भवाऽवनिः ॥१६
स्थितिः सतामेवमधीरता ह्रियाः विचार्यतामेव पुनः प्रतिक्रिया ।
कुतो विपत्तेस्तरणं भवेत्क्रिया तत्र भियुक्ता जनताऽगदाश्रियां ।२०

साऽभूत्वरासम्वरितस्वरायाः प्राणान्विदुगच्छत उज्वरायाः(?) ।
तदावचेतुं परितः प्रवृत्तिः सखीषु सख्यं व्यसनेऽनुवृत्तिः ॥२१
तदाथ तस्यै व्यजनः विनीतं कयाश्वसनर्पयितुं प्रणीतं ।
सन्तापमेका ःवपने तु माराद्दाविदार्नी हिमसारधारां ॥२२
कयैकिकाराजरमेति तन्तुमनोऽनयाऽकारि समन्तु गन्तुं ।
रेमे पुनः प्राणकणानिवान्याऽवचेतुमःयाश्च कचान्वदान्या ॥२३
पयोरुहालीपरिपूरितालीकुलैस्तगालीभनदङ्कपाली ।
म्लानं तदीयास्य कुशेशयं सा मुमूर्च्छ मत्वैव समानवंशा ॥२४
त्वया स्मृतः सोऽयमिह प्रशस्तौ येनापि तौ कुड्मलतोऽत्र हस्तौ ।
उरोजयोर्न्यःतपयोजयोगः ःवचेष्टया निर्वचनोपयोग ॥२५
स्फुटेऽपि तत्त्वे तु निमुह्यते मतिर्न दुर्विधानां किमितीष्टसम्मतिः ।
मयाप्यतेऽत्रैव पुनः प्रसज्जनमहोज्वरीत्तीरमियाद्विपं जनः ॥२६
बाल्ये चापल्येन यत्सहकृतं केनापि सम्वेशिना,
तन्नामस्खलनैकधामदुरितं संगाढ़सन्देशिना ।
तस्यैषा छद्रिरेवमाप दिगतिर्धौ र्येन क्लप्तारया-
त्सन्नच्छन्नन एव यौवतमिदं संघोषयन्‍याऽनया ॥२८
तदन्यनारीनिकरः करोन्यसौ सहाथ पत्न्या विनिपातकैतवं ।
परस्परप्रेमपरा व्रतेहयाहपायमानेति मन यतर्कयत् ॥२६
बभूव तस्या मनसोरसोधवं प्रतीह यावत्सुभगं पुराभवं ।
विनिर्ययौ चित्तदनन्यसेविका पिवातमन्त्रेष्ठमिवाधिदेविका ॥३०
चिदुभयोः शुभयोगवशान्नृणां समुदियाय निमज्य समुत्तृणा ।
निभृतमेवमयोनिपयोनिधावथ च कौतुकिकौतुकि यद्विधा ॥३१

य इमां प्रसिस्नादयिषुर्नरपः स कुतोऽपि भवत्यधुनाऽधरपः ।
खलु दोषगणोपि गुणो हि भवेभिरतायसमिष्टजनस्य भवे ।।३२
निजां तनुं त्यागभितः सभामनुसतां तमेषा च गुणोल्लसज्जनः ।
दशेति तौ साचिगतौ निरीक्षणं न वाचि साचिव्यमवापतुः क्षणं ।।
तदापवित्त्वं सतदात्मशुद्धितः श्रुतं च दृष्टं क्व कदाप्यबुद्धितः ।
तथा न शास्त्रेष्वपि लभ्यते मनागहो महो भातु सदा सदात्मनां ।।
स्वभूतजन्मोत्थकथा यथावरा बभूव चित्रोल्लिखितेव गोचरा ।
तया स सम्प्रापदगर्भसम्भवं भवान्तरं प्राप्त इवाधुना नवं ।।३५
क्व सा प्रियाथाहृतजातसंस्क्रिया पुनर्मनोऽस्याप्यनुभावितं ह्रिया ।
महात्मनामप्यनुशिष्यते धृतिरहो नयावद्धिनिरेति संसृतिः ।।३६
तदेकसंदेशमुपाहरत्परमुपेत्य बोधो वधिनामकश्वरः ।
अहो जगत्यां सुकृतैकसन्ततेरभीष्टसिद्धिः स्वयमेव जायते ।।३७
अतानि तेनावधिनात्र संक्रमस्त्वनन्य एवाभिनयो भवत्तमः ।
यदङ्कुरोत्पादनकृद्घनागमः फलत्यहो तत्र शरत्समागमः ।।३८
वपुषास्तु च भिन्नता सदा न हृदा किन्तु कदापि सम्पदा ।
निरुवाच समं समुद्भवन्नवधिस्तेन सुचक्षुषो नवः ।।३९
यदसिश्वदहो भवस्मृतिः सुदृशस्तत्र सदाशिकावति ।
हृदि सम्पदि वाथदीपकः समभात्सोऽवधिरप्यहीनकः ।।४०
ममापि मे मण्डनकस्य शस्यते मनोऽन्यजन्मादि यतः समस्यते ।
अहोरहोऽदस्तु महोत्सवाय नस्तयोरभूदित्यनुशासनं मनः ।।४१
सुदृक्परान्तः प्रतिवेदको भवन्सुधीः सुधीरो वसुधावधूधवः ।
निजीयजन्मान्तरवृत्तपूरणे प्रियां स्म संप्रेरयतीष्टभूरणे ।।४२

वचोऽपि तस्या गुणभद्रभाषितं सितं तु सापत्न्यमनोगतं द्रुतं ।
चकर्ष मालिन्यमलिन्यपेदितं तदा ह्ययस्कान्त इवायसोंऽशकं ॥
अहो सज्जनसमायोगो हि जगतामापदुद्धर्ता ।
इतः शुश्रूणवेस्सभ्या प्रश्नकर्ताः स्वयं भर्त्ता ॥४४
विदेहपुण्डरीकिण्यामिहैव वृषानुरागिण्यां ।
एनसः संविरागिण्यां बभूव विभोः शुभावार्ता ॥४५
कुबेरस्य प्रियो नाम्ना धनीयति दत्तिकृद् धाम्नां ।
पतिः प्रतिसम्मतिः साम्नां सदारो धर्मसंधर्त्ता ॥४६
रतिवरः किंच रतिषेणाकपोतवरद्वयीमेनां ।
ररक्ष सुरक्षणोऽनेनास्तदापच्छापपरिहर्ता ॥४७
एकदा भ्रामरीं दृष्ट्वाऽत्रागतौ तौ ऋषी हृष्ट्वा ।
भवस्मृतिमित्यतः सृष्ट्वा तयोस्समयो दुरितहर्ता ॥४८
पुरा जनु रागताप्रीतिः प्रवुद्धतया पुनः स्फीतिः ।
प्रसन्नतया तथाधीतिर्गणोऽयं सर्वशुभभर्ता ॥४९
ब्रह्मचर्यं समारब्धमितो भवतो भयो लब्धः ।
नृभवयोग्यो विधिर्द्दब्धः समन्ताच्छान्तिपरिकर्ता ॥५०
धर्मः खलु नर्महेतुरीप्स्यते जनानां
किरिरेव समस्तु हरिर्यस्य सन्निधानात् ।
प्राप्तोऽथ हिरण्यवर्मनाम रतिवरः सशर्म,
प्रभावती सा च धर्मकर्मसम्विधानात् ॥५१
तद्गतखगसानुमति ह्यादित्यगतिर्नृपतिः ।
शशिभायुवतिश्च सती तयोस्तुक्सवाना ॥५२

अपरोऽत्र नृपः समभाद्वायुरथः स्वयंप्रभा ।
राज्ञी चैतयोः प्रभा-वती जायमाना ॥५३
सम्भुक्तमनुष्यभवे या विसतो सुभटरवे ! ।
पितरावितरौ तु नवं तीव्यते स्वमानात् ॥५४
दाम्पत्यमुपेत्यतरां विभवाधिगतिं प्रवरां ।
लब्धागुणततिः परा शान्तिसम्वितताना ॥५५
एतावन्तकदेशिताविव गतौ सम्पादितुं सम्वलं,
जम्बूनामपुरे परेद्युरिह तु व्यापाद्य मानावलं ।
प्राग्जन्मप्रतिवैरिणा मृतिमितो तत्रागते नौ तु ना,
प्रारब्धं ह्युपलभ्यते ननु जनैर्भो भो जवेनाधुना ॥५७
तव मम तव मम लपननियुक्त्याखिलमायुर्विगतं ।
हे मन आत्महितं न कृतं ॥ हा हे मन० ॥ स्थायी० ॥५८
नव मासा वासाय वसाभिर्मातृशकृतिसहितं ।
शैशवमपि शवलं किल खेलैः कृतोचितानुचितं ॥हे मन० ॥५९
तारुण्ये कारुण्येन विनोद्धत्यमिहाचरितम् ।
मदमत्तस्य तवाहर्निशमपि चित्तं युवतिरतं ॥ हे मन ॥६०
प्रोढिं गतस्य परिजनपुष्ट्यै शश्वत्कर्ममितं ।
एकैकया कपर्दिकया खलु वित्तं बहुनिचितं ॥ हे मन०॥६१
स्मृतमपि किं जिननाम कदाचिद्वार्द्धक्येऽपि गतं ।
विकलतया हे शान्ते सम्प्रति संस्मर निजनिचितं ॥हे मन०॥६२
रट झटति मनो जिननाम, गतमायुर्नु दुर्गुणग्राम । स्थायी
आशापाशविलसतो द्रुतमधिकर्तुं धनधाम ।
निद्रापि चद्रा भवद्भुवि नक्तं दिवमविराम ॥गतमायु० ॥६३

पुत्रमित्रपरिकरकृते बहुपरिश्रममतोऽतिललाम ।
रामानामारामरसतो हसतो वाश्रितकाम ॥गतमायु०॥६४
परहरणे भरणे स्वयं पुनरनुभवता दुर्नाम ।
अयशःपरिहरणाय दत्तं त्वया तु नैकविदाम ॥गतमायु०॥६५
बहु वलितं गलितं वयो रे सम्प्रति पलितं नाम ।
अलमालस्येनास्तु शठः ते स्वीकुरु शान्तिसुधाम ॥गतमायु० ॥
माया महतीयं मोहिनी जनतायां भो माया । स्थायी
भूरामाधामादिधरायां हृतसातङ्कजरायां ।
यतते परमर्मच्छिद्दिरायां करपत्रप्रसरायामिह जनताया भो माया
विषयरसाय दशा सकषाया शोच्या खलु विवशा या ।
गजवत्कपटकृताश्रमुकायां प्रभवति बहुलापा या ॥इह०॥६८
मित्रकलत्रपुत्रविसरायां परिकरपरम्परायां ।
जरद्गवः कर्दमितधरायामिव सीदति विधुरायां ॥इह०॥६६
रता द्विरक्ताप्युनुरतिमायात्येषा जगत इच्छा या ।
ततो विरज्य पुमानमुक्तायां किमिव न शान्तिमथायात् ॥इह०॥
सौभाग्यशाली सुतरां यशस्वी वर्माथ शर्मार्थमभूत्तपस्वी ।
एवं जगत्तत्वमहो विचार्याप्यासीत्प्रभावत्यधुनामलार्या ॥७१
एतौ तपन्तौ समवाप्य विद्युच्चौरो रुषाप्लोपितवान् परेद्युः ।
भवान्तरारिः स्वरितौ च किन्तु महोजनास्सत्तपसा व्रजन्तु ॥७२
अथान्यदा स्वैरितया चरन्तौ संजग्मतुः सर्पसरोवरं तौ ।
प्रबुद्धय यत्रात्महिते विभूतिमेतां समेताविह शर्मसूतिं ॥७३

भूत्या जगच्चित्रमथाश्रयन्तं विभूतितः केवलमाह्वयन्तं ।
मुदं गतौ वीक्ष्य ततस्तपन्तं स्वमूर्तितः शान्तिमुदाहरन्तं ॥७४
दुरिङ्गितान्मैव समस्ति भीतितदन्यतः सैवमलं तु नीतिः ।
पराक्रमो यस्य तपस्यसीमस्त्रिरुच्चरन्तं स्वमतस्तु भीमं ॥७५
त्वत्ता च मत्ता पुनरत्र ताभ्यामागत्य हे देव सुदेवताभ्यां ।
स्वर्गाभिसर्गात्सुकृतैकवर्गादवाप्यते किन्न पुनीतसर्गा ॥७६
सौकान्ते भव देव एव च पुनः कापोतकेऽप्योतुकः,
हारिण्ये च भवे तवेश समभूद् विद्युच्चरः कौतुकः ।
स्वर्गीये त्वयि भीमनाममुनिराड् योऽसौ भवोच्छेदकः ।
सत्वानामिह संसृतौ परिणतेर्वैचित्र्यसंदेशकः ॥७८
सदा हे साधो प्रभवति असुमतिकर्म ॥स्थायी॥७९
कः खलु हर्ता को भुवि भर्ता कस्य विना निजकर्म ॥सदा हे०॥
भुक्तमिवोक्तममुष्य फलष्यति यदपि भवत्यपशर्म ॥सदा०॥८१
दुरितादुर्गतिमेति जनोऽसौ शुभतो विलसति नर्म ॥सदा०॥८२
भूरान्मन्यदि नैव रोचते सम्वरमुपसर वर्म ॥सदा०॥८३
दैवज्ञाऽन्यजनीषु च तासु संदेहोभ्युदियाय यदाशु ।
भर्तु रिष्टमुपलभ्य ससारं भावस्पष्टिमिति प्रचकार ॥८४
मिथोऽभिवर्द्धमानतः स्नेहादेवमुदारमुदाऽरमनेहाः ।
चन्द्रकतार्णवयोरिव याति तावदिहास्तिकयोप्यनुयाति ॥८५
स्वीयनभोगजनुष्यनुनीता विद्या अद्यागत्यविनीताः ।
सुकृतवशाः कृतिनोप्रणिपत्य दास्यमेतयोः स्वीकृतवत्यः ॥८६

वियोगदूनादयिता इवोररीकृतानृता तीर्थकृता महीभृता ।
सनाथतां प्राप्य गताः कृतार्थता-
ममुष्य वश्या अपि कामसिद्धये ॥८७

सत्कार्यसाधिकाश्चापि पथभ्रष्टा इवालिकाः ।
सुदृशा सुदृशादृश्य ता विद्याः सफलीकृताः ॥८८

हृदि प्रेमदुरासाद्य विस्मृताविव तावुभौ ।
ललाटलतिका चूडामणी ताः सुतरां शुभौ ॥८९

यदीयविद्या मुकुरायतेतरां परा पुराजन्मचरित्रवंदने ।
निवेद्य चोद्यं चतुरा तु राज्ञिका मनोविनोदं नयति स्म भूभुजा ॥९०

एतादृगिद्धविभवेऽपि भवेऽध्रुवत्वं
मत्वा पतुर्न च मनाङ् मनसा ममत्वं ।
धर्मे दृढावुत सुतत्वमवाप्य सत्वं
स्थाने मनःप्रणयनं हि भवेन्महत्वं ॥९१

हे नर निजशुद्धिमेव विद्धि सिद्धिहेतुं ।
परथाजलसम्मिलोडनास्तु सर्पिषे तु । स्थायी ॥९२

सात्यकिरतपुत्तरां देवी सम्पश्च परा ।
लब्धा खलु मुग्धतरा चित्तदागने तु ॥ हे नर० ॥९३
मसकपूरणोऽपि यतिः समभूच्च तथाज्ञमतिः ।
उद्धतामथापगतिं भगवदागमे तु ॥ हे नर० ॥ ९४

तुषमाषवदज्ञविदोश्शिवघोषमुनिः सभिदो ।
न किमाप रहस्यमदो-भवसमुद्रसेतुं ॥ हे नर० ॥९५

भरतो जगदीशत्युतोऽखिलभूराज्येऽपि गतो ।
निजतत्त्वपथे निरतोऽन्ते शिवं चणे तु ॥ हे नर० ॥९६

दम्भातीतं कृत्वा मनोविशदभाविपथि वै पद्मासोमसुतौ सत्यारम्भं।
तिष्ठतः स्म सद्धर्मभावना सद्भावात्तारादुदर्पापकृतितावि‍भौ
भव्यौ वा ॥९७

(षडरचक्रबन्धः)

(एतस्य प्रत्यराग्राक्षरैःदम्पतिविभवा इति सर्गविषयसूची स्यात्)

स श्रीमान् सुपुत्रे चतुर्भुजवणिक् शान्ते कुमाराह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरीदेवी च यं धीचयं ।
विंशत्याग्निसमर्थनो जनमनोहारिण्यसौ निर्गतः,
दिव्यज्ञानविभूतिभर्तरि समुत्सर्गो निरुक्ते ततः ॥९८

इति श्री वाणीभूषण-ब्रह्मचारि-भूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये त्रयोविंशतितमः सर्गः



अथ चतुर्विंशतितमः सर्गः

अथात्र विद्या विशदानियोगिनीः क्रियाः प्रशस्तां सुरतोपयोगिनीं ।
प्रभावितुं भाविनमानसोऽभवन्नवा इवासाद्य स वा भुवां धवः ॥१

अमूः समासाद्य चमूपतिः किलाधरमदेशे रमते स्म नित्यशः(?) ।
सलीलमुच्चैस्तनपर्वतेष्वसौ यदृच्छया सज्जघनस्थलीष्वपि ॥२

जयोऽर्द्धयुक्ते कृतवान् गमं समं समन्तरीपद्वितये तयेहितः ।
हितस्य वेत्ता प्रिययानया नतिर्नतिं सतीर्थेषु निजां समर्जयन् ॥३

विहाय सासौ विहरन्महाशयः शयद्वयं संकलयंश्च सावलः ।
बलप्रभुश्चैत्यनिकेतनं प्रति प्रतिष्ठितो मेरुगिरौ विभाविहा ॥४

परीतपीताम्बरलुप्तदेहरुक् करद्वयी प्रापितचक्रकम्बुकः ।
विराजते विष्णुरिवाजतेजसा गिरौ रवीन्दू द्वयतः स उद्वहन् ॥५

पयोधराभोगसुयोगमञ्जुलां तटीं समन्ताद् हरिचन्दनाश्रितां ।
गिरीश्वरः सेवत एव सत्तमां निजार्द्धदेहानुमितां तु पार्वतीं ॥६

अथापि जम्बूपपदेऽन्तरीपके स एव सम्यक् खलु कर्णिकायते ।
विदेहदेवोत्तरदेशपत्रकैः पयोधिमध्ये श्रिय आसनायते ॥७

चतुर्गुणीकृत्य जिनालयानसौ सदातनान्दिक्षु महाजनाश्रितान् ।
जिनश्रियः शोडषकारणानि वै बिभर्ति भव्यानि च तानि सर्वदा ॥८

यदन्तिके द्वौ द्विरदौ विमुञ्चतो जलोरुधारामपि नीलनैप्रधौ ।
रवीन्दुबिम्बे द्वयतोऽब्जदर्पणे वहन्नसौ तल्लभते रमाकृतिं ॥९

तथैव सव्येतरनीलनैपथः सटायमानोडुपरम्परः परं ।
गिरीः सनीलाम्बरपीतवाससो विरञ्चिपुत्रस्य विभर्ति सच्छविं ॥१०
भियेव भव्यो भवभावितच्छलात्स्वयं महोद्यानचतुष्टयच्छलात् ।
सुवृत्त एताः परिवर्तिताकृती विभर्ति धर्मार्थनिकामनिर्वृतीः ॥११
सुकीर्तिगंगा जननाधिकारिणोऽथ देवतासम्भवनैकपूरकान् ।
ययौ समुद्यत्सवनाभिसातिकान् कुलाचलानेष कुलाचलानिव ॥१२
स्म राजते राजतपर्वतान् यजन् सुरासुराराध्यपदाननापदी ।
स्वनामवृत्त्यर्द्धतयातिवल्लभान् धरावधू हासविकासभासुरान् ॥१३
द्विदन्तदन्तान् स्म स वन्दते मुदा मुदारवत्तारगिरीनुताश्रयः ।
श्रयन्निपूर्वीधरणान्दयापरः परत्र तीर्थेऽपि च सन्दधद्विदं ॥१४
धराधवोऽवन्दत मानुपोत्तरं जगत्प्रसिद्धाखिलमानुषोत्तरः ।
महीभृतं सत्कटकानुकारिणं सधर्मभावादिव वल्लभं विदन् ॥१५
विहृत्य चान्या अपि तीर्थभूमिकाः सुसंकुचद्दुष्कृतकर्मकर्मिकाः ।
मनः पुनस्तस्य बभूव भूपतेर्महामतेः श्रीपुरुपर्वतार्चने ॥१६
प्रतिच्छविं हन्ति तिरोनिजाङ्गजां गजाधिपोऽद्रेः प्रतिदन्तिवित्तया ।
तया रिरिंसुः सुशिलासु सम्वशाद्वाशाशयाभुग्नरदः स सम्प्रति ॥१७
भ्रमन्ति ये यत्परितो मदोत्कटाः कटाश्रयन्ते ननु चेतनात्मनां ।
मनांसि सेवार्थममुष्य पर्वतावतार उर्वीप्रपतेरिति भ्रमं ॥१८
निवारितातापतया घनाघना घना वनान्ते सुरतश्रमोच्छिदः ।
भिदस्तु किं वा निशि सङ्गतात्मनां मनागपि प्रेमवतामुताहि वा ॥१९
समस्ति शिल्पं यदयं स्वयम्भुवो भुवोर्द्धमर्द्धं नभसोऽपि संचयात् ।
चयाश्रयो भूरिदरीमयोऽसकौ सकौ पुनः कोऽस्य गिरेस्तु यः समः॥

निजीयनानामणिमण्डलांशुभिर्दिवौकसामीशधनुःश्रियं प्रियां ।
समातनोति प्रभुरेष भूभृतां स्वयं समापन्नपयोदमण्डले ॥२१
क्वचिन्महानीलमणिप्रभाभरे जलाकुलाम्भोदसमूहशङ्कया ।
अकाण्ड एवाथ शिखण्डिमण्डलस्तनोति नृत्यं मृदुमोदमेदुरः ॥२२
स्फुरन्ति नित्यं सुमणीमरीचयोऽमरीचयोऽपत्रपतां श्रयत्यतः ।
निजः प्रसङ्गेऽपि निजासुपर्वणां सुपर्वणां यस्य गुहासु निष्ठितः ॥२३
इतस्ततः सच्चमरीचयच्छलात्सुचारुनीहारविहारभासुरम् ।
परिभ्रमन्मूर्तिमदुत्तमं यशो बिभर्ति नित्यं धरणीधरेश्वरः ॥२४
सुनिर्मलेऽमुष्य तटे क्वचित्क्वचिन्निपत्य गुञ्जाभृशमुत्पतन्ति याः ।१
विभान्ति भव्यस्य किलान्तरात्मनि समुद्गता रागरुपोरिवाशकाः२५
दरीमुखात्सम्प्रति वार्दरीमुखातरङ्गिणीगैरिकजातरङ्गिणी ।
समुद्धतेः पत्रिण आसमुद्गतेः क्षतिं गतेवाशनिनास्य पक्षतिः ॥२६
परिस्फुरच्छ्यामलताभिरन्वितः सुवर्णवर्णोऽपि च पाटलाश्रितः ।
सुलोहितः सद्धवलोऽपि पर्वतः परिस्थितिर्मेचकितास्य सर्वतः ॥२७
दिनात्यये प्रावृषि वारि वर्षति सति स्वसा नावनुपाति भव्रजं ।
व्रजन्ति विद्याधरकन्यकाः पुनः पुनश्च यस्मिन्करकेति नंदिना ॥२८
रुषाङ्कितह्लादिनिकोऽपि सोप्यसौ शिरस्स्रवामुष्यामृतपूरमर्पयन् ।
पुनः सदोश्रोत्तमतूलकल्पनो बिभर्ति कारुण्यकर्मैव देवराट् ॥२९
स्मरद्विडद्रिः खलु जंतुमुत्तटस्तटान्तर्लग्नवलाहकावलिः ।
वलिद्विषः पत्तनमात्तपक्षतिः क्षतिं निजां तेन कृतामनुस्मरन् ॥३०
गङ्गाम्बुशुम्भत्पुरुपर्वतन्तु तं क्षीरोदपूरोदरचिम्बमन्थरं ।
मन्ये सुरेभ्यः खलु तत्तदर्पणा पुण्येन कृत्वा यशसा सितीकृतं ॥३

सुरापगापूरमदूरवर्तिं यत्समन्ततः कुण्डलमेव मण्डनं ।
गिरिं निरीक्ष्यापि सुधाकरोपमं रसोदयाकांक्षि मनो मनस्विनां॥३२
जनैरविच्छिन्नतयापकर्षणात्स्वसारभारस्य निरस्यदङ्कतां ।
विलुप्तशून्यां लघुरीतिलक्षणं विशेषयत्येणगिरिर्दरिद्रतां ॥३३
तमप्यधिष्ठानमहीधरं पुरोः पुरो गतं योऽथ यशोऽङ्कमस्पृशन् ।
स्पृशत्सुरावासममन्दमन्दं ददर्श पद्मापतिरुत्तमोत्तमं ॥३४
निभाल्य शीतांशुमिवेममुज्वलं बलप्रभोराविरभूद्गिरस्तदा ।
तदाननात्संव्रजतोऽधुनामुदमुदन्वतः श्रीमत उर्मिसन्निभाः ॥३५
बिभर्ति रीतिं महतीं मृगेक्षणे क्षणे नियुक्तो बहुलोहगोचरः ।
चरन्नितोऽष्टापदसम्पदं धरोधरोदये राजत भालसन्निभः ॥३६
असौ हिमारातिविवस्वतो गतिं हिमालयो वारयितुं समुद्धरन् ।
उपर्युपर्य्यम्बुमुचो दृषद्रुचस्समुन्नतोभ्युन्नयतीति सुन्दरि ॥३७
परिस्फुरच्छ्रीमणिमेखलाञ्चिता बिभर्ति या सम्प्रति सालकाननं ।
असौ महाभोगनियोगिनीगिरिस्तटीतुलां ते प्रकटीकरोति भोः ॥३८
महत्त्वमासाद्य महीभृतां च ये विराजते भूमिभृतामधीश्वरः ।
हिमच्छलात्प्रापितमूर्तिनाप्रिये निषेव्यतेऽसौ यशसा हि नित्यशः ३९
अपामपायाद्धवलावलाहकावलिः सुखात्सम्वृतिका विलोक्यते ।
सुरैरमुष्मिन्विवृतेऽपि पर्वते स्वयं सयोपैः सुरताभिसन्धिभिः ॥४०
मणीनिहान्तः सहसानि गोपयन् शिलातलानि प्रकृतानि दर्शयन्
दरीभृदभ्यागतनुः परस्परं सुकेशिकूटस्थतया विराजते ॥४१
झरैरविच्छिन्नतिपातशालिभिर्महीभृतामीशतयायमीष्यते ।
परिस्फुरद्भिर्विशदैर्ध्वजांशुकैरिवातिमात्रोन्नतिमन्नितम्बिनि ॥४२

समाप शस्त्रेण सता शतक्रतोरयश्च मुग्धे महतीं हतिं पुरा ।
व्रणानि नानोपहतानि जन्तुभिर्विभान्ति भो गह्वरनामतोऽधुना ४३
पविच्छविं देवपतौ प्रदर्शयत्ययं पुनः स्विन्नतनुर्भयाढ्यतां ।
सगैरिकाम्भोभरदम्भतो गुहामुखाद्विनिर्यद्रसनो व्यनक्ति भोः ॥४४
सुकेशि उन्मुद्रय मुद्रणां गिरां सुधाकरात्त्वद्वदनादनाविलां ।
इहेत्तुदीक्षागुरुगौरवास्पदां नियच्छपिच्छां मम तृप्तिकारणं ॥४५
प्रसारयामास समात्तसम्भ्रमप्रिये ह्रियेदत्तसुविभ्रमाक्रमात् ।
सती सतीर्थ्या मधुनोऽथ भारतीरतीति हेतुं श्रियमेव विभ्रती ॥४६
गिरीश्वरः सोमसमृद्धभालभृत् त्वमस्ति सेयं गिरिजापि जायते ।
सुरापगास्पर्द्धनकारिणी गुणैर्मदुक्तिमुक्तावलिका तव प्रिया ॥४७
किमु प्रजादुष्कृतभस्मसञ्चयः किमादिसूनोः सुकृतोच्चयोदयः ।
भवद्यशस्तोमसमन्वयो ह्ययं घनायितः किन्नु विधोः सुधोदयः॥४८
अनर्गलौद्धत्यव्रते महीपते कुतः कुजातीन् शतशः पलाशिनः ।
स्वपल्लवैः स पथसम्विरोधिनोऽधिकुर्वते भूमिभृते न ते भयः ॥४९
अमुष्य भूभृत्त्वविधायि चामरानुपानतुल्यः शुचिनीरनिर्झरः ।
किमस्ति नः स्वागतसम्विनोदिनो
जिनोक्तिभृद्धासविकाश एष भोः ॥५०
अधस्तनारम्भनिरुद्धभूतलः प्रयाति कूटैः पुरुहूतपत्तनम् ।
कुतः सरन्ध्रोऽवनिभृत्सुमानितोऽथवा पुरोः पादसमन्वयो ह्यसौ ।५१
बृहन्नितम्बातिलकाङ्कभृच्छिरानिरन्तरोदारपयोधरातरां ।
सविभ्रमापाङ्गतयान्विताश्रिया
विभाति भित्तिः सुभगास्य भूभृतः ॥५२

निशास्वसौ संज्वलदौषधिव्रजैर्ज्वलन्तमात्मानमनल्पकल्पकृत् ।
शलोपलेभ्यो विगलज्जलप्लवैरनल्पशस्तान्नदिहाभिसिञ्चति ॥५३
गवाक्षपूर्णो धृतमत्तवारणः समुर्जनिश्रेणिरुपात्ततोरणः ।
समुद्धनिर्व्यूहधरो महीधरः प्रियप्रतीतोऽस्तु यथास्मदालयः ॥५४
विपल्लवानामिह सम्भवोऽपि न विपल्लवानामुत शाखिनामपि ।
सदा रमन्तेऽस्य विहाय नन्दनं सदा रमन्ते रुचितस्ततः सुरा ॥५५
गुणाकरांगूढपयोधरां नराधिराट् गिरां नव्यवधूमिवादरात् ।
ह्रियेव संक्षिप्तपदां स्वयं तदानुभूय भूयः प्रतिभूरभून्मुदां ॥५६
शिलोच्चयं साम्प्रतमप्रमत्तवानुरोहसच्छुल्कमिवात्मचिन्तनं ।
यती विशुद्धच्येव महागुणाश्रयः समन्वितः सोऽथ नतभ्रुवा जयः॥५७
ददर्श देवालयमुत्तमं तदा तदाचरन्सत्वरमुद्भवन्महाः ।
महामना मूर्तिमदेव सत्कृतं कृतं परैः श्रीधरभूप्रमोददः ॥५८
कलं वनेऽसावविलम्बनेन तद्गिरेर्बलं देवलमाप पापहृत् ।
धृतावधानः सुनिधानवद्बुधः सदायकं वाञ्छितदायकं तदा ॥५९
जयः प्रचक्राम जिनेश्वरालयं नयप्रधानः सुदृशा समन्वितः ।
महाप्रभावच्छविरुन्नतावधिं यथा सुमेरुं प्रभयान्वितो रविः ॥६०
अथेममभ्यङ्गरुचिः पुनः शुचिः पयोधरोदारघटावभाज सा ।
विधूपमानार्हमुखासुखाशिका समाप्लवश्रीर्वरवर्णराशिका ॥६१
तदास्य संशोधनसाधनाम्बुरं छविच्छलेनावतरन्त्यदः करे ।
पचेलिमां द्यौर्निजगाद सत्कृतिममुष्य हूतापि परैरनागतिः ॥६२
असौ समङ्गेष्वथ काशिभूपभू-परी परीरम्भपरोऽधिराट् चिरात् ।
यतः किलाप्तः परिरम्भितोऽभितः समार्द्रया भालमुखेषु मृत्स्नया ६३

अथामले वारिविलासिपल्वले विचारयंस्तद्व्यपदेशसंहतिं ।
निरञ्जनैः स्नातकमन्त्रसंस्कृतैस्तनुं स्म तोयैः स्नपयत्यसौ निजां६४

अनेकधातानितसंगुणोक्तिभृत् पवित्रितान्तःकरणप्रसक्तिमत् ।
विशालमालम्बितवान् दुकूलकं सुनिर्मलं जैनवचोऽनुकूलकं ॥६५

चिरन्तनाभ्यासनिबन्धनेरितं बहिर्न भूतेषु भवेत्प्रसङ्गितम् ।
निजीयमेवं किल भावशुद्धिमान् हृदुत्तरीयेण बबन्ध बुद्धिमान्॥६६

महामना मन्दपदप्रचारणां समुल्ललंघार्हतगेहपद्धतिं ।
विलोकयन् विच्युतरत्नवद्भुवमनन्यवृत्या प्रकृतं विचारयन् ॥६७

पुनश्च विघ्नप्रतिरोधि निःसहीति मन्त्रसूत्रं रुचितः समुच्चरन् ।
निधानधाम्नो हि जिनालयस्य स
कवाटमुद्घाटयति स्म धीरराट् ॥६८

निपूतपादाभिगमाभिलाषुको निपूतपादः स्वयमप्यथासकौ ।
जयेति वाचा कथितः श्रिया युतं
जयेति वाचा गृहमाविशत्तरां ॥६९

समुन्नमामातिलघुप्रभोः पुरो द्वयं मिलित्वा शपयोश्च साम्प्रतं ।
शिरः स्वयं भक्तितुलाधिरोपितं गुरुत्वतश्चावननाम भूपतेः ॥७०

लुठन्भुवीह प्रणनाम दण्डवज्जिनं यथासौ शरणागतः स्मरः ।
तदंघ्रियुग्मे कुसुमानि साम्प्रतं
निजीय शस्त्राणि समर्प्य सादरः ॥७१

निजोत्तमाङ्गत्वमुवाच तच्छिरोऽधुनोन्नतं प्राप्य पदद्वयं गुरोः ।
तनुस्तु भूमेरुपगम्य सङ्गमं समाप सख्यादिव कण्टकोद्गमं ॥७२

त्रिधा परिक्रम्य जयः क्रमादयं महामनास्तस्य जगत्पतेः पुरः ।
तदागतानागतवर्त्तमानकान् परिभ्रमान् सूचयति स्म चात्मनः॥७३

समापतापत्रयमिच्छवेर्भवे जिनेन्द्रचन्द्रस्य मुदं सुदर्शने ।
निधेरिवाराज्जनुषाप्यकिश्चनसकिश्चनर्मप्रतिकर्मवित्तदा ॥७४

क्रमोऽश्चनैवेद्यसुराजिराजितैः पुमानमत्रैः पुरतः प्रसारितैः ।
बबन्ध तां स्वर्गमनाय पद्धतिमिवेशसेवा स मितात्मसम्मतिः ॥७५

गुरोरिहाग्रे खलु लज्जितेव भू बभूव गुप्तावथवा समग्रजैः ।
धवं समालोक्य निरन्तरागतसदर्चनावर्तनवर्तनव्रजैः ॥७६

जलाञ्जलिः स्वस्य किलाघकर्मणे समर्पितः श्रीपतिपादतर्पणे ।
मनस्विनासौ शलिलार्पणच्छला-
घतः समन्तात्कलिलावनं बलात् ॥७७

समर्पितो वारिजरागभाजने जनेन सम्यग्घरिचन्दनद्रवः ।
जिनेशमादर्शमवेत्य सङ्गतः किलासकौ भास्वति चन्द्रमण्डलं ।७८

समर्पणां प्राप्य मनस्विना परां यदक्षताः श्रीशपदाग्रतो धरां ।
विभूषयन्तोऽनुभवन्ति ते तरां शुभस्य च स्माङ्कुरतां महत्तरां ८६

समर्पितं तेन सुमं सुमञ्जुलं जिनेशपादाम्बुजयोरभात्तरां ।
मनस्तदीयं परिचेतुमागतं किलात्मसज्जातिकथोः प्रसन्नयोः ॥८०

जिनेश्वराग्रे जवलेविकामसौ न तावदावर्त्तवर्ती जयाह्वयः ।
समुत्ससर्जाशु विनीयताश्रितो महामनाः संसृतिमेव केवलां ॥८१

व्यमुञ्चदेकार्थितयैकतां गतौ स रागरोषाविव दीपदम्भतः ।
निजक्रियासम्भ्रमिदर्शिनौ पुनर्जवाज्जयः स्वस्वकवर्णलक्षणौ ॥८२

जिनेश्वराग्रे बहुशस्यवृत्ति नाथ तेन कृष्णागुरुणा महात्मना ।
आमोदिना संप्रति कृष्णवर्त्मनि
जवेन नीलाम्वरता प्रकाशिता ॥८३
सुनालिकेरं निजमस्तकाकृति समीरयामास पुनः समीरयात् ।
स्वयंभुवः सन्दयिता स्वयम्भुवः पदेपु सन्देशपदेपु च श्रियः ॥८४
पदारविन्देषु पदारविन्दको मनोहराष्टाङ्गमयीमयं जयः ।
तनुं स्वकीयामिव चातनूत्तमां समर्पयामास समग्रतो बलिं ॥८५
सुदेवमन्त्राजपतः सुरीतितः शये समापुर्गुणिनोवतारणां ।
सितोपला चावलि दम्भसम्भवा विशुद्धवीजस्फुटशुद्धवर्णकाः ।८६
तदागसां संहरणाभिलाषिणः पयोजलक्ष्मीमुषिपाणिपल्लवे ।
षडंघ्रिमाला ह्यनुषङ्गजन्मिनां रराज रुद्राक्षपरम्परातरा ॥८७
बभाज भाजन्मभुवं तु बन्धुरं स्वरिन्दिराकृषिकृतः करं वरं [?] ।
सुशिक्षितुं लोहितिमानमुश्चकैः प्रवालवालावलिरंनसां रिपोः॥८८
प्रपञ्चशाखौ ग्रहणौ जपस्य तौ गुणेन बद्धौ सहसां बभूवतुः ।
तदैव भक्तेस्तु भयाकुलाथ गीरपादयादाशु महात्मनः पुरः ॥८९
तत्याज शक्रः शकनाभिमानं पुनीत यावत्तव कीर्तिगानं ।
स्वल्पेन बोधेन तथापि नामिन्वातायनेनेव निरूपयामि ॥९०
तवावतारो हृदि मे प्रशस्यः क्षुद्रेऽपि वाऽऽदर्श इव द्विपस्य ।
गुणांस्तु सूक्ष्मानपि सालसंज्ञासूची न गृह्णाति कुतो रसज्ञा॥९१
शुद्धात्मसम्वित्तिरिहाभिरामा तवाथ मे रागरुषोः सदाऽऽमाः ।
नामासकौ सम्प्रति वाक्प्रवृत्तिरेकस्य लब्धिर्न युगस्य दक्षिः ॥९२

कुदेवतानामधुनाधिद्‌वा दक्षार्थभूताधिचिकित्सकत्वात् ।
इन्द्रादिभिः स्तुत्यतया त्रिधा त्वां देवाधिदेवं मनुजा मनन्ति ६३
मोहस्तु सोहस्त्वयि वीतरागे रागश्च सागस्त्वमगाज्जिनेन्द्र ।
कामो निकामोऽथ वयं वदामस्त्वयानुविद्धाकमलाऽमलाऽभूत् ६४
निजं जिनं त्वां प्रवदामि भक्त्या
स्वार्थी परः सम्भविताऽस्ति शक्त्या ।
विलोमतास्मिन्नखरप्रयुक्त्या त्वदादरीयोऽनुगतः सभुक्त्या ॥६५
नमत्किरीटोचितरत्नरोचिः सम्मिश्रणं तेंऽघ्रिभुवीन्दुशोचिः ।
समागमे स्वस्तिकमेव वस्तु समस्तु पुंसां सुकृतश्रियस्तु ॥६६
भास्वत्प्ररोहन्त्यपि मानसाब्धावनेकशो ये कमलप्रबन्धाः ।
त्वद्दर्शनेनाशु पुनः स्फुटन्ति आमोदवादा स्वयमुद्भवन्ति ॥६७
निरीहमाराध्य सुसिद्धसाध्यस्त्वामस्तु भक्तो विगुणं विराध्य ।
चिन्तामणिं प्राप्य नरः कृतार्थः किमेष न स्ताद्विदिताखिलार्थः ॥
त्वदीयपादाम्बुजराजभाजां भुवां भवन्तीह महःसमाजाः ।
सुमानि सम्प्राप्य सुगन्धिमन्ति सौगन्ध्यमारान्नृशयं नयन्ति ॥६६
नरोत्तमः प्रार्थयितेति नाथमनाकुलोऽसावनवद्यगाथः ।
स्वर्गाश्रियोऽपांगशरौघलक्षः संसिद्धिसंदेशपुनीतपक्षः ॥१००
जिनेशरूपं सुतरामदुष्टमापीय पीयूषमिवाभिपुष्टः ।
पुनश्च निर्गन्तुमशक्नुवानस्ततो बभूवोचितसम्विधानः ॥१०१
सूक्ष्मत्वतो लुप्तमवेत्य चेतः श्रीपादयोर्निव्रजताथवेतः ।
अवापि तत्रत्य रजस्तु तेन संशोधनाधीनगुणस्तु तेन ॥१०२

अनुष्ठितं यद्यदधीश्वरेण तत्तत्कृतं श्रीसुदृशाऽऽदरेण ।
येनाध्वना गच्छति चित्रभानुस्तेनैव तारातितिरेति साऽनु ॥१०३

वेला बभूव व्यवधानहेतुः सुलोचना तद्धवयोर्द्वये तु ।
सन्ध्यानिशावासरयोरिवाथानुगच्छतोर्निम्ननिबद्धगाथा ॥१०४

सौधर्मसंसदि निशम्य तयोः प्रशसां शीले परीक्षितुमुपात्तमनास्त्विदेव
भार्यां निजस्य चतुरामिह काञ्चनाख्यां
स्याज्ञापयत्यपि रविप्रभनामदेवः ॥१०५

सदम्भाऽऽगत्य सारम्भा जयभूजानि सन्निधौ ।
उवाच वाचमित्येवं सविलासदयोदयाम् ॥१०६

मम वृत्तकुसुममालाऽऽमोदमयी भाग्यशालिना त्वकया ।
हृदयेऽवधारणीया नररत्नकयत्नतो लभ्या ॥१०७

विजयार्द्धोत्तरभागे रत्नपुरेन्द्रो मनोहरे विषये ।
पिङ्गलगान्धाराख्यः सुलक्षणा सुप्रभा महिषी ॥१०८

विद्युत्प्रभा सुपुत्री ह्यन्वितनामानयोर्नमेर्भार्या ।
त्वामेकदा सुमेरोर्विहरंतं नन्दने वनेऽपश्यत् ॥१०९

बनं मनोज्ञं बहुकल्पवृक्षं हरिप्रियानीत इहास्ति शक्रः ।
प्रसन्न ऐरावत एष किं वा कुबेरको नन्दनवक्षतो यत् ।.११०

लतानि कुञ्जेषु घनप्रसूनपदेन पुष्पायुधलुब्धकेन ।
प्रसारिता सम्प्रति संग्रहीतुं पाशा हि पान्थे क्षणपक्षिमालां ॥१११

परिभ्रमत्षट्पदराजिकायामन्तर्गतं मौक्तिकपुष्पमद्य ।
मौर्व्यामनङ्गस्य नियुक्तबाणाग्रारोपितं पुङ्खमिवावभाति ॥११२

समुत्सुकानामथवा शुकानां पङ्क्तिः पतन्ती परमप्रसन्ना ।
मनोहरत्येव हरिन्मणीनां विनिर्मिता तोरणसन्ततिर्वा ॥११३
पुरापुरारेरुपरि प्रकोपान्मुक्तेषु कामस्य हि मार्गणेषु ।
इदं परागोपचयापदेशात्तदङ्गभस्मेव समस्ति लग्नं ॥११४
मुहुर्मरुद्भङ्गिभिरङ्ग यत्र भ्रश्यद्रजाः श्रीस्थलपद्म आस्ते ।
समुद्वमत्सद्धुतमुक्कणान्स शाणोपलः स्मारशिलीमुखानां ॥११५
चाम्पेयपुष्पं परमप्रसन्नमन्तर्निलीनालिकुलं विभाति ।
आरोपितं साशुगसञ्चयं च तूणीरमेतद्रतिनायकस्य ॥११६
सुसज्जगुञ्जा परितो भ्रमन्ती रजस्तटे षट्पदधोरिणीति ।
अयोमयीयं खलु शृङ्खला स्याद्ग्मिाधिपस्याध्वगबन्धनाय ॥११७
भ्रान्तभ्रमद्भृङ्गनिनाददम्भादतिप्रसन्ना खलु पाटला तु ।
जगज्जिगीषोर्मदनामरस्य निरन्तरं कूजति का हलेव ॥११८
दृष्टा मुहुर्या कुसुमप्रदेशे भृङ्गैः सदङ्गैरथ पल्लवानाम् ।
कुलैरिदानीमुपलालितापि विभान्ति सद्यो गणिकाः प्रसन्नाः ॥११९
गतो भवान् दृक्पथमात्रमित्थं मनोभवाराम इवाभिरामे ।
त्वत्सन्निधौ विक्रिययातांगपत्नी समापाशु गुणेश तस्याः[?]॥१२०
यतः प्रभृत्येव भवानवश्यं सुदर्शनीयोऽपि बभावदृश्यः ।
नितम्बिनीनां मणिकाभिजाताहो साम्प्रतं सा कणिकेव जाता ॥१२१
यावन्न दीनं दिनमुत्ततार कथं कथं साप्यबलाप्युदार ।
भयङ्करा प्रत्युत सा विशेषाद्घनी पुनः सारजनिश्च केषां ॥१२२
अन्तोम्बुजस्थोप्यखिलप्रदेशव्यपेक्षणीयः खलु विष्णुवेषः ।
अर्द्धावशिष्टा भवता महेशान्हो त्वां त्रिमूर्तिं निजगाद चैषा ॥१२३

वित्ताश्रितं चित्तमभूच्च तस्य भवत्समीपेऽथ पुनः कुतस्यात् ।
अर्थक्रियाकारि शरीरमेतदकारणं कार्यमिवार्द्रचेतः ॥१२४

आह्वानने तां भवतः प्रवृत्तां त्यक्त्वा क्षुधाद्या अपि ता निवृत्ताः ।
संख्यस्तदीया नपुस्त्वदीया दृक् तद् हृदा जीवनदायिनीया ॥१२५

अद्यायमास्ते समयः सहायः येनाभ्युपात्तः समरूपकायः ।
मया शरोपाधिकया स्मरस्य त्वं निर्जरप्राय इह प्रशस्य ॥१२६

स्वमिन्दुकान्तत्वमहो जगाद मुखं मृगाक्ष्याः प्रकृतप्रसाद ।
विधूदये सुश्रुवदश्रुकायः स्वतोऽमुतो येन पयोनिकायः ॥१२७

निशो निवृत्तेयममुषो गता वा रुषो विधिं पूर्वदिशोऽनुभावात् ।
तत्राथ च त्रासमवाप शापसम्वेशिनस्ते सुतरामपाप ॥१२८

इत्येवमेषा ललनाविशेषात्प्रवर्तते तत्स्मरणावशेषा ।
स्माहारमप्युज्झति नैति हारं गतावताराऩ्मदनाधिकारं ॥१२९

स्परोहितः पीत इतः स यावन्नैकान्तकास्तिष्ठति शुद्धवर्णः ।
श्यामापि सा रक्ततया लसन्ती चित्रानुरूपा धवला बभूव ॥१३०

पुनः सखीनामनुशासनेन चिरेण चाशासहिता सती सा ।
विराजिता धामनि धावमूर्तेर्मूर्तिन्तु चित्ते बत चिन्तयन्ती ॥१३१

भाग्यानुयोगात्सहसाभ्युपात्तस्तयाथ चिन्तामणिरित्युदात्तः ।
समर्थयत्वर्थमथानवद्या प्रवर्तते चेदिह भावविद्या ॥१३२

निकागुणेनास्मि भवानिदानीमेकायते तावदथात्ममानिन् ।
समाश्रयान् साधुदशत्वमस्तु नो चेत्पुनः शून्यतयास्म्यवस्तु॥१३३

यदभून्मदभूतिरात्मनस्तदभूस्तिष्ठतु सोऽधुना तु नः ।
भवतां भवतादसौ रुचिस्विद् हिंसावशवर्तिनां शुचिः ॥१३४

निजः परो वेति न वेत्ति सत्तम उदेत्युतस्वित्कतमेषु हृत्तमः ।
त्वमेव विश्वं वदतेऽधुना नमः समस्तु तस्मै समदर्शिने मम ॥१३५

तनुरेषा परिशेषा सदाऽवदाता न धीमतां किमुचित् ।
तारुण्ये कारुण्यं विधेहि सुविधे निधेहि रुचिं ॥१३६

इत्यादि वेदवाक्यैरमुकमनोऽमरवरप्रसादाय ।
काममखं सा विदधे निजशक्त्याऽज्ञानुयोगमयं ॥१३७

प्रखरैः शरैरिवामुं भदन्ती सुन्दरी दृगन्तैः सा ।
स्मरशासनवत्सघनं जघनं समदर्शयत्तावत् ॥१३८

स्मैषाम्यञ्चति निम्नगा प्रथमतः फेनायमानं स्मितं,
पश्चान्निर्मलनीरनिर्झरनिभेऽस्याः स्र समानेऽशुके ।
सद्योऽप्यभ्युदियाय कामिरमणद्वीपप्रतीपः स्तनः,
व्यक्तोऽतो बलिबद्धनाभिकुहरः कल्लोलितावर्तवत् ॥१३९

नाङ्कं टङ्कमिवाशनिप्रतिकृतौ लेभे वचस्तद् हृदि,
हावादीह मनाङ् न तत्परिणतिं प्रापोषरे वीजवत् ।
तस्याः किञ्च मनोरथोन्नतगिरिं भेत्तुं वचोवज्रराट्,
श्रीस्तम्वेरमपत्तनेश्वरमुखादेवं पुनर्निर्ययौ ॥१४०

रसहितं नवनीतमगान्मनोवचनचक्रमभूत्कट्तक्रवत् ।
किलकिलाटवदङ्गगतन्तु ते किमु न पश्यसि गोरससारिके ॥१४१

अहो धुरि कुलस्त्रीणां प्राप्तयापि पराप्तया ।
अनङ्गरूपमङ्गादस्त्वयाऽभाषि सुभाषिणि ॥१४२

शुचेस्तव मुखाम्भोजान्तिरेति किमिदं वचः ।
दूरे तिष्ठति हे देवि रेफगर्भादतः सुधीः ॥१४३

विरम विरमतः सुरमेऽमुकतः सुकतत्वमत्र न हि जातु ।
हा तुच्छविषयसुखतः क्रीणात्युरुदुर्गतेर्दुःखम् ॥१४४

रेफमञ्जुलयोः साम्यभृतामाज्ञापरत्वतः ।
नररामां सदा देवि नररामामुपैमि भोः ॥१४५

औदासिन्यवचोऽवचाय कुणपीप्राया भवन्तीति सा–
दायामुं परिगत्वरी तु सहसा सच्चक्षुषा भर्त्सिता ।
त्यक्त्वाऽगात्तमहो सुशीलमहिमाणो येन संजायते,
सर्पो हारतयाऽनलो जलतयाऽसिः पुष्पमालातया ॥१४६

निष्कामितामिति समीक्ष्य सुपर्वणाथ
हर्षप्रफुल्लवदनेन सजानिनाऽऽरात् ।
आगत्य तेन समपूजि स जानिरेष
यो ब्रह्मणापि महितः स न मह्यते कैः ॥ १४७

गच्छन्त्ये सह तीर्थदेशमनयासौ हंसगत्याऽखिलं,
जन्मानर्घमथ व्रजन्नमलहृत्प्रालब्धबोधोऽवनेः ।
पुण्यात्प्रापितविद्य एवमनिशं प्राणप्रियः पूजितुं,
तुष्ट्या प्रागमयज्जयः सुपुरुषो रक्त्या ह्यनेहोऽपि तु ॥१४८

स श्रीमान् सुषुवे चतुर्भुजवणिक् शान्ते कुमाराह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।

काव्ये तद्‌गदिते निरेति च चतुर्विंशः पुनीताशयः,
श्रीवीरोदयसोदरेऽतिललिते सर्गोऽरिदुर्गेऽप्ययं ॥१४६

(एतच्चक्रबन्धस्याग्राक्षरैः षष्ठाक्षरैश्च गजपूरपतेस्तीर्थ-
विहरणमिति निर्गच्छति)

इति श्री वाणीभूषण-ब्रह्मचारि-भूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये चतुर्विंशतितमः सर्गः



अथ पञ्चविंशतितमः सर्गः

बहुसुमत्यवरोधिविधेः क्षयप्रशमतः शमतः स्विदयं जयः ।
झगिति निर्विविदेऽथ भवच्छिदे क्वचिदचित्तरुचिर्निजसम्विदे ॥१

अनुभवानिलजालसमीरिते हृदयसारगभीरसरस्वति ।
जनिमवापमवापदुदीरिणः स्फुटविचारतरङ्गततिः सती ॥२

क्षणरुचिः कमला प्रतिदिङ्मुखं सुरधनुश्चलमैन्द्रियकं सुखं ।
विभव एष च सुप्तविकल्पवदहह दृश्यमदोऽखिलमध्रुवं ॥३

युवतयो मृगमञ्जुललोचनाः कृतरवाद्विरदामदरोचनाः ।
लहरिवत्तरलास्तुरगाश्चमू समुदये किमु दृक् झपनेऽप्यमूः ॥४

लवणिमाब्जदलस्थजलस्थितिस्तरुणिमायमुपारुणिमन्विितिः ।
भजति जीवनमञ्जलिजीवनमिह दधात्ववधिं न सुधीजनः ॥५

न भविनो दिवसा इव शाश्वतामिति रहर्निशयोरिह सम्मताः ।
स्फुटमनाथ इतो नरनाथतां प्रमुदितोरुदितं पुनरीक्ष्यतां ॥६

समपहाय जवादहमिन्द्रतां पणपणत्वमुरीक्रियतेऽर्वता ।
व्रजति किञ्चिदवाप्य मुदं पुनस्तदपि पर्ययवुद्धिरयं जनः ॥७

भृतिकवत्खलु षष्ठसतां (दं) शतः समनुपालयता जनतां ततः ।
नृपतिरित्युररीक्रियते जिन धिगपि धिग्जडतामिति देहिनः ॥८

विभववानहमित्यतिसाहसी सुभग किं तनुपे ननु सेमुषीं ।
कुटकुटीघटमेतु नु यो भृतः स वशिको वशिकोऽथ भृशं भृतः ॥९

किमु भवेद्विपदामपि सम्पदां भुवि शुचापि रुचापि जगत्सदां ।
करतलाहतकन्दुकवत्पुनः पतनमुत्पतनं च समस्तु नः ॥१०
ननु जनो भुवि सम्पदुपार्जने प्रयततां विपदामुत वर्जने ।
मिलति लाङ्गलिकाफलवारिवद् व्रजति यद् गजभुक्तकपित्थवत्॥११
तृणवदुत् पणमेव पुरः पुरः समुपदर्श्य च मादृगयं नरः ।
छगलवद्विपदेकविकृष्णया सपदि दूरमनायि च तृष्णया ॥१२
तरुरुचावसनं शयनं तथावनितले खलु याचनयाशनं ।
परिकरं तनुमात्रमितोऽप्यहो भवितुमिच्छति चक्रपतिर्जनः ॥१३
जडजनो विमनाकितवासवे नरमते रमते द्रविणोत्सवे ।
कनकनाम समेत्य समं द्वयोर्न कियदन्तरमेति बुधोऽनयोः ॥१४
मन इयान् प्रतिहारक एतकप्रतिहृतेर्नटताद्दशगः सकः ।
भुवि जनाभ्यनुरञ्जनतत्परः भवति वानर इत्यथवा नरः ॥१५
बदसि शाकलवैरपि पूर्यते तदुदरं दुरितं ननु दुर्मते ।
किमु बदान्यधिकाधिकलालसमहह हृद्भरितं च सहस्रशः ॥१६
अपि तु तृप्तिमियाच्छुचिरिन्धनैरथ शतैः सरितामपि सागरः ।
न पुनरेष पुमान् विषयाशयैरिति समश्नति.मोहमहागरः ॥१७
जगदिदं सकलं हरिणाङ्गना खुरमितेन हितेन हि चर्मणा ।
सपदि वञ्चितमस्ति विगर्हिणा न हि परन्तु निमित्तमितोऽङ्गिनां
मृदुतनौ तरसातरसीति मानवयवावयवीति परिश्रमात् ।
बत सुखायत एव जनोऽहह विलसितं तदिदं तमसो महत् ॥१८
पिशितशोणितसान्द्रमिह स्त्रियावपुरहोत्तुलितं सुखसत्क्रिया ।
भवति नस्तददन्ति निशम्यतां पशव एवमिहास्ति न रम्यता ॥२०

अपि तु पूतिपरं वनिताव्रणं यदसृगामिषकीकशयन्त्रणं ।
कृमिषु तत्र त्वगत्सु किमन्तरं ननु वदन्तु विदामधिपा अरं ॥२१
मधुरसा करटस्य तु निम्बिका धनमहोदु रितस्य कपर्दिका ।
विडशनं हि किरेः रसनन्दनं विषयतो हि तथा हृदि रञ्जनं ॥२२
विषयमप्रकृतात्मरसो मतेर्न रमणी रमणीयमुपासते ।
मधुरमेव हि सर्पिरपश्यते भवति तैलमपीति निदृश्यते ॥२३
विषयमस्तमतिः प्रतिमुह्यति(तें) न हि विपन्न इतोऽपि विमुञ्चति ।
मुहुरहो स्वदते ज्वलिताधरः स्विदभिलापवरो मरिचीं नरः ॥२४
गणयतीति चणोविपदां भरं न विषयी विषमीषितया नरः ।
असुहताविव दीपशिखास्वरं सलभ आनिपतत्यपसम्भ्रमं ॥२५
वकुलमप्यतिमुक्तकमाचिपत्तिलकमप्यधुना मधुलोलुपः ।
कमलमेत्य पुनः शशिना धृतः मधुकरोऽतिविरौति विलज्चितः॥२६
अयमहो मलिनो बलिभुग्जनः शमलमूत्रमयं सुदृशः पुमः ।
अनुपतन्नियतः खलु घर्षणे मुदमियात्सघृणे जघनव्रणे ॥२७
ननु परिग्रह एष महानककुदथ दारजनः खलु दारकः ।
स परितः परिवारिजनोऽभवद् गृहमिदं स्फुरबन्धनगेहवत् ॥२८
यदपि दस्युतया हितमात्मने तदपहर्तु महो भवकानने ।
परिजने परिगच्छति मुह्यतं विमतिरेव गतिस्तु कुतः सतां ॥२९
परिजनाः कुलपादपकं क्षणमधिवसन्ति च यान्ति च पक्षिणः ।
फलमवाप्य किमप्यथ ते रयाज्जगति यान्ति महीन्द्र यदृच्छया ॥३०
अयि सुवंशज वंशमहीरुहि स्वगतवातवशेन मिथो द्रुहि ।
अपरमत्र न किञ्चिदये फलं कलहवह्निमुपैमि तु केवलं ॥३१

अभिमतस्य मुदो यदि संगमे दरद एवममुष्य विनिर्गमे ।
इति विनिर्वृतये खलु सम्मुखा विगतसंगसुखाः पुरुराण्मुखाः॥३२
सुखमतीतमतीतमभान्वयः किमुत भाविनि तत्र किलेत्ययं ।
हतमतिः क्षणसौख्यविमोहितः श्रममुपैति वृथैव तरामितः ॥३३
यदनुलोमतया पठितं वताक्षरयुगं विषयेषु मुदेऽर्वताम् ।
मम च मर्मभिदद्य तदर्हतां प्रतिविरोधिविलोमतयेच्यतां ॥३४
जगति दिव्यतनुश्च सुधान्धसां गलति सा च सुदीन दिवौकसान्
क्षणत एव तु मृत्युमुखे स्थितां
किमुत मर्त्यगणस्य निरुच्यतां ॥३५
भजति हा विषयानसुमांस्तकं न लभते च पुरः स्थितमन्तकं ।
शिरसि सन्निहितांश्छगलो बलावपि धृतोऽत्ति मुदा यवतन्दुलान्३६
नर नवाध्वयुतं ननु तं किल स्थितिमुपैति सुगो विहगोऽनिलः ।
तदिदमेवमहो भुवि पञ्जरे किमुत चित्रमितो यदि निस्सरेत् ॥३७
शशिहरो भविता सविता पिता तदुदयेन हसिष्यति पङ्कजं ।
अलिनि चिन्तयतीति विषस्थिते द्रुतमिहोद्व्रजतेऽम्बुजिनीं गजः ॥३८
गतगदोऽशनिनैष कुटाच्यतं तदहतोभुजगाग्निविषादिभिः ।
इति कृतान्तसमाजमये भवे स्थितिरहोऽस्य कियच्चिरमस्तभीः ॥३९
गृहमिदं वृषवास्तु न वास्तु किं विशति निर्व्रजतीति यदृच्छया ।
हसति रौति च मत्त इवात्र तु निजधियं प्रतिपद्य जनोऽन्वयात् ॥४०
शमनमेष शिरस्थितमीक्षतां न हि पुनः कवलेऽपि रुचिस्तता ।
प्रतिभवेत्किमुतापरसम्पदि पतति किन्तु न सन्मतिसंसदि ॥४१
ननु मनोरथपूर्तिपरायणः सपुलकः कदलीदलजालवत् ।
विकलयन्कलनानि भवस्य वा परिभवं परमेति किलाङ्कभृत् ॥४२

चतुरशीतिगुणाङ्कितलक्षणोऽत्र तु चतुष्पथके विचरन्क्षणे ।
जनिमृतीति मृर्तिं दुरिताक्षतः न पुनरेति परं पदमुद्धृतः ॥४३
भ्रमणमेति जनः खलु मायमाङ्कितगुणस्तरुणोऽपि च तृष्णया ।
अपि तु जातु च यातु मरीचिकाविवरणे हरिणः किमु वीचिकां॥४४
पिहितदृष्टिरसौ परतन्त्रितः सपदि मर्मणि दण्डनियन्त्रितः ।
बहुभरं भ्रमतीत्थमथोद्धरञ्जगति तैलिकगौरिव हा नरः ॥४५
ननु सहस्व गुणिन्सहसा स्वयं किमु विलक्षतया व्रजताज्जयं ।
तव पुराकृतमेतदुदीरितं न हि परन्तु कदापि लभे हितं ॥४६
भृतिमितीच्छति वंस परिच्छदः शशिमुखी शुचिभूषणसम्पदः ।
तनय एष परं परिपोषणं स्वमथास्तु पुमान्विधिचर्वणं ॥४७
अपि परेतरथान्तमथाङ्गना पितृवनान्तममीः परिवारिणः ।
पुरुष एष हि दुर्गतिगव्हरे स्वकृतदुष्कृतमेष्यति निघृणः ॥४८
निजनिजोचितचेष्टितवागुराञकलिता कलिता न विपद्धुरा ।
सुविधुरा हि नरास्तु नराधिप किमित्र तत्र कदर्थनमाक्षिप ॥४९
तनयवत्वनयोऽरमनुव्रजत्ययि बुधेश विधिश्च यदात्मजः ।
परिनिमन्त्रितभूतवदेतकमतिचरत्यपि भो भुवने सकः ॥५०
तनुरनन्यतयानुगताऽऽदरिन्नपि न चेत्परलोकमुपेतरि ।
समितिमेति कुतोऽथ परिच्छदे समुपपत्तिमहो विबुधो वदेत् ॥५१
अमुकतः खलु विग्रहतो बुधः पृथगिवाञ्चति कोशत आयुधः ।
अनेवबुद्ध्य परस्परसम्मिश्रशः स्खलतु केवलमेव तु बालिशः ॥५२
वसुरजोगुणकोरजसोऽञ्चति पय इवाथ जलाद्धरटापतिः ।
विभजते जडतः खलु चिंतनमिति विवेकबलादसकौ जनः ॥५३

न खलु कञ्चुकमुञ्चनतः क्षतिरहिवरस्य भवत्यपि सन्मतिः ।
अयि सखेशमखण्डसुखो वहेत्तदिव विग्रहभारविनिग्रहे ॥५४
यदपि भूमितले तुषकण्डनं तदपि सम्प्रति तण्डुलमण्डनं ।
तदिव वा जडपिण्डविवेचनं सुखवतस्तदखण्डनिवेदनं ॥५५
यदपि चेतनको गहनं श्रयत्यहह विग्रहसंग्रहतोद्यमम् ।
घनविघातमुपैति तनूनपात्किमयसाभिगमस्य न चेत्कृपा ॥५६
जगति दीव्यतनुश्च सुधान्धसां गलति सा च सुदीन दिवौकसाम् ।
क्षणत एव तु मृत्युमुखे स्थिता किमुत मर्त्यगणस्य निरुच्यतां ॥५७
बसति यावदयं खलु चेतनस्तनुरियं घृणितापि हरेन्मनः ।
मृगमदाभिपदाकिलकूपिकान्तसमये सुसमस्तु दशा हि का ॥५८
निजमतिं वपुषीति जडात्मके परिकरे च सहायधियं न के ।
विषयसन्निचये सुखसेमुषीं समुपगम्य हताः वदसन्त्रशिन् ॥५९
इत इदन्तु कलेवरमुद्धृतं इतरतः सकलं समलं कृतं ।
तदपि याति जनः समलङ्कृतं न पुनरीक्षणमेवमलङ्कृतं ॥६०
परिचरत्यपि रासकदासवन्निजनिवेदमृते धरणीधवः ।
अयमतो निवसन्वलयेऽवनेः प्रतियतेत मतेरथ शोधने ॥६१
सपदिमन्थ इतः प्रतिमन्थिनि भ्रमति तद्वदयं जगदध्वनि ।
अरुणतो गुणतः स्वयमात्मनः विरम भो विरमेति मनः पुनः ॥६२
सुखमवैति तु नात्मगुणं जडो बहुपरेषु परं प्रतिपद्यते ।
अविदितात्मगतोत्तमसौरभो मृगवरः परितोऽपि विपद्यते ॥६३
बहिरमीष्वसमेषु समन्ततः परिचयं रचयन्न विचारतः ।
न परमात्मपथे रतिमेत्ययं रस इयान्त्रसितः किमपि स्वयं ॥६४

सपदि मन्थगुणेन गवीश्वरो यदिव दध्न उपैति नवोद्धृतं ।
परमपास्य गुणी सहसात्मनो रमितिं रूपमवैति नवोद्धृतं ॥६५

न हि विषादमियादशुभोदये न हि शुभे सुभगो मुदमानयेत् ।
भवति सम्प्रति सव्यतदन्ययोः क्वचिदहो कियदन्तरमङ्गयोः ॥६६

वृषलपालित आसवमश्नुते द्विजमितस्त्यजतीत्युपसंश्रुतेः ।
दृशि तु दासिसुतौ सुदृशामुभौ निगदितौ च तथैव शुभाशुभौ ॥६७

न तु निदृष्टमितः शयनाश्रमे नयति नाविनयं नयनोद्गमे ।
सुनयनिर्णयसम्वयने जयत्यथ बुधो नयनेङ्गितमप्ययं ॥६८

रजक एष गुणी स्वगुणाम्बरं समरसेण रसेण सताम्बरं ।
झगिति धावति नावति कश्मलं न तु विवेक मुपैमि च फेनिलं ॥६९

अयि विवेकितयैव वसेर्मन इह च किं वसतोऽपि विपत्पुनः ।
किमुत गारुडिनो विलसन्मतेर्भुजगभुक्तमपीति विपायते ॥६९॥

भुवि वृथा सुकृतं च कृतं भवेद्भवि जनस्य तरामविवेकतः ।
अनयनस्य वटीवलनं पुनः कवलितं च शकृत्करिणा ततः ॥७०

न खलु स्नेहमथो न दशान्तरमपि तु मोहतमोहरणादरः ।
लसति बोधनदीप इयान्यतः विविपतङ्गगणः पतति स्वतः ॥७१

अपि तु बाह्यकवस्तुनिबन्धनेऽभ्यनुरतस्तनुमाननु बन्धने ।
अनयनो नितरां निजगन्धने भ्रमति हा विपदामनुबन्धने ॥७२

हसति रौति च मूर्च्छति वेपते तनुभृदेष किलापगतो धृतेः ।
भ्रमति सर्वत एव भियासको भवति भूतनिवास इवासकौ ॥७३

हितमवैति न कश्चन वै जनस्तदितरस्य तु संशयितं मनः ।
परमये विपरीतरुचा धृतं जगदिदं सकलं तमसावृतं ॥७४

वयनकीटवदात्मनिवेष्टितैर्विपदमेति जनो निजचेष्टितैः ।
प्रभवतीह हितैररिमर्कैर्जितैर्जगति मत्कुणवन्म्रियते नतैः ॥७५
सपदि मल्लमहावपि + युद्धयतो भवति × दीपकजीवयुतो नरः ।
लगति तस्य तनौ हि रजः कुजं तदितरो विलसत्यपि केवलं ॥७६
विषयजातिशयाश्रयिहृद्धता जनुरिदं ननु नीतमपार्थतां ।
गतधियापि मया समयः श्रियां पणमितो मुकुरेण मणीरयात् ॥७७
श्रुतमधीत्य यथाविधि बुद्धिमान् समधिगम्य च साधुसमागमान् ।
जगदुदीक्ष्य च भंगुरमूह्यतां मदपरः क इवेह विमुह्यतां ॥७८
अनवयन् दहनं सलभोऽततिवडिशमांसमितश्च झषोऽमतिः ।
न विषयान् गहनाँश्च सुचिन्निधिस्त्यजति माद्दगहो निविडो विधिः ॥
स दिवसः समयः समयाञ्चितः सपदि सोहमपीति कथाश्रितः ।
उपहतः पुनरुक्तपरिश्रमैररकवद्भवतीह परिश्रमैः ॥८०
न हि कृतं मदनारिकमाजनुस्मृतमहो न जिनेन्द्रपदावनु ।
युवतिमार्दवकदमकेऽर्दितं किमु कथेयमथो भसदोऽग्रतः ॥८१
स्मरशराशरसाशयितान्विता नियमितावमिता अमिता मिता ।
जडतयापि तथापि तु चिन्तया किमधुना समये* च शिवं रयात् ८२
अधम यौवनमापलयाश्रितं बहुमयौवन एव मता स्थितिः ।
व्रण इतो मृदुहारमणीभृतः स खलु हारमणीसदसोऽप्यतः ॥८३
अखिलमेव तु वस्तुपुरःस्फुरन्निजनिजोचितधर्मधुरंधुरं ।
अहह धर्ममृतेऽपि पुमानतिविकलितः खलु जीवितुमिच्छति ॥८४

+ व्यायामभूमौ, मल्हशब्द इकारान्तोऽपि प्रयुज्यते वृद्धैः ।

× तैलयुक्तः ।

* गच्छामि ।

न वृषमेत्यनुषङ्गजमप्यथ सततमेनसि सम्विलसत्कथः ।
अहह मूढमना मनुजोऽमृतं समपहाय विषं पिवति स्वतः ॥८५
यदि हृषीकसुखान्यपि हे जिन किल फलानि वृषस्य हि शाखिनः ।
न किममीः सहिताश्च सुखाशया वृषमुषन्ति नु सन्ति मलाशयाः ८६
स सुतत्वमहत्त्वदायिनीवृषचिन्तामणिसम्विधायिनीं ।
भवभोगवपुष्षु निष्पृहो हृदि चिन्तामणिमित्यगादहो ॥८७
यदुपश्रुतिनिर्वृतिश्रिया कृतसङ्केत इवाथ कौ धियां ।
विजनं हि जनैकनायकः सहसैवाभिललाषचायकः ॥८८
जन्मातङ्कजरादितः समयभृञ्चितामथागाच्छुभां,
यत्नोद्वाह्यमिदन्तु राज्यभरकं स्थाने समाने ध्रुवं ।
सङ्कूयामहमत्र कुत्र भवतो निक्षिप्य सम्यङ्मनाः,
नानिष्टं जनताऽऽयतिं प्रसरताद् भातूत्सवश्चात्मनां ॥८९

[जयसद्भावना इति चक्रबन्धः]

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरीदेवी च यं धीचयं ।
ज्ञानानन्दपदानुयायिनि गतः सर्गोः निसर्गोज्वलः,
तत्प्रोक्तेऽत्र जयोदये सुललितो वाणाक्षिभृत्सम्वलः ॥९०

इति श्रीवाणीभूषण-ब्रह्मचारिभूरामल-शास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये पञ्चविंशतितमः सर्गः



भजन

संसृतिमुत्सृतिमेहि च सर्वं स्वार्थमुदीक्ष्य भरन्तं ।
भक्षितुरेव तृप्तिरिति सुलभे पृथगखिलं गुणवन्तं ।
समवेतेव तनुश्च गलिष्यति तत्कचिदेतु भदन्तं ॥२॥
एभ्यो बहुकुकर्मसङ्कलितं संहृतमपि न हृदन्तम् ।
येन दुरितमतिवर्त्य समस्तं यायाः स्वसुखमनन्तम् ॥३॥
जगति शबलितेऽमुष्मिन् कृच्छ्राल्लब्धं त्वया सदन्तम् ।
वृषमकृशं परिपारय सारय जनुरपि शान्तिकृदन्तम् ॥४॥
यदुपश्रुतिं निर्वृतिश्रिया कृतसकेत इवाथ कौ धियां ।
विजनं हि जनैकनायकः सहसैवाभिललाषचायकः ॥५॥



अथ षड्विंशतितमः सर्गः

समभूत्समभूतरक्षणः स्वसमुत्सर्गविसर्गलक्षणः ।
शिवमानवमानवक्षणः नृपतेरुत्सवदुत्सवक्षणः ॥१
अनुनामगुणैकभूरभूदथ शैवं करिरेत तदङ्गभूः ।
न हि शत्रुभिरन्ततामितः स्विदनन्तोत्तरवीर्यसंज्ञितः ॥२
स बभूव कुलानुमानतः स्वभूश्च प्रतिपत्तिमानतः ।
नृपतीर्थपतिर्न्ययोजयन्नृपतीनां धुरि सन्नयो जयः ॥३
चरदचरसौधसत्वरा परितश्चत्वरपूरणत्वरा ।
सुदृशां नरवरेषु सोमता प्रजयाऽपिप्रजयादसौ मता ॥४

त्वकयित्वकजिच्चनस्ततां लभतां स्नेहगुणोऽप्यनन्ततां ।
अभिषेकनिषेकसम्पदः स्फुरदभ्यङ्गकृता व्यभाव्यदः ॥५
लसताल्लसता त्वदाश्रिते विषतासम्विशताच्चथाजिते ।
यदुपेत्यतरामवातरन्नकिमुद्वर्तनमित्युदाहरत् ॥६
सहते सहते जसा स्थितः कुत एतन्मलिनत्वमित्यतः ।
कचसन्निचयः समरुतुतः समभादुत्तमभावतः स्तुतः ॥७
ललिता दलिताखिलैनसश्चलिता संकलिताप्यनेकशः ।
परितोषयितुं प्रजा अभाद्वदनेन्दोरमृतस्त्रुतिः शुभा ॥८
अपकर्षणसन्निर्षया हरिपीठे परिपीतसर्षपाः ।
पुलकांकुलका इवोत्थिताः परिवर्द्धिष्णुतया बभुः सिता ॥९
सममाश्रममादिशन्गुरुप्रकृताज्ञानृकृताशिषोरुरु ।
शिरसीष्टिरसीपुरोहितस्तिलकं स्वागलिखत्तरामितः ॥१०
उपकुङ्कुममुप्तवान्बलादिह बीजानि सुतण्डुलच्छलात् ।
फलतूत्तलतुष्टिवल्लरीति तदाभालभुवीष्टिकृद्धरिः ॥११
धरणीभरणीति सत्क्रियां प्रततां साम्प्रतमिन्धिकां प्रियां ।
धृतवान्धृतवानमुद्धनीमृदुर्मौलिच्छलतोऽस्य मूर्धनि ॥१२
हरिपीठगतः स राजतामनुकुर्वन्विशदांशुकस्ततां ।
उदयाचलचुम्बिचन्द्रवत्कुमुदालम्बनलभ्यनोऽभवत् ॥१३
सुतरामुत राज्यसम्पदः समितायाः समदश्रुसंविदः ।
जरतीकरतीर्थलम्भितान् भरति स्म द्रुतमक्षतान्हितान् ॥१४
मृदुकेशनिवेशलक्षणं प्रतिराहुं हसदाप्रदक्षिणं ।
शशिबिम्बवदातपत्रकं भवतः प्राभवतः किलानकम् ॥१५

सुरसिन्धुरसिश्च देवतं नृपतीनामवतीर्य दैवतं ।
प्रतिपन्नवतीव सम्मदाद्विलसच्चामलसम्पदः पदात् ॥१६

स्वजनोपहृतातिविस्तृतामलमुक्ताफलभाजनैस्तता ।
ध्रवमाप्यनवं नु शम्फली सहसाभूत्सहसा तदास्थली ॥१७

जय वारय वारसम्पदा परिषत्सा परिसञ्चरन्मदा ।
मृदुलोमदलोमयाश्रितानवराज्ञः सवराजसान्निता ॥१८

सुभगाशुभगान्धिकार्पितपिचुकासंक्रमतो द्विषज्जितः ।
विरदस्फुरदङ्क्रास्पदाऽभवदेवं भवतः सभा तदा ॥१९

अथ दृक्पथ एव संकथः खलु नः पल्लवितो मनोरथः ।
प्रभवे नृभवे च सम्पदादिति ताम्बूलदलानिकोऽप्यदात् ॥२०

अवतरयति स्म हृत्तु नः शशिनो बिम्बवदुन्नयत् पुनः ।
अमुकाननशाननंदनं शुचिनिराजनभाजनं जनः ॥२१

• अमितं शमितन्मनाभवन्नगदं सन्नगदर्शवन्नवम् ।
वचनं स च नर्महेतवे समयच्छरुज आजवंजवे ॥२२

अपि केन न वीक्ष्यते रविशशिनीत्थं बशिनिन्दितो भवी ।
जनतावनता न सन्दिशोवयमेतद्द्वयमेचकाः शिशो ॥२३

जनतां च नतां समाश्वसेः स्वमनस्यप्यम नैव विश्वसेः ।
नटवत्तटवर्तिदृक्त्या रहितो हर्षविमर्षसृक्त्या ॥२४

स्वयमन्तरितांस्तु शल्यवज्जययुक्त्यैव मदादिकान्ध्रुवं ।
अरिमग्निमिवोपतापकं जलवत्तूद्गलनाश्रयः स्वकं ॥२५

प्रकृतीरनुरञ्जयञ्जयन्द्विषतो भद्र सतो मुदं नयन् ।
अरुजोज्झजराजयक्ष्मणः पृथिवीं रक्ष विपक्षलक्ष्मणः ॥२६

श्रुतमास्तु तमात्रकं सकः प्रवहन्नञ्जलिनालिनाशकः ।
निजमूर्ध्नि जवेन तीर्थतः स्वमतः पूततमं त्वमत्यत ॥२७
परिपीय हितोपदेशितं सहसा स्वस्थतयास्थितेऽन्वितम् ।
इह वन्दिजनस्य चाभवज्जय नन्देति वचोऽपि पथ्यवत् ॥२८
भयविस्मयसंरसाद्रसापतिता प्रेतपतेरिवात्र सा ।
कथिताऽसिलतातपोभृताभ्युपलभ्यास्य करेऽर्पिता सता ॥२९
प्रतियच्छत भो यथोचितामिह सन्मातृपदे नियोजिताः ।
सचिवाः शुचिवाचमास्पदे रुचिवानेष यतोऽस्तु नापदे ॥३०
प्रभवेन्नृभवेऽयमुत्थितः स्ववृषे शुद्धिदृशोऽथवाचितः ।
जगतोऽपगतोघचर्वणं प्रचरार्थवणा तद्धि कामणं ॥३१
सुभटाः शुभतारतम्यतः प्रकृतं पश्यत किन्न दम्यतः ।
प्रभवत्सुभवत्सुबोधवत् भवति स्तम्भगतैकसौधवत् ॥३२
इति वः प्रतिवर्मयुक्तये परिगन्तास्म्यहमत्र मुक्तये ।
विनतोऽस्मि पुराप्ययुक्त्ये ह्यनुमन्येत च तन्नियुक्तये ॥३३
इति तन्मितितत्ववद्वचः परिपीयारिपिपत्रवत् क्व च ।
वचनन्तु सभाजनं पुनः स्थितिरन्यैव बभूव वस्तुनः ॥३४
क्व स मिष्टविशिष्टपारणा क्व च तन्निष्ठघनिष्टधारणा ।
द्वितयेऽपि च येऽर्पितश्रिया खलु दोलायितमङ्गिनां धिया ॥३५
जगतस्तु सबाधकार्यतां नितरां स्वैरितरां तथार्यताम् ।
अवधार्य च कार्यकोविदाः समिताः किन्तु रहस्यसम्भिदा ॥३६
पदयोसदयोपयोगिनः परिपेतुर्निखिला नियोगिनः ।
वचसा न च साक्षिणोऽप्यमीर्जयतादेव भवादृशो यमी ॥३७

तनयाभिषवोत्सवक्रिया नृपतेर्निगमसम्भवद् ह्रिया ।
गरलोत्तरलड्डुभुक्तिवदभवत्सभ्यजनाय पक्तिभृत् ॥३८

अदयं हृदयं च योगिनां परिगीयेत गुणानुयोगिनां ।
परिदैविनि दूयते न यन्निजबन्धौ ममतामहो जयत् ॥३९

जनलोचनशुक्तिसन्ततौ विदिते स्वातिहिते महीपतौ ।
श्रुतयाऽश्रुतया किलाऽभवदिह मुक्ताफलताश्रयो नवः ॥४०

गजवत्सजवं विबन्धनः स्फुरिताशं दुरितानिबन्धनः ।
अपरायपरायणस्तथा वनमानन्दनमाप सत्पथा ॥४१

सकृपः सनृपः परिव्रजन् कृतिभिः सन्मतिभिस्त्वभिप्रज ।
अजितोऽत्र जितोर्जितैनसः सुखिनः सम्मुखिनः किमेकशः ॥४२

कुरुराट् पुरुराडुपाश्रयं परमार्थी परमा तवानयम् ।
निधिवद्विधिबन्धुरोदयी समभूतेन तदा मुदन्वयी ॥४३

सहजा सहजातिवैरिभिर्हृदि मैत्री यदिमैर्धृताङ्गिभिः ।
यदिवाय दिवाकरो जिनः क्व तदाशात्र वसाद्रवोऽपि नः ॥४४

अमरैः समरैकवेदिभिः क्रियते कर्मसुमर्मवेदिभित् ।
मुहुरेव जयेति शार्मणं परमुच्चाटनमेव कार्मणम् ॥४५

जिनतोऽभिमतः पराजयः स्वयमस्मान्नयमञ्जुलोलयः ।
कुसुमानि सुमायुधस्य तत् करतश्चाम्बरतः पतन्त्यतः ॥४६

परिधौतमिवाम्बरं शुचिहरितां तीर्थसवोद्भवा रुचिः ।
धरणीतलमब्दनिर्मलं जगतां सम्मदसृष्टये बलम् ॥४७

कमनःशमनन्दिनामुनाऽपहतास्त्रस्त्वनुकम्पयाधुना ।
समिताश्च मिताः सुमश्रियामृतवस्तद्धितवस्तुदित्सया ॥४८

अणिभिर्मणिभिन्नभालतस्त्ववधूतो नवधूलिशालतः ।
स्फुरतः स्फुरतः स्तवः सतां जगतोऽभावगतोऽस्तु तावता ॥४६
समचिन्मम चित्तवृत्तितः सुगभीराऽशुगभीधराऽभितः ।
विशदा हि सदा तथाकृतेः परिखासम्बरिखा विराजते ॥५०
किमुना करमाश्रमाम्भसः किमु सिद्धेर्मदभृद्दृशो रसः ।
नभसो रभसोदयी पतत्यपि गन्धोदकबिन्दुरूपतः ॥५१
विचलद्वल्लतावनं मरुता चालिरुतात्तकीर्तनम् ।
धृतहास्यमिवास्य दृश्यतां परिफुल्लास्यमहो प्रशस्यता ॥५२
वरणत्रमत्रयन्मतं जिनरत्नत्रयवत्समुन्नतम् ।
परिनिर्वृतिसाधनत्वतस्त्रिजगन्मोहकरं महत्वतः ॥५३
गरवद्वरवस्तुयोगतः प्रकृतं तीर्थकृतः प्रयोगतः ।
अपवृत्य हि कर्मकाष्ठकं भवतीदं भुवि मङ्गलाष्टकम् ॥५४
सुचिरं शुचिरद्य कुम्भिनीस्थितिरस्यां न ममावलम्बिनी ।
इति धूपघटास्यधूमकच्छलतश्चोच्चलदेवमस्यक ॥५५
प्रतिलासनिवासमाश्रवाम्बुधिमानन्दधियायमत्र वा ।
करचारतयारमुत्तरत्यनुतारं नटदप्सरोभरः ॥५६
सुमनोभिरुपासिता हितामनुजेभ्यश्च फलोदयान्विताः ।
परितापहरा महीरुहाः परितः श्रीशगुणोपमावहाः ॥५७
जिनसम्बिनयेन पूततामुपलिप्सूनि किलाप वृत्यतां ।
भवनानि बनानि भूभृतः क्रमशः सन्ति जगन्ति किन्वितः ॥५८
क्रमशः श्रमशर्मतोऽर्हतां दशधर्मैरवकृत्य सन्धृताः ।
त्व च एव च सन्त्यमीर्ध्वजादुरितानां सितकम्पितं रुजा ॥५६

अविवादधराश्चराशयस्त्वनुग्रह्णाति यकान् महाशयः ।
युगपच्च युगादिभास्करः स गतान्द्वादशतां सतां वरः ॥६०

जिनसाज्जगतां तु दुर्जयी स हि मोही महिमोहविस्मयी ।
न हि दुन्दुभिकः समस्ति तद् हृदयोद्भेदरवस्तु वस्तुतः ॥६१

नितरामितरायितायते रथमासौ कथमासनायते ।
अधरायत ईशिताऽहता क रहोनीतिरहो निरीहता ॥६२

मनसा वचसा च कर्मणार्चन इन्दुः प्रतिपद्य शर्मणा ।
त्रिगुणं वपुराप्य घूर्णते त्रयजिच्छत्रतया जगत्पतेः ॥६३

शमशोऽयमशोकपादपः ह्ययतीतो जयति प्रमाणपः ।
भविनां कविनामिनां चलन्निजशाखाशयचालनैर्दलं ॥६४

सुमनः सुरभि किलानिलाविनयन्ति त्रिपुरारिराड्गिरां ।
कुसुमाञ्जलिवन्मुदाधिकामभितः स्वर्गिवराः समाशिकां ॥६५

जिनशासनमेव मूर्तिमद् वृषचक्राव्ह्यतस्तरां लसत् ।
निवहन्ति सुरादुरासदमितरेभ्योऽमितरेत इत्यदः ॥६६

जिनचरणवराणामर्चनातत्पराणां,
किमिति न हि सुराणां सत्कृतस्याङ्कुराणां ।
उदय इह ततानां मूर्तभावं गतानां,
चमरमिषमितानां घूर्णते मुञ्जितानाम् ॥६७

भवान्तरोद्बोधनमङ्गिनामतः प्रभोः प्रभावृत्ततया प्रभावतः ।
महोप्यहो कोटिगुणं गतोऽनया रविस्सविच्छापकृतापकृत्तया ॥६८

ध्वनिरयं निरयन्द्रुतमर्हतां रसमयं समयं तनुते सतां ।
गतिरयं तिरयँस्तु पयोमुचः पृथगतोऽनुजनं रुचः (?) ॥६९

समवसरणमेवं वीक्षमाणोऽथ देवं,
गुणमणिमनुलेभे हर्षमेते न रेभे ।
पुलककुलकशंसामन्तरे नो दुरंशाः,
सपदि बहिरुदीर्णाः पुण्यपाकेऽवतीर्णात् ॥७०
संसारसागरसुतीरवदादिवीरश्रीपादपादपपदं समदेन धीरः ।
तत्रानमँस्तु झरदुत्तरलाद्विमत्वा—
न्मुक्ताफलानि निपतन्ति समाप गत्वा ॥७१
प्रसन्नाक्षरपुष्पाणां मालाथालापशालिना ।
गुणैरावर्तितादेनु श्रीवाजीवासुशाखिनां ॥७२
जयस्यहो आदिमतीर्थनाथः शक्रादिभिस्त्वं परिणीतगाथः ।
हितस्य वर्त्मत्वकया पवित्रं न्यदेशि तत्त्वं भुवनस्य मित्रं ॥७३
हे देव दोषावरणप्रहीण त्वामाश्रयेद्भक्तिवशः प्रवीणः ।
नमामि तत्त्वाधिगमार्थमारान्न मामितः पश्यतु मारधारा ॥७४
भवन्ति भो रागरुषामधीना दीना जना ये विषयेषु लीनाः ।
त्वां वीतरागं च वृथा लपन्ति चौरा यथा चन्द्रमसं शपन्ति ॥७५
राज्ञामिवाज्ञा भवतां जगन्ति गताऽविसम्वादतया लसन्ती ।
शिशोरिवान्यस्य वचोऽस्त्वपार्थं मोहाय सम्मोहवतां कृतार्थं ॥७६
विरागमेकान्ततया प्रतीमः सिद्धौ रतः किन्तु भवान् सुपीम ।
विश्वस्य सञ्जीवनमात्मनीनं स्याद्वादमुज्झेत्किमहो अहीन ॥७७
अहो यदेवास्ति तदेव नास्ति तवाद्भुतेयं प्रतिभाति शास्तिः ।
यद्वा स्मरामोऽत्र तमीनरेभ्यः निशापि सा नास्ति निशाचरेभ्यः
तुलान्तवत्तद्द्वयमस्तु वस्तु प्रतिष्ठितं विज्ञहृदीह वस्तुम् ।
न पश्चिमाशेन विना विभर्ति समग्रमंशं खलु यास्ति भित्तिः ॥७८

अभेदभेदात्मकमर्थमर्हंस्तवोदितं सम्यगिहानुविन्दन् ।
शक्नोमि पत्नीसुतवच्च वक्तुं किलेह खड्गेन नभो विभक्तुम् ॥८०
द्वयात्मनोऽप्यस्ति जनो यदर्थी श्रीवस्तुनः सम्प्रति तत्समर्थी ।
वमेर्विधौ यद्यपि वक्त्रमुह्यं विरेचने किन्तु तथानगुह्यम् ॥८१
तत्त्वं त्वदुक्तं सदसत्स्वरूपं तथापि धत्ते परमेव रूपम् ।
युक्ताप्यहो जम्भरसेन हि द्रागुपैति सा कुङ्कुमतां हरिद्रा ॥८२
अङ्गाङ्गिनोर्नैक्यमितीह रीतिर्न भो प्रभो भाति यथाप्रतीति ।
सत्या तदुक्तिः शतपत्रनीतिगुणेषु नष्टेषु परेऽपि हीतिः ॥८३
येषां मतेनाथ गुणः स्वधाम्ना सम्बद्ध्यते वै समवायनाम्ना ।
तेषां तदैक्यात्किल संकृतिर्वानवस्थितिः पक्षपरिच्युतिर्वा ॥८४
सम्मेलनं नो तिलवत्प्रसक्तिर्नान्धाश्मवच्चैतदशक्यभक्तिः ।
सत्तत्वयोरस्ति तदात्मशक्तिः प्रदीपदीप्त्योरिव तेऽनुशक्तिः ॥८५
न सत्सदेकं गुणसंग्रहत्वाद् घृतादयो मोदकमस्तु तत्वात् ।
अनैक्यमेवास्य तथैतु किञ्चिदेकैकतो नैक्यमुपैति किंचित् ॥८६
दारा इवारात्पदवाच्यमेकमनेकमप्येतितरां विवेकः ।
समस्तु वस्तु प्रतिरूपवेशमुद्बोधनायास्त्वथवैकशेषः ॥८७
अद्वैतवादोऽपरिणामभृत्स्याददृष्टहृद् दृष्टविरोधकृत् स्यात् ।
किं यातु सेतुं च तदीयहेतुर्विरुद्धता द्वीपवती भरेतु ॥८८
भावैकतायामखिलानुवृत्तिर्भवे च भावेऽथ कुतः प्रवृत्तिः ।
यतः पटार्थी न घटं प्रयाति हे नाथ तत्त्वं तदुभानुपाति ॥८९
अंशीह तत्कः खलु यत्र दृष्टिः शेषः समन्तात्तदनन्यसृष्टिः ।
स आगतोऽसौ पुनरागतो वा परं तमन्वेति जनोऽत्र यद्वाक् ॥९०

नित्यैकतायाः परिहारकोऽब्दः चणस्थितेस्तद्विनिवेदि शब्दः ।
सिद्धोऽधुनार्थः पुनरात्मभूप संज्ञानतो नित्यतदन्यरूपः ॥६१
काष्ठं यदादाय सदाचिणोति हलं तटस्थो रथकृत्करोति ।
कृष्टा सुखी सारथिरेव रौति न कस्त्रिधातत्वमुरीकरोति ॥६२
निःशेषतद्व्यक्तिगतं नरत्वं विशिष्यते गोकुलतस्ततस्त्वं ।
सामान्यशेषौ तु सतः समृद्धौ मिथोऽनुविद्धौ गतवान्प्रसिद्धौ ॥६३
सदेतदेकं च नयादभेदात् द्विधाप्यधास्त्वं चिदचित्प्रभेदात् ।
विलोडनाभिर्भवतादवश्यमाज्यञ्च तक्रं भुवि गोरसस्य ॥६४
भवन्ति भूतानि चितोप्यकस्मात्तेभ्योऽथ सा साम्प्रतमस्तु कस्मात्
स्वलक्षणं सम्भवितास्ति यस्मादनादिसिद्धं द्वयमेव तस्मात् ॥६५
यद्गोमयोदाविह वृश्चिकादिश्चिच्छक्तिरायाति विभो अनादिः ।
जनोऽप्युपादानविहीनवादी वह्निं च पश्यन्नरणेः प्रमादी ॥६६
शरीरमात्रानुभवात्सुनामिन्नव्यापकं नाप्यणुकं भणामि ।
आत्मानमात्माङ्गनयाथ कामी नखाच्छिखान्तं पुलकाभिरामी ६७
स्वतन्त्रतान्यङ्नियतेस्तु का वा दोषैकता वा प्रतिकर्मभावात् ।
भुक्तौ प्रयुक्तौ न पराश्रया वाक् सरिच्चवार्थ्यं शुचिबुद्धिनावा ॥६८
अहो कथञ्चिद्विभवेत्प्रकृत्या पक्तिर्जलस्यानलवत्प्रवृत्या ।
अमत्रवत्तत्र परत्रनिष्ठां स मुक्तवाँस्त्वं जगतः प्रतिष्ठां ॥६९
साधो मुधाहं ममकारवेशं संक्लेशदेशं जितवानशेषम् ।
प्रक्षीणदोषावरणोऽथ चिद्वान्समस्तमारात्स्फुटमेव विद्वान् ॥१००
यन्मीयते वस्त्वखिलप्रमाता भवेदमेयस्य तु को विधाता ।
श्रुत्याखिलार्थाधिगमोऽप्यशक्त्या–
वलोक्यते भुव्युपनेत्रयुक्त्या ॥१०१

संवोधयत्वत्र न सम्पदेव गुरुर्विवाचामिह कश्चिदेव ।
युक्त्यागमाभ्यामविरुद्धको स भवेद्भवानेव विमुक्तदोषः ॥१०२
सेवन्तु देवन्तु परः परोक्षेऽप्यनन्यवित्कायदिवादरोऽक्षो ।
त्वच्छासनैकाशनकाभियुक्ती हे देव देव्यावपि भुक्तिमुक्ती ॥१०३
साधीयसी भो भवतः समाधिर्व्याधिस्तमाधिर्न कदाप्यवाधीत् ।
चिकित्सको निर्विचिकित्सकोऽसि,
पापात्मनामप्युत हे सुतोषिन् ॥१०४
भगवत्सुभक्तिगङ्गा समुत्तरङ्गा त्वदंघ्रिहितरङ्गात् ।
मां वामदेवमारात् पुनातु चातुच्छविस्तारा ॥१०५
संन्यासिनां जगति मृत्तृणमेव मूल्यं
शक्रादिजीवनमवैमि च तक्रतुल्यं ।
हाच्छाणशं परिवदाम्यपरन्त्वशस्य–
मेवं सुघोष समयस्तव गोरसस्य १०६
निर्विण्णस्य जयस्य संसृतिपथः सिद्धिं समिच्छोः पुनः,
गम्भीरां समवाप्य सम्मतिमतः पृच्छां स साक्षात्कविः ।
मर्मस्पर्शितया प्रबन्धति सतां यं कश्चिदीशो विधिं,
धिष्ण्योत्तानितसङ्गतैः स महितो नर्मण्यविघ्नोनिधिः ॥१०७
(षडरचक्रबन्धः)

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
तेनोक्ते द्विगुणत्रयोदश इतः सर्गः श्रियामध्वनि,
साम्राज्याभिषवैकभूतिभवने अन्येषु चौजस्विनि ॥१०८

इति श्रीवाणीभूषण-ब्रह्मचारिभूरामल-शास्त्रि-विरचिते सुलोचना-
स्वयम्वरापरनामजयोदयमहाकाव्ये
षड्विंशतितमः सर्गः



अथ सप्तविंशतितमः सर्गः

अथानुजग्राह सभाभृदेव नराधिराजं जगदेकदेवः ।
स्वभावतः सद्भिभवाय चारी तमोनुदेवं च मुदेधिकारी ॥१

सम्पद्यतामद्य विपद्युदारमाचारसारं विलसद्विचारं ।
निवेदयाभ्यङ्गगुणाधिकार-मारम्भणीयं खलु योगिनाऽरम् ॥२

सौधायतेऽयं समयः स्त्रपाता पुराकृतिस्ते वृतिरेव जाता ।
ध्वजत्यजत्वप्रकृतिः कृतिन्ते धियोऽधियोगं स्फुटतां यजन्ते ॥३

समाः समात्तं किमु विस्मरन्तु मुक्तस्य युक्तं न विवेचनन्तु ।
भविष्यते स्फीतिमितस्य फालः फलत्यनल्पं किमु नो नृपाल ॥४

दृष्टा प्रवृत्तिः खलु कर्मकृत्तिस्तत्त्वं निवृत्तिर्जगते प्रवृत्तिः ।
भवेद्वेदः परथानिर्वेदः प्रपेदने नास्तु भवानखेदः ॥५

रामोऽथ मोक्तुं परमोऽस्ति भोगी कुतो रहस्यं ममतां वियोगी ।
यथोदितं लंघनमेति रोगी नो गीयते वर्त्मनि वासिनोगी ॥६

यथा प्रथा येन जनस्य दृश्यान्यथा कथा भो यतिनश्तुशस्या ।
पूर्वस्य यत्संग्रहणानुरागो त्यागं परत्राह विरागतांगो ॥७

महद्भिराराध्यतमाशमारात्समर्पयन्ती निरवद्य धारा ।
न यत्र संसारिजनप्रवृत्तिरलौकिकी भातु मुनेर्हि वृत्तिः ॥८

संचालनप्रोञ्छनयोः प्रवृत्तस्तनोर्जनोऽयं प्रतिभाति हृत्तः ।
यतिः सदात्मैकमतिः शरीरसेवासु रे वां न समेति धीरः ॥९

भोगेषु भो गेहभृदस्ति गत्वाघनिग्रहं विग्रहमेव मत्वा ।
भोगे नियोगेन मुनिः प्रवृत आत्मप्रतिष्ठः खलु तान्निवृत्तः ॥१०

जनस्य तु स्याद्विजनेऽभियोग ऋषेरुपेवातिशयाभियोगः ।
शरीरवाधास्वयतेस्तु रोगः साधोः पुनः सुष्ठु समस्ति योगः ॥११
मृदुन्युदङ्‌ मृचणगुद्गुदानेऽप्युरस्युरोजे शुचि चूतताने ।
पुष्पोपगोऽपि स्वकरौ प्रियायाः प्रयोजयन्योजयति व्यवायान् ॥१२
सकंकरप्रस्तरशंकुनोदप्रतोदयोर्यच्छ्तु सप्रमोदः ।
कठोरयोः श्रीपदयोः कशंसच्छीतातपप्रायसहः स हंसः ॥१३
रसत्यसत्यप्रतिमः समश्नन् जनो मनोहार्यशनोच्चितः सन् ।
अस्वादनस्वादनवृत्तिरस्य तस्मादनाचर्वणमस्त्यवश्यः ॥१४
कचेषु तेलं श्रवसोः फुलेलं ताम्बूलमास्ये हृदि पुष्पितेऽलं ।
नासाधिवासार्थमसौ समासात्समस्ति लोकस्य किलाभिलाषा ॥१५
शिरोगुरोरंघ्रिधुरोरजोभिरुरः पुरः पांशु परं सुशोभि ।
फूत्कारपुत्का खलु कर्णपालीत्यदन्तमृष्टस्य मुनेः प्रणाली ॥१६
सारं सतारं लसदङ्गहारं मञ्जीरशिञ्जानमयोपहारम् ।
मित्रैः पवित्रैकतलेऽभिलाष्यं दशां दशाङ्ग सुदृशां क लास्यं ॥१७
शार्दूलसिंहादिपरम्पराणां भयङ्कराणां क वनेचराणां ।
स्फीत्कारचीत्कारपरं तु नृत्यं हृत्कम्पकृद्धीरतयाधिकृत्यं १८
श्रवः सुचानन्यरुचा पुनीता सुधेव पीता वसुधेश गीता ।
मितामरीभिर्मधुराधरीभिर्या वागया वा सदने परीभिः ॥१९
कृतान्तवृत्तान्तसुभैरवारवाभवात्र वाक्मर्मनिकर्मवैभवा ।
द्रुतं नुतं धारय मारयेरणा निशम्यतां लुब्धकलुब्धकर्मिणां ॥२०
विरुद्धवृत्तौ रुषमेति लोकश्छन्दोऽनुगे तर्पनिदर्पनोकः ।
रोषो न तोषो जगदेकपोष ऋषेर्भवत्येव भवोऽपदोषः ॥२१

प्रवञ्चनार्थं स्वसमञ्चनार्थं वचोऽङ्गिनः स्याग्जगतो हितार्थं ।
आख्याति विख्यातिमनिच्छुरेव निःस्वार्थविश्वात्मतयर्षिदेवः २२
स्ववैभवे दैवभवेऽप्यरङ्गी परश्रिया संस्पृहयालुरङ्गी ।
त्यक्त्वा स्वसर्वस्वमपि प्रवृत्तः पुनः परोर्थेषु यतिः सुवृत्तः ॥२३
अभिन्नभावः स्विदनीदृशीषु भासा समासाद्विजितोर्वशीषु ।
अङ्गेन रङ्गेनरराडभीषु धनी घनीभावमपि प्रलिप्सुः ॥२४
कामारितायाः निलयः सुधामा रामापि सामायिकवृत्तिनामा ।
तस्यामतः स्यामतदन्यवृत्तिः सावश्यकस्येति मुनेस्तु वृत्तिः ॥२५
रमासु रामास्वसमास्वमासु ग्रघ्नो जनोऽनित्यमतासु तासु ।
स किञ्चनो तावदकिञ्चनोऽपि योगी नियोग्यङ्गममत्वलोपी ॥२६
धृतः स्वतत्राणकचर्मपाशः करेऽसिरासीदथ चन्द्रहासः ।
मातङ्गमासम्भितवान्सुपाणे सरोषहुंकारपरः प्रयाणे ॥२७
तुम्बी सपिच्छा हृदि सासमिच्छा पुरः पथिच्छादितचक्षुरिच्छा ।
दिवाविहारो दलिताघ्वचारो मुनेः समारोपहृतः कुठारो ॥२८
इतस्ततो भा परिमार्जनीवाविदग्धनुःसावगुणार्जिनी वाक् ।
वेश्येव विज्ञस्य पुनर्मनुष्यान्सम्मोहयन्ती मृतिकामनुस्यात् ॥२९
मुनिस्तु मौनं मनुतेऽञ्जनोनं क्वचिद्धितार्थस्वमुखादथो न ।
निःसारयेद्रत्नमिवातियत्नपुरस्सरं प्रत्नपदं विनूत्नं ॥३०
हन्तोदरायास्तिकृताऽपराधः पतत्यतत्वातृणतोऽपि नाधः ।
बन्धूमपि द्वेष्टि कदन्नकेष्टिर्यद्येकवेलामपि नाशनेष्टिः ॥३१
आपक्षमासं व्रजतोऽपि मन्तुर्गुरूनुरुद्योगपरोऽपि गन्तुं ।
लेश्याविशुद्धिं लभते सुबुद्धिर्नैवापराध्यत्यपि भैक्ष्यशुद्धिं ॥३२

यथा सुखं कौतुकि कौ तु किन्न स्वशर्मतोऽन्यासु दशापवस्नः ।
कुशो विशल्येव करोति हीयदक्लेशयन्त्रेशमपि स्वकीयं ॥३३
न चापलं शापलमात्तजन्तोस्तनोश्चनोद्वेगमृतोऽपमन्तोः ।
कदापि चेदासनवैपरीत्यं ध्रुवं विशोध्याङ्गमथापचित्यं ॥३४
लालाविलौष्ठादिनिचूष्यको न सुधेति बुद्ध्या प्रवरो मघोनः ।
तदाशये चाशयमृत्स्वरेतस्त्यक्त्वा तु केभ्योऽधिकतासमेतः ॥३५
शरीरमात्रं मलमूत्रकुण्डं समीक्षमाणोऽपि मलादिभुण्डं ।
त्यजेदजेतव्यतया विरोध्यमेकान्तमेकान्ततया विशोध्य ॥३६
चित्तं कुवित्तेन तनोः समित्ते विकारभृद्धारभृतिस्तु तत्त्वे ।
पटेन यद्वद्व्रणवत्पदादिरङ्गादिना वेष्टयते खरीदी ॥३७
विकारवर्ज्यं वपुराविभाति महामुनेर्हैममिवाभिजाति ।
यज्जातुषं चेन्मणिकारवारैः रज्जेत किं मौतिकमप्युदारैः ॥३८
सुदर्पणे स्वास्यसमर्पणेन स्वैरं समालम्ब्य समादरेण ।
विभर्त्ति तैलाद्यलकेषु वस्तु भृङ्गारसौंदर्यपरो नरस्तु ॥३९
क्षुरो न रोचिष्णुरवद्यजिष्णुरिरांतरिष्णुः सहजं चरिष्णुः ।
यूकादिशूकाचरणं न मुञ्चेत्कचा न चापल्ययुगेष लञ्चेत् ॥४०
परः परागः प्रकृतः प्रयागः स्फुरन्शरीरे सहजोऽनुरागः ।
सौवर्ण्यमायात्वधुनेति मे हि संस्नाति मृत्स्नाति शयेन गेही ॥४१
सदेहदेहं मलमूत्रगेहं ब्रूगांसुरामत्रमिवापदेऽहं ।
तद्योगयुक्त्या निवदेहपांशु यतिः श्रवत्स्वेदनिपाति पान्शु ॥४२
मृष्टाशनत्रं रुचिवित्कलत्रन्यस्तं त्वमत्रं ग्रसते समित्रं ।
सुविष्टरे स्पष्टतया प्रविष्टः सानुग्रहं सत्यजनेष्टिदिष्टः ॥४३

स्वपाणिपात्रं पुनरल्पमात्रं स्थित्वात्तिकात्रं परतन्त्रसात्रं ।
तत्राप्यथ त्रस्तविजन्तुमात्रं क भोजनं भोजनरञ्जनात्र ॥४४
एतावती स्यादुदरेऽग्निवृद्धिमृष्टेऽशने सत्यसनेति गृद्धि ।
नक्तं दिवं व्यक्तमहो चरिष्णो भवित्यवसाविषयावि जिष्णो (?) ॥४५
स्फूर्तिस्त्वजग्धावृतभाति मूर्तिर्न व्यानजूर्तीति सुगर्तपूर्ति ।
सकृत्समश्नातु यथा न दातुः कष्टं निजस्यावनतिश्च जातु ॥४६
सुचिर्विंतं चर्वितमित्यतुष्यन्नदान्विशोध्यान्तरदान् मनुष्यः ।
सदारुणाम्भिष्कशदारुणापि कलङ्कयेन्मंजनतोऽप्यपापिन् ॥४७
श्रुतिस्तु सत्वानखिलान्समेति द्विजानवध्यान्स्मृतिरप्यथेति ।
द्विजान्वयेष्वेष निजान्वयेषु कुतोऽङ्गलिस्पर्शनमेतु तेषु ॥४८
अनल्पतल्पे तनुनस्त्रियामामङ्गीकरोतीव तु कान्तयाऽमा ।
जयत्यशर्करिलेशयानःकिलैकपार्श्वेन चिदेकतानः (?) ॥४६
स्वमास्यमादर्शतलेऽभिपश्यँस्तल्पोत्थितो नैश्यरहस्यमस्यन् ।
प्रवर्तते सज्जनतासमचमसौ मनुष्यो व्यवहारदत्तः ॥५०
साम्ये समुत्थाय धृतावधान इष्टेप्यनिष्टेऽपि कृतावसानः ।
अबुद्धिपूर्वं च समुत्थमागः संशोधयत्यव्यविदस्तरागः ॥५१
प्रयोजनाधीनकबन्दनस्तु विलोकते कापि जनो न वस्तु ।
मुर्द्धापि रामांघ्रिनलेषु दीनः रतेष्टिमान्योऽलिखिव्यलीनः (?) ॥५२
यतिस्तु तत्वैकमतिर्जिनादिष्वास्ते गुणाधीनतयाऽभिवादी ।
आदीनवादीनतया प्रसादीष्वेकान्ततः स्वान्त इहाप्रमादि ॥५३
स्तवोऽथ बोधस्य समाश्रमे तु निरीहतायाः स समस्ति हेतुः ।
मनश्चनः काञ्चन काञ्चनाप्य यो वा यदर्थी सतदभ्युपायः ॥५४

सम्पादयाम्यद्य तदेतदादावपूर्णमंताहि अहो प्रमादात् ।
तत्कृत्यमित्यं च तदित्युपायपरो नरोऽयं भविता सुखाय ॥५५
यतिः सदैवं यततेऽनवद्यपथा प्रथावानहमद्य सद्यः ।
त्यजामि यद् ह्यः स्खलितं ह्यसह्यं स्वस्तावदास्ते रुचिकृन्तमद्यं ॥५६
स्वबन्धने स्वार्थनिबन्धनेन शास्त्राणि शस्त्राणि वदत्यकेन ।
कदापि चेदाश्रयतीष्टसिद्धिकराणि तानीति नरेश विद्धि ॥५७
निराश्रयत्वेन समाधिजानि समुत्तरँस्तान्यथ दुःश्रुतानि ।
ध्यानात्यये श्रम्यति चागमेषु स्वभावसम्भावनयान्वितेषु ॥५८
तत्तत्समाधानविधावनेनादेहाय हा कर्मकरायते ना ।
विपद्यतेऽतीव विपद्यमानेऽमुष्मिन्नहो किन्नु रहो न जाने ॥५९
श्रमैकसम्वाहि किलाभिजल्पन्विनिर्वहत्याात्तकलत्रकल्प ।
ज्वलत्कुटीरोपममेतदङ्गमापत्त्वणे मोक्तुमुदेत्यसङ्गः ॥६०
स्वयरतः परतर्षधुद्धरोऽनुभवतो भवतोऽथ तरद्गुरोः (?) ।
समुदितो मुदितोऽपि नयोऽसकौ तनुचितोऽनुचितो हि महीशकौ ॥६१

आपातमात्ररमणीयमणीयसे तत्,

किंपाकवत्परमपाकरणीयमेतत् ।

पातुं नृपातुरयातु न यातु कश्चित् (?),

यद्वद्विपाकपङ्कं कटुकं विपश्चित् ॥६२

अनन्यमान्या स्वगुणैकधान्या मुनेः सदा न्यायपथानुमान्या ।
जनस्य नौतिः परतः प्रणीतिसमीतिरास्ते विकलप्रतीतिः ॥६३
पादुके वसति कराटकाततेऽप्यस्तिचिज्जगति गुप्तये यतः ।
दीपिकेव जगतः प्रकाशिनी नाङ्गिनः स्वतलमभ्रभासिनी ॥६४

धर्मस्वरूपमिति सैष निशम्य सम्य-
ग्नर्मप्रसाधनकरं करणं नियम्य ।
कर्मप्रणाशनकशासनकृद्धुरीणं,
शर्मैकसाधनतयार्थितवान् प्रवीणः ॥६५

जग्मुर्निर्वृत्तिसत्सुखं समधिकं निर्देशतातीतिपं,
यस्मादुत्तमधर्मतः सुमनसस्ते शश्वदुद्भापितं ।
कुज्ञानातिगमन्तिमं सुमनसा तेनार्जितः सिद्धये,
येनासौ जनिरायतिः सकुशला पश्चाय तच्छित्तये ॥६६

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं धृतवरी देवी च यं धीचयं ।
काव्यमञ्जुतमेऽस्य विंशतितमः सप्ताधिकोऽत्येति यः,
सत्कर्तव्यपथोपदेशनपरो लक्ष्योऽप्यवर्गश्रियः ॥६७॥

इति श्रीवाणीभूषण-ब्रह्मचारि-भूरामलशास्त्रि-विरचिते
जयोदयमहाकाव्ये सप्तविंशतितमः सर्गः

अथाष्टाविंशतितमः सर्गः

सदारुणोदितां वृत्तिं परिवर्त्य सतां पतिः ।
गुरोरनुग्रहप्राप्त्या समवापाच्छतामथ ॥१
राजतन्त्रपरित्यागात्समिनोदितवर्णता ।
पश्यतो हरतो जाताथानिद्रालोः स्वशर्मणि ॥२
स्फोटयितुं तु कमलं कौमुदं नान्वमन्यतः ।
सानुग्रहतयार्हन्तमुपेत्यासीत्तपोधनः ॥३
सहसा सह सारेणा-पदूषणमभूषणं ।
जातरूपमसौ भेजे रेजे स्वगुणपूषणः ॥४
सदाचारविहीनोऽपि सदाचारपरायणः ।
स राजापि तपस्वी सन् समक्षोऽप्यक्षरोधकः ॥५
हेरयैवेरयाव्याप्तं भोगिनामधिनायकः ।
अहीनः सर्पवत्तावत्कञ्चुकं परिमुक्तवान् ॥६
पञ्चमुष्टिस्फुरद्दृष्टि प्रवृत्तोखिलसंयमे ।
उच्चस्थानमहाभागो वृजिनान्वृजिनोपमान् ॥७
कृताभिसन्धिरभ्यङ्गनीरागमहितोदयः ।
मुक्ताहारतया रेजे मुक्तिकान्ताकरग्रहे ॥८
प्रायश्चित्तं चकारैष विनयेन समन्वितं ।
स्वाध्यायसहितं धीरः परिणामानुयोगवान् ॥९
मारवाराभ्यतीतस्सन्नथो नोदलतां श्रितः ।
निवृत्तिपथनिष्ठोऽतिवृत्तिसंख्यानवानभूत् ॥१०

अनेकान्तप्रतिष्ठोऽपि चैकान्तस्थितिमभ्यगात् ।
अकायक्लेशसम्भूतः कायक्लेशमपि श्रयन् ॥११
नीरसत्वमथावाञ्छत्समीनपरिणामवान् ।
नदीनभावमापापि निर्जरोक्तगुणाश्रयात् ॥१२
नानात्मवर्त्तनोप्यासीद् बहुलोहमयत्ववतः ।
समुज्ज्वलगुणस्थानग्रहोऽभूत्तन्तुवायवत् ॥१३
राजसत्वमतीयाय सत्वरं जितभावनः ।
कञ्जातमधिकुर्वाणस्तमोपहतया स्थितः ॥१४
दिन एव व्यभात्सद्यगोचरीकृतभक्षणः ।
रात्रावविधुरत्वेन स्थितिमा त्वेत्यथाद्भुतं ॥१५
अपूर्वकरणं कर्तुं स पृथक्त्ववितर्कतः ।
अप्रमत्तदशाविष्ट आत्मानं विचचार सः ॥१६
निवृत्तीच्छुरपीत्यत्र निवृत्तिकरणं गतः ।
जातुचित्पसंरायत्वमित्यतोऽस्य बभूव तत् ॥१७
स मोहं पातयामास समोऽहं जिनपैरितः ।
अनुभूतात्मसामर्थ्यश्चानुभूतदयाश्रयः ॥१८
अशिष्टमन्त्यजं स्पृष्टा वर्णतो यस्तदादिजः ।
तत्क्षणात्केवलं धृत्वा स्नातकत्वमगादसौ ॥ १६
प्रहाणाय तुरुष्कस्येत्यवाप गुरुणानकः ।
शान्तिसंस्थापनायैवं न रागोऽपि विधीयतां ॥२०
विलोमगामिनं चैव निजं मत्वा जिनोऽभवत् ।
सहिष्णुभावतः स्वीयां शक्तिमुद्योतयन्नयं ॥२१

विनतात्मभुवा किन्न साम्प्रतमजपक्षिणा ।
अहिन्दुरयताऽवापि हिन्दुता तेन धीमता ॥२२
सुगर्तसमिताङ्गानां कणानां तेन साधुना ।
निस्तुषीकरणायाथ धृता मुशलमानता ॥२३
अन्यापोहतया चित्तलक्षणेऽथ क्षणे स्थितिं ।
धृत्वा तथागतस्यापि तत्त्वन्ते न भविष्यतः ॥२४
ईशायितां त्रिसन्ध्यं हि स्वीचकार महामनाः ।
नयेनावर्णवादश्च जनेषु प्रतिपादितः ॥२५
आत्मादरयुतेनापि सान्तस्थोष्मविहीनता ।
समक्षलक्षणार्थेषु वैकल्यमधिगच्छता ॥२६
नमस्तुतोऽयमोंकारो विसर्गान्तस्वरूपतः ।
तेनानन्दमयेनापि रूपापभ्रंशवेदिना ॥२७
तपसाधिगतामेव काञ्चनस्थितिमादधत् ।
मुद्रोचितं प्रयोगेण कंकणं कृतवानसौ ॥२८
यो नाभिजातपत्रात्तं सिक्त्वाथो मानसामृतैः ।
शिखालुतां नयन्त्रातं कल्पद्रुममिवान्वयात् ॥२९
यावद् घनं नेत्रवालं तावद् धान्यहितेरतः ।
विश्वतः श्रीस्थितिं मत्वा न तदातिससार सः ॥३०
प्रत्याहारमुपेतो वा यमिताद्युपयोगवान् ।
तत्रान्तरायमासाद्य धारणाख्यातिमादधौ ॥३१
जगतां विमुखेनापि सतां मार्गे सपक्षता ।
साधनेन विना साध्यसिद्धिरासीदहोऽस्य तु ॥३२

अपत्रपाज्जगद्वृत्तात्संत्रस्तहृदयो भवन् ।
सम्पल्लवसमालब्धां योऽगच्छायामुपाविशत् ॥३३
भक्तात्मनास्फुरद् पाराध्वितान्नपयोगिता ।
व्यञ्जनं वास्तुकोद्भूतलवणं तत्र सम्मतं ॥३४
क्षमाशीलोऽपि सन् कोपकरणैकपरायणः ।
बभूव मार्दवोपेतोऽप्यतीव दृढधारणः ॥३५
अप्यार्जवश्रिया नित्यं समुत्सवक्रमङ्गतः ।
पावनप्रक्रियोऽप्यासीत्तदाशौचपरायणः ॥३६
श्यामतां नान्वगाच्चित्ते सत्यानुगतवृत्तिमान् ।
यमादभीत एवासीत्संयमप्रभयान्वितः ॥३७
असन्तप्तान्तरङ्गोपि तपसि प्रणिधिं गतः ।
न त्यागमहितोऽप्यासीत्त्यक्ताशेषपरिग्रहः ॥३८
संगीतगुणसंस्थोऽपि सन्नकिञ्चनरागवान् ।
वर्णनातीतमाहात्म्यो वर्णितोचितसंस्थितिः ॥३९
श्रीयुक्तदशधर्मोऽपि नवनीताधिकारवान् ।
तत्वस्थितिप्रकाशाय स्वात्मनैकायितोऽप्यभूत् ॥४०
विनयाधिगतः सत्सु नयाधीनोप्यसौ सदा ।
सर्वारम्भवियुक्तः सन् योगमालब्धवान्मुहुः ॥४१
प्रायश्चित्तमधात्स्वस्मिन्प्रायश्चित्तातिदूरगः ।
सोऽहमित्यप्यनुध्यायन्नहंकारातिगोऽभवत् ॥४२
हंसोऽप्यत्रापि काकस्य रीतिः सौवर्ण्यभागिति ।
प्रतिलोमविचारेण सोहमित्यनुवादिना ॥४३

समारोहक्रमोप्प्येवं नयतो वस्तुसम्विदः ।
तस्यासीत्सकलादेशो विधुतादृष्टभावतः ॥४४
नभोगतत्वसंग्राही नित्यमेव निरम्बरः ।
परमागमतल्लीनः परमामहरन्नपि ॥४५
आदिनाथोक्तमादेशं गतोऽनादिस्थलं दधत् ।
अजपोक्तविधिं वाञ्छन् स जयेऽभूत् परायणः ॥४६
शिवार्थं वृषमारूढः सदृत्तपदमाश्रितः ।
सोमलब्धोत्तमाङ्गोऽपि यदहीनगुणाश्रयः ॥४७
ज्ञानार्णवोदयापासीदमुष्य शुभचन्द्रता ।
योगतत्वसमग्रत्वभागजायत सर्वतः ॥४८
सुरतोचितचेष्टस्य नरतासु गुणस्थितिः ।
समुल्लंघनभाजोपि विनयाचारधारिणः ॥४६
सुमता स्वीकृता तेनासुमताप्यधुना पुनः ।
कुलता सुलता येनामानिमानि जनुः कृतं ॥५०
सजताप्यजतावापि येनात्मनि नयेन तु ।
निश्चयेन चयेनापि भूर्विभूक्तिभृता तदा ॥५१
देहेऽपि निर्ममत्वेन ममत्वं नो व्यथाकरः ।
न तत्वमपि बिभ्राणस्तत्थमपि गुरूक्तिषु ॥५२
समरूपगतां वृत्तिं दधानो न लताश्रितां ।
वारितापक्रमोप्प्येवं नतरूपगतिं दधौ ॥५३
मरुताश्रितसम्पत्तिमिच्छताथ स्वरङ्गता ।
साधूरीक्रियते स्मैवं निर्जराशयसंजुषा ॥५४

सज्जातरूपक्लृप्तिश्च विटपत्त्रातिगास्य तु ।
सदारतास्थितिस्त्यक्तदारस्यापि सदध्वनि ॥५५

सनस्तेनोपकाराय विधिरङ्गीकृतः सदा ।
भीमयमद्भुतानां च भीमुपेदमिहाद्भुतं ॥५६

अग्रे सतस्करयुतिं लेभे नादत्तमाग्रपि ।
न दैवस्यानुमोदाय सदैव गणभृच्च सन् ॥५७

आत्मवृत्तिरजातःवभृता गौरविणीकृता ।
तेनाविकृतमित्येवं वृषभावमुपेयुषा ॥५८

पूरणायेत्यथोवाच्छन् घटकं प्राप्य चात्मनः ।
वनस्थानमभिज्ञोऽभूत्स प्रमोचोपसंगृही ॥५९

आत्मानमभ्युपेतस्सन् गत्वाहमिति साम्प्रतं ।
सम्प्राप वर्णनातीतं सम्वित्तत्वं समन्ततः ॥६०

विधोरमृतमासाद्य सन्तापं त्यजतोऽर्कतः ।
पूरणाय प्रभातोऽपि सन्ध्यानन्दी चितश्रियः ॥६१

सावश्यकोऽपि गुप्तिस्थस्त्यक्तर्द्धिश्च महर्द्धिकः ।
मनःपर्ययसंरोधी मनःपर्ययमाप्तवान् ॥६२

स निर्ग्रन्थोऽपि सम्प्राप्तनिखिलग्रन्थविस्तरः ।
गणितामाप देवस्य गणितातीतसद्गुणः ॥६३

सुदयानवलोप्यत्र न दयानवलोऽङ्गिनां ।
अलीकविप्रियोप्येष रेजे नालीकविप्रियः ॥६४

तपःश्रियाश्रितोप्येष जगदातपवारणः ।
निस्तृष्णोऽपि सदैवासीदमृताप्तिपरायणः ॥६५

द्वादशात्मतपनक्रमं विदन्नष्टविंशमगुणादरीतरां ।
सम्व्रजञ्जगति तारकाशयं प्राप्तवानिति दिगम्बरप्रभां ॥६६
स्वष्टदलं कमलं मलयन्ती कौमुदमत्कलमुत्कलयन्ती ।
वृत्तिमवन्दवणदां स्वकलाभिः सोऽभिरराज सुधांशुसनाभिः ॥६७
सकलं सकलङ्कमात्मनोपहरन्मानहरो हरद्विषः ।
समवाक् समवाप योगिभिः प्रतिपत्तिं प्रतिपत्तितिच्चितः ॥६८
चक्रिस्त्रीन्दुसुभद्रयार्पितक्षमादेशा सुशेषावती,
ब्राह्मीदेशितमेषितं सुमतिभिस्तप्त्वा समुग्रं सती ।
दोषायात्र कलत्रतेति किल संसिद्धेः समृद्धयेकभूः,
सन्निघ्नच्युतमच्युतेन्द्रविभवं सल्लोचना चान्वभूत् ॥६९
संसारतोभूद्भवतोऽन्यरूपस्य परस्य हि ।
के चामृते क्रियाधातुः पुनरुक्तविधायिनः ॥७०
तज्जन्मोत्थितमित्थमुन्मदसुखं लब्ध्वा यथापाकलि,
पश्चात् सम्प्रति जम्पती अदमतामेवं हृदा चारुणा ।
पञ्चाक्षाणि निजानि निर्मदतया तद्वृत्तमत्युत्तमं,
मंक्षूद्गीतमिहोपवीतपदकैरित्युत्तृणाङ्कं मम ॥७१
(तपःपरिणामश्चक्रबन्धः)
यं पूर्वजमहं वन्दे स वृषोत्तमपादपः ।
एतदीयोपयोगायेयं सम्पल्लवता मम ॥७२
इतीयं कवितावल्ली भूयः पल्लविता रसैः ।
त्रिवर्गं सन्निपातघ्नं फलताद्वलतां सतां ॥७३
अहो काव्यरसः श्रीमान्यदस्य पृषता व्रजेत् ।
दुवर्णतां दुजनस्य मुखं साधोः सुवर्णतां ॥७४

कथाप्यवितथा जीयादात्मकल्याणकारिणी ।
परिक्लेशकरी वार्ता भूरिभिः क्रियते जनैः ॥७५
गुरोरनुग्रहः सेतुः स हेतुर्मे तु जायते ।
प्रबन्धवारिधेः पारं गतो येनास्मि हेलया ॥७६
प्रसादात्पूज्यपादानां शब्दार्णवमयं गतः ।
लघुप्रक्रियया ख्यातो यातु किं गुणनन्दितां ॥७७
इहोक्तवृत्तरत्नानां परीक्षामुखतां दधत् ।
माणिक्यनन्दितामेतु योऽकलङ्कधियं गतः ॥७८
पूर्वजानां सतां सूक्तं समाराध्यापि सुस्थिता ।
मदीयोक्तिर्न किं स्वाद्या गुडाज्जातेव शर्करा ॥७९
न वक्रमानन्दमुदाहरन्तीममूनि चेच्छ्रीकवितां श्रयन्ति ।
सुधामपि प्रार्थयितुं जयन्ति पुनर्न भोगाश्रयिणीं जगन्ति ॥८०
घटिका घटिकार्थस्य समयः समयोऽसकौ ।
परवाणिः परवाणिर्भास्करो भास्करोप्यहो ॥८१
सालङ्कारा सुवर्णा च सरसा चानुगामिनी ।
कामिनीव कृतिर्लोके कस्य नो कामसिद्धये ॥८२
कवितायाः कविः कर्ता रसिकः कोविदः पुनः ।
रमणीरमणीयत्वं पतिर्जानाति नो पिता ॥८३
सद्वृत्तकुसुममाला सुरभिकथाधारिणी महत्येषा ।
पुरुषोत्तमैः सुरागात्सततं कण्ठीकृता भातु ॥८४
यदालोकनतः सद्यः सरलं तरलं तरां ।
रसिकस्य मनो भूयात्कविता वनितेव सा ॥८५

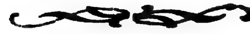
सदुक्तिमपि गृह्णाति प्राज्ञो नाज्ञो जनः पुनः ।
किमकूपारवत्कूपं वर्द्धयेद्विधुदीधितिः ॥८६
कवयो जिनसेनाद्याः कवयो वयमप्यहो ।
कौस्तुभोऽपि मणिर्यद्वन्मणिः काचापि नामतः ॥८७
गुणभद्राः कथयन्ति कथां यां तत्र कुतः प्रवृत्तिर्मम भूयात् ।
गुरुमनुगच्छन्सूक्समवाये मालिकमूनुरनुग्रहमेति ॥८८
विशेषयन्कथाभागं कविः कश्चित्कलागुणैः ।
पिवन्तः पर्वतापायं कपयोऽन्ये सहस्रशः ॥८९
लोके समन्तभद्रोऽसौ प्रबन्धो जयताच्चिरं ।
सम्भवन्नकलङ्कश्च विद्यानन्दः शिवायनः ॥९०
महापुराणं मधुरं विलोड्य क्षीरवन्मया ।
नवनीतमिवारब्धं प्रीत्यै भूयात्सतामिदम् ॥९१
गुणविगुणविदन्तु स्नागपि ख्यापयन्तु,
विशदिमविशदंशाः पेयताङ्केऽत्र हंसाः ।
अशुचिपदकतुष्टा आत्मघोषाः सुदुष्टाः,
किमिव न हि वराकाः काकुमायान्तु काकाः ॥९२
कार्पासविशदाः सन्तो नानापत्तिसहा अहा ।
येषां गुणमयं जन्म परेषां गुह्यगुप्तये ॥९३
अपरार्तिपरत्वतः सुवर्णं बहु सन्तापय भो सुवर्णकार ।
अमुकस्य गुणोऽतिरिच्यतेऽस्मात्तव तुण्डे खलु भस्मसन्निपातः ॥९४
आशिकाधारभूतेभ्यः शीलवृत्तेभ्य उत्तमं ।
कथमप्यैमि गुर्वीकः शस्यसम्पत्करं खलं ॥९५

गवामाधारभूतास्ते यद्यपीह सदङ्कुराः ।
खलं लब्ध्वा भवन्ती मा रससंचरणक्षमाः ॥६६
विरजाः प्रभुरज्ञानध्वान्तभित्परमारवः ।
परमारक्षतान्मोहनिद्रालुं स प्रजां रविः ॥६७
राजते योगदक्षो यः सामायकनिलिम्पिनः ।
सृजत्वयोक्तिदः प्रायः स मां पाकं कलिस्थितं ॥६८
नयमानपरं स्वानं न स्वालम्बाणिमान् पुनः ।
स पुमान्याति स वननवसं प्रशमायनः ॥६९
जीवानां जीवनाधारस्तदक्षरयुगं प्रभो ।
तवास्माकं मिथो भूयादनुलोमविलोमतः ॥१००
विनमामि तु सन्मतिकमकामं द्यामितकैमहितं जगति तमां
गुणिनं ज्ञानानन्दमुदासं रुचां सुचारुं पूर्तिकरं कौ ॥१०१
जयतात्सुनिबन्धोऽयं पुष्यन्सन्निगलं चिरं ।
राष्ट्रं प्रवर्ततामिज्यां तन्वन्निर्बाधमुद्धुरं ॥१०२
गणसेवी नृपो जातराष्ट्रस्नेहो वृषैषणां ।
वहन्निर्णयधीशाली ग्राम्यदोषातिगः क्षमः ॥१०३
स्थिरत्वं मनुजाश्चेतः श्रीमन्तोवन्तु सूक्तिमत् ।
चमत्कुर्याज्जगन्नेतुर्भुवनेषु वृषो निजः ॥१०४
नित्यमभ्येयं संसर्गं महतां शुभकर्मसु ।
तताधीस्स्याच्च चित्तश्रीर्भूयाच्छ्रीश्रुतेतत्परा ॥१०५
मनागपि न संचारः कृच्छ्रेषु मम धीमतः ।
प्रसादादर्हतां शम्बधोरिणी स्यादिति स्वयं ॥१०६

अयणीयास्तु का शुद्धा ब्रह्मविद्भिः किमर्जितं ।
विद्वद्भिः का सदा वन्द्या मण्डितं तैः किमस्तु नः ॥१०७
किमन्यदुच्यतामत्र सफलं समितिस्थले ।
सदुक्तेर्वाचिनं यावदाद्यन्तं जन्मिनो भवेत् ॥१०८
जनयतु पुरुरभिरामज्येष्ठो रावणावनसरी पुनराग-
स्तोरण च चातुयभुवा जटितं जनतायतभूनीराग ।
मधुर आदिवागडिम्बकरणकथाविसरशुचितातितिसुज्ञा,
लोकचक्रनाथः स्वमयं नवलोऽरं ध्वनिशिवं बुधमनस्सु ॥१०९
पुरुषपदार्थवरालोकमिते विक्रमोक्तसम्वत्सरं हिते ।
श्रावणमासिमितिं प्रतियाति पूर्णां निजपरहितैकजाति ॥११०
श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुजः स सुपुत्रं भूरामलोपाह्वयं,
वाणीभूषणमस्त्रियं घृतवरी देवी च यं धीचयं ।
तत्काव्यं लसता स्वयंवरविधिश्रीलोचनाया जय-
राजस्याभ्युदयं दधत् वसुदगित्याख्यं च सर्गं जयत् ॥१११

नोटः—१ एतद्वृत्तस्य एकान्तरिताक्षरैः कवेः प्रशस्तिर्निगच्छति

जयोदय महाकाव्यस्य शुद्धयशुद्धिपत्रम्



पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
२	३	स मासाद्य	समासाद्य
३	६	घ निष्ठा	घनिष्ठा
४	११	मद्दुर्हृदां	यद्दुर्हृदां
५	१८	संसारणात्	संसरणात्
५	४	द्रुतमीर्षमार्य !	द्रुतमीर्षयार्य !
५	५	गोधं	गोघं
५	१७	मन्तु मदच्चराणां	मन्तु-मदच्चराणां
६	९	सौराष्ठवस्य	सौष्ठवस्य
६	१४	दम्बुदञ्चं	दम्बुजञ्च
६	२५	चपल्लत्व	चपलत्व
८	१३	संखन्यगुणो	शंखस्यगुणो
९	१०	मूर्तयातं	मूर्तया तं
१०	१२	मङ्गींचकार	मङ्गीचकार
११	१८	विभवोः	विभवाः
१५	४	परिपूर्णास्थिनिः	परिपूर्णास्थितिः
१५	७	नृणाप्तयेमार्पशीति	नृणा-मार्परीति
१५	८	दुद्रु खुर्जने	दद्रुखुर्जन

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
१५	१४	पौत्रिका	पैत्रिका
१५	१८	मय्युराश्रय	मय्युपाश्रय
१६	१६	धर्मकमसु	धर्मकर्मसु
१६	२१	वाष्ट वद्	वाएट वाद्
१६	२१	धासव	धासव
१६	२२	पाशवेद	पाशवद्
१८	१२	रमतीर	रमितीर
१८	१४	अनपापिनी	अनपायिनी
१६	७	सन्पठेन्	सम्पठेत्
१६	२०	सदसदीयते	सदसदीच्यते
१६	२२	पद्वी	पद्वीं
१६	२२	विशुद्ध	विशुद्धि
२४	१६	तानवोमिति	तानवोपमिति
२५	३	रससान्	रसतान्
२७	६	यङ्गा	भङ्गा
३२	१२	दष्टिमान्	इष्टिमान्
३३	८	तदास्या	तदास्मा
३३	१६	पथामाततया	पथायाततया
३३	१६	वैरीशत्राशिफरराजि	वैरीशत्राजिशफराजि
३४	११	मस्थितस्य	प्रस्थितस्य
३४	१२	कुशलं	कुशल

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
३४	१३	वपत्त्रेऽपि	त्रिपत्त्रेऽपि
३४	१४	अथत्रपतया	अपत्रपतया
३५	१५	रपूर्वे वा	रपूर्वं था
३६	६	वसन्तो	वसन्ते
३७	२	साध्व्यायंतो	साध्व्या यतो
३७	१४	मूर्धनिधूर्णा	मूर्धनिघूर्णा
३८	१	त्ये बिहुला	भ्यो बहुला
३८	१०	मानसः	मानः सः
३८	१६	भेदकं	भद्रकं
३८	१६	सुभ्रपो	सुभ्रुवो
४०	३	तन्ता	तान्ता
४०	१४	सुद्दक सुस्त्रक्	सुद्दक्कुसुमस्त्रक्
४०	२१	मुदि रोमानस	मुदिरो मानस
४१	१	संस्त्रोतया	संस्त्रोतसा
४१	५	समवाप	समवाप्य
४१	१३	मनीपिणां	मनीपिणा
४१	१४	मग्रगयिना	मग्रगाभिना
४१	१५	तिलकोचितः	तिलकोञ्चितः
४१	२२	शाचिपां	शोचिषां
४२	१	मञ्जुला	मञ्जुलः
४२	१४	परपराद्वैरी	परराडवैरी

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
४३	४	तेनाराट्	तेनारात
४३	५	तन्नागतं	तत्रागतं
४३	६	स्वथावाधिपः	स्वभावाधिपः
४४	१२	नु या	नु मा
४४	१४	यश्चतुष्पथक	यच्चतुष्पथक
४४	१८	नप्युपचारः	नाप्यपचारः
४५	१	हिमवान्	हि भवान्
४५	६	निर्निमिन्त्रणतया	निर्निमन्त्रणतया
४५	१५	आग्रतं	आगतं
४६	४	ग्लौकाः	मौकाः
४६	७	मयापः	मपापः
४६	२१	भर्त्तर्मानसं	भर्त्तुर्मानसं
४६	१७	मपात्	मयात्
४८	६	रसानुपभोग्यः	रसान्नुपभोग्यः
४८	७	मुवेतः	मुपेतः
४८	१३	फुल्लदान	फुल्लदानन
४९	१०	आपगामगत	आपगापगत
४९	१०	युवतीर्या	युवतिर्या
५०	२	तमिस्त्राभ्यापुष्ट	तमिस्त्राभ्यामपुष्ट
५०	६	वत्संस्मृतये	बल संस्मृये

पृष्ठा:	पंक्तय:	अशुद्धा:	शुद्धा:
५२	१०	यापः	यापूः
५२	१५	खचिसानि मसानि	खचितानि मतानि
५२	१६	भवादृशापि	भावदृशापि
५२	१७	तत्सुख	तत्सुप
५३	१	आत्मता	आत्मसा
५३	५	सा मग्नौ	स मर्मो
५३	१४	वगः	वर्गः
५६	१५	कुतं नगल	कृतं न गल
५७	४	व्यवहृता	व्यवहृतो
५८	१	लमार्जः	समार्जः
५९	११	विषयात्तग्रजं	विषात्तद्ग्रजं
६१	५	नभ्युगपमम्य	नभ्युपगम्य
६१	२२	मिदंघ्रि	मदंघ्रि
६२	८	मुदश्रुवाहा	मुदश्रुवा हा
६३	१६	स्वजनजित	स्वनजित
६३	८	वरदासान्वसमायात्	स्ववरदा सास्तस मायाम्
६३	८	शुभापाः	शुभायाः
६४	९	अनपन्ताम्बर	अनयन्ताम्बर
६४	१२	चरभे	चरथे
६४	१३	न भादर	नथादर
६४	१६	तवाभरतेः	तवाथ रतेः

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
६५	१६	च भवानिह	चयवानिह
६६	१५	नमति	नयति
६७	६	वशैंमितमिङ्क्तिं च चारायाः	वशैंमितमिङ्क्लिं-वारायाः
६७	१४	सखि	सुखि
६८	१	रसनाभिके	रसनाभिक नाभिके
६८	५	सरात्	सारात्
६८	७	तश्च	ततश्च
६८	१५	मद्गज	यद्गज
६९	६	हलगज	हतगज
६६	६	नमि	नपि
७१	२०	वारिजलैः	वासिजलैः
७३	१	अन्नधराधीश्वराः	अत्रधराधीश्वराः
७५	१८	विरे स	विरेत
७८	२	सम्यगुल्कलितं	सम्यगुत्कलितं
८२	६	दशोविष्टो	दशाविष्टो
८२	१५	करणे	कारणे
८३	४	पद्यत्	पाद्यत्
८३	७	समेथ	समेद्य
८३	६	सेजसा	तेजसा

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
८४	१४	मृशाल	मृणाल
८४	२०	करियरीति	करिपरोति
८५	२	धनोच्चिते	घनन्त्रितें
८६	७	संगव्रणः	मंगरव्रणैः
८६	१३	व्यात्रशे	व्यनशे
८७	१	कारिणि	कारिणी
८८	१	पूष्यतिः	पूष्पति
८९	२	भकत्र	भकत्र
९२	५	विलूनि	विलून
९२	८	निकम्भा	निकुम्भा
९२	२०	वक्रँ	वर्कँ
९३	१५	प्रवतमानन्तु	प्रवर्तमानन्तु
१००	१७	मुवीदृशी	भुवीदृशी
१००	२२	क्रौकुरुते	कोकरुते
१०१	१६	कथामिवा	कथमिवा
१०१	१७	स्तुतमतास्तु तदैव शं	स्तुतमनोऽस्तु तदैव वशं
१०२	११	मत्तुमुगद्यदः	मश्रुमुगद्यदः
१०२	१७	महीपतुजोविलसत्	महीपतुर्विलसत्
१०३	३	तापरपेण	तापरयेण
१०३	१३	मृदुनादि वा	मृदुनादिना
१०४	१	तर्को	तर्कं

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
१०५	१६	मयितुं	ययितुं
१०७	६	वा मपि	वा गपि
१०७	१४	सोरभावममनेन	सोरभावगमनेन
१०६	१६	यथादरात्	धृतादरात्
११०	१	नगरीयसा	च गरीयसा
११०	२	मृदीसा	मृदीयसा
११०	१०	मोक्तस्रजां	मौक्तिस्रजां
११०	१०	रचिभि	रुचिभि
१११	५	भवञ्च	भवञ्च
१११	१२	नतभ्रुस्तयोः	नतभ्रुवस्तयोः
१११	१३	शीलाम्भ	शीतलाम्भ
१११	१७	जरतीतीष्टि	जरतीष्टि
१११	१८	मुञ्चलद्बुचः	मुञ्चलद्बुचः
१११	१८	प्रोच्छनकेत	प्रोच्छनकेन
१११	२१	प्रावृडभृत्	प्रावृडभृत्
१११	२२	मुज्ज्वाम्बरा	मुज्वलाम्बरा
११२	१०	विधत्व	विधवत्व
११२	१३	कंजलस्य	कज्जलस्य
११२	१८	तत्समरूपर्णां	तत्समरूर्णां
११२	१६	महर्षतां	महर्घतां
११३	७	यन्त्रिक	यत्रिक

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
११३	१३	श्रियमति	श्रियमेति
११४	१५	कपोलने	कपोलके
११५	४	सन्दिच्चया	सन्दिदृच्चया
११५	१४	साप्टषत्	सास्पृषत्
११५	२०	चित्तमूहे	चितमूहं
११६	१७	सद्भिराशासितः	सद्भिराशासितः
११६	१७	भुवनं	भवनं
११९	२	योद्धुं	योद्धुः
११९	९	वक्र	वत्रज्ञ
१२२	७	सन्द्रस	सद्रस
१२२	१५	माभिः	भाभिः
१२३	११	भुजाव भूतः	भुजाभि भूतः
१२३	२१	शिरस्तु	शिरस्सु
१२४	१५	गुरोर्भवत्यः	गुरो र्भवान्यः
१२६	१०	न्युच्छ्रनता	न्युच्छूनता
१२६	११	स जयन्तु	सञ्जयन्तु
१२६	१४	यमकस्तु भाथोः	यमकस्तु भाजोः
१२७	१०	सौन्दयसिन्धोः	सौन्दर्यसिन्धोः
१२८	६	पौंड	पौंड्र
१२९	८	अवत्य	अत्रत्य
१२९	१०	रणं	व्रणं

पृष्ठा:	पंक्तय:	अशुद्धा:	शुद्धा:
१३१	११	सुवेषु	सुमेषु
१३१	१५	स्वरुक्	स्वारुक्
१३१	२०	स्मृत्मैव	स्मृत्यैव
१३२	१	पद्माय	पद्माप
१३२	५	कौतुतधृक्	कौतुकधृक्
१३२	१६	चञ्चयते	चञ्चूयते
१३३	११	भीसृदृशः	श्रीसुदृशः
१३४	४	देवऽतेम्बा	देवतेऽम्ब
१३४	८	मेत्तु	भेत्तु
१३४	११	च्छयतया	च्छायतया
१३४	१२	समतं	समेतं
१३४	१२	मेतात्	मेतत्
१३४	१६	यर्तते	वर्तते
१३५	६	दियनत्र	दियमेव
१३५	१४	चातकापनोदं	चातकायनोदं
१३५	१८	मङ्कितकनम्ना	मङ्कितकनाम्ना
१३६	६	विलसत्रिवलीष्टि	विलसत्त्रिवलीष्ट
१३६	६	पुष्या	पुष्पा
१३६	१२	त्रिपरस्त्रीति	त्रिपूरषीति
१३७	८	जायते	जयते
१३७	१६	सेतु	केतु

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
१३८	४	दोहा	
१३८	११	समुदङ्कर	समदङ्कुर
१३८	२१	दधींष्टविन्दुः	दधीष्टविन्दुः
१३८	२२	जिनपाघ्रो	जिनपाघ्रपो
१३९	११	शास्तां	शस्तां
१४०	१	शुमायाः	शुभायाः
१४०	३	मणिरस्या	पाणिरस्या
१४०	७	मनसो:श्रियां	मनसोरप्यनसो:श्रियां
१४०	११	स्त्रयमाणयोः	स्त्रपमाणयोः
१४०	१५	तदान्त	तदात
१४०	१५	दश्रुतजातं	दश्रुजातं
१४०	१६	दधिक्रधिकं	दधिक्राधिकं
१४१	१६	कारणानि	कारणानि
१४१	१६	केरणुजानि	करणुजानिः
१४१	२०	शर्मलेखिनी	समलेखनी
१४३	१४	दुरतोघ	दुरितोघ
१४३	१६	पंक्ति के बाद के छुटा हुवा पाठ—	

सहसा सहसापि कः समायाः मनसः किं पनमः प्रवर्जनाय

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
१४४	१०	कमनां	कामनां
१४४	१७	वलयच्छतः	वलयच्छलतः
१४५	१६	कश्चक	कञ्चुक

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
१४६	१६	पृतञ्जले	पतञ्जले
१४७	८	जायत	जायात
१४६	१	जग	गज
१४६	२	नय	नया
१५०	४	मत्तस्	मतस्
१५०	८	त्थपय	स्थापय
१५०	६	यष्टिस्	यष्टिकस्
१५०	१६	ऽनिलेस्	ऽनिलस्
१५१	१३	द्विषतं हि मनांसि शित	द्विषतां हि मानांसि तद्ध्वजे
१५१	१४	विभयेन	भयेन
१५३	१५	महोवलाय	मदोवलाय
१५४	६	भात् शाड्	भाच्छाड्
१५५	२	नु	तु
१५५	६	शङ्कुनापि	शङ्कुनपि
१५७	१७	प्रथुलस्नी भो	प्रथुलस्तनी भो
१५८	६	द्विलितं	द्विगलितं
१५८	१२	केरेणु	करेणु
१६१	२	सुलालिता	सुललिता
१६१	१०	पूरषै	पूरुषैं
१६२	२२	दृष्टा	दृष्ट्वा

पृष्ठा-	पंक्तय:	अशुद्धाः	शुद्धाः
१६५	९	सुकोशि	सुकेशि
१६५	१३	गम्भीरं	गभीरं
१६५	१७	संकतितायाः	संकलितायाः
१६६	७	मालिता	मलिता
१६६	२०	मृष्यु	मृष्टु
१६६	२१	करन्दे निशि येन	करन्दाति शयेन
१६६	२२	यूत्कुरुते	पूत्कुरुते
१६७	३	सुपुभा	सुपुमा
१६७	९	हरिततया	हरितया
१६७	११	समासीनम्	समानीम्
१६८	१७	सम्भवद्	सम्भवाद्
१६८	२०	सुतराङ्गिता	सुतरङ्गिता
१६९	४	तृड्िभिः	तृड्भिः
१६९	९	दर्त्त	दार्त्त
१६९	११	त्वराङ्घ्रि	त्वरङ्घ्रि
१६९	१५	राङ्गिणा	रङ्गिणा
१६९	२२	रनु···र्पतयेत्र	रनुबद्धं र्पतया
१७०	१९	ऽययं	ऽद्ययं
१७१	५	मत्रैव	भर्त्रैव
१७१	१४	मालदस्य	मालदास्य
१७२	१६	सुम्रदतीति	समुद्धतीति

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
१७३	१	निकाप्या	निकाय्या
१७३	१०	तदि······	तदिन्दुदेवः
१७३	१६	कंद्रो	कन्द्रो
१७३	१७	र्मिमकिता	र्भमकिता
१७३	१८	राङ्गिता	राङ्किता
१७४	१८	प्रतिषेधद्दवश्यः	प्रतिषेधदृश्यः
१७५	४	कोक्लिक्लाना	कोकिकाना
१७५	१८	मरणा	भरणा
१७६	१	तण्डले	तण्डुलं
१७६	१	तनुशर्म	ननु शर्म
१७६	३	स्त्रेनोड्डुक	खे नोडुक
१७६	५	थुल्कृतानि	थूल्कृतानि
१७६	८	निमानिमानि	निभानि भानि
१७७	२	आस्थं	आस्यं
१७७	१२	आद्धाश	आकाश
१७८	६	वद्ध माना	वर्द्धमाना
१७६	४	स्मारभंते	समारम्भन्ते
१७६	१०	व्यच्छंदि	व्यछादि
१८१	२	चाश्र	चाश्रु
१८१	१५	तमागमेका	तमागतमेका
१८६	१६	जघन	परिधान

पृष्ठा:	पंक्तय:	अशुद्धा	शुद्धा:
१८१	१८	के बाद छुटा हुवा पाठ—	
		निर्णयितु ं ता नायके रमा पूरमाः शारदस्य रश्मिभि रासरूयं सर्वगं	
१८५	३	चेमो	चेपो
१८५	११	किन्न	क्रिन्तु
१८७	४	सत्कर्मण	सत्कार्मण
१८७	१२	मानान्तु	भानान्तु
१८७	१७	मधुनाय	मधुनाप
१८७	२०	पादो	यादो
१८८	१८	विलास्मि	किलास्मिन्
१८६	१७	पाति	पति
१६४	२२	तदादासा(?)सीम्मियेन	तदादाय स सिस्मियेन
१६५	१४	मिदा	भिदा
१६६	२	कुङ्नलान्तं	कुङ्मलान्तं
१६६	११	यमुत्तानित	समुत्तन्नित
१६६	१४	स्तेनेन	स्तनेन
१६७	११	सन्मतीतिः	सम्प्रतीतः
१६७	१२	रदाद्दशं	रदाद् दूरं
१६७	१४	कगडले	कुण्डले
१६७	२०	काल्कित	कल्कित
१६८	१६	सुभास्त्र	सुमास्त्रं

पृष्ठा:	पंक्तय:	अशुद्धा:	शुद्धा:
१६८	१७	मस्मादि	मस्माद्दि
१६८	२०	प्रसोर	प्रसारे
२००	८	सम्वद्द् गतामति	मम्त्रद्धतामेति
२००	८	मुक्तस्तकिन्नरामो	मुक्तस्तव किन्नरा मे
२००	१४	रतेरिना	रतेरिव
२०१	१	व्याञ्जन	व्यञ्जन
२०१	१०	सात्वयितुं	सान्त्वयितुं
२०३	१२	रोचिया	रोचिषा
२०४	६	समान्वितभितः	समन्विताभितः
२०४	८	श्रणी	श्रेणी
२०५	५	घायाप्युत	धामाप्युत
२०७	१	मत्सवाय	मुत्सवाय
२०७	६	विमात्त	विभात
२०८	१४	पुष्पिणी	पुष्पिर्णी
२०८	१७	म्यान्	स्यान्
२०८	१८	तटौ निपतन्	तटैर्निपतन्
२१०	१०	मरन्तु	भरन्तु
२१३	१२	आमत्रणार्थ	आमंत्रणार्थ
२१८	८	एणः	एषः
२१६	२	देणो	देषोः
२२१	७	चम्बनं	चुम्बनं

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
२२१	१४	सान्निनाय	सन्निनाय
२२१	११	पत्रांकाभा	पत्रांकभा
२२२	७	गन्ता	गन्ता
२२३	१	धरित्री	धरित्रीं
२२३	१२	आशीच्चरगाण्डूष	आसीच्च गण्डूष
२२४	३	भमा	न्निभा
२२५	४	त्वन्निवेहोमुर्धमि	त्वनिर्हहोमुर्धमि
२२५	१४	युक्तया वा	युकृत्वाया वा
२२६	११	स स्मानन्नीयो	सम्माननीयो
२२६	१७	वाञ्छत्र वेः	वाञ्छत्रवेः
२२७	१८	मन्त	मन्त्र
२२८	१८	मतक्रमन्तः	मतंक्रमन्तः
२२८	४	समथनः	समर्थनः
२२९	२३	निरोति	निरंति
२२९	१६	पतेतु	पतने तु
२३०	५	सत्रत्	स्रवत्
२३०	२२	पृष्ट	दृष्ट्व
२३१	२	प्रोदनायघटनाय	प्रोद्घटनाय
२३१	३	व्रजगतस्	व्रजतस्
२३१	१०	वर्द्धे	वार्द्धे
२३२	१४	वाघ	वाद्य

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
२३२	१८	रपापीन्	रपापिन्
२३२	१६	स्त्रियां	स्त्रियाः
२३६	६	नवता	नवका
२३६	१०	वाश्रिसृता	वाभिश्रिता
२३७	१६	यक्षिणी	पक्षिणी
२३८	१	भृत्यतेः	भृत्पतेः
२३८	२	मालिनः	मलिनः
२३८	२	नितान्त मिन्	नितान्तमिन्
२४०	११	कोऽमित	कोऽभितः
२४२	५	सहसमस्था	साहसमस्या
२४२	१६	प्यद्यापदं	घापदं
२४४	८	यात् क्रिया	यत् क्रिया
२४४	६	स्तवः	स्तव स्तवः
२४५	४	सम्मधिगतं	सममधिगतं
२४५	६	लरङ्ग	तरङ्ग
२४६	६	धराञ्च	धराश्च
२४६	१२	विराय सा	भिराप सा
२४६	१५	सयस्सया	सयस्समा
२४६	१६	कारिता	कारिणः
२४७	११	केक	केतु
२४८	१८	मेप्य	मेत्य

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
२४९	१४	चोकाच्चीव	चोद्ध काच्चवि
२५०	१७	हितकद्	हितकृद्
२५१	३	कुलाद्रि	कुलाद्धि
२५१	६	श्रव	श्रम
२५१	१०	प्रस्फुरा	प्रस्फुटा
२५१	१८	पद्धतावीष्टवो	पद्धतावीष्टयो
२५१	२१	रामनाम	दामनाम
२५१	२१	सेहुकृनि	सेहूकृति
२५२	६	तालकोनागरी	तालकांनगरी
२५२	१०	पद्	पाद्
२५२	११	सर्म्पकत्	सम्पर्कत
२५२	१३	यान्तरीयकं	मान्तरीयकम्
२५२	२२	तति	ततिं
२५७	१६	माघस्याप्यसानं	माघस्याप्यवसानं
२५७	१७	सश्चित्रा	सचित्राख्या
२५८	५	सकुचति	संकुचति
२५८	५	यः	माः
२५८	६	सकोचं	समकोचत्
२५८	७	रोमश्च	रोमाश्च
२५८	११	नवद्यां	ध्वनवद्यां
२५९	१६	पदपांग	यदपाङ्ग

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
२६०	१३	कराटकितापि	कंटकितापि
२६१	५	समाद्धतस्तु	समाद् धतस्तु
२६२	४	भामा	भासा
२६२	८	दशोत्पादृता	दशोरादृता
२६२	१७	बानितायाः	वनितायाः
२६३	७	भुवव	भुवन
२६३	१०	द्रचि	द्रुचि
२६५	११	शाकत्य भाजह	भाजह
२६५	१२	तर्ययन्न	तर्पयन्न
२६६	२	व्रजत्	व्रजन्
२६६	१५	रुचं	रूचां
२६६	१६	भवस्त	भवँस्त
२६७	१	प्राणान्वि	प्राणान्विवो
२६७	३	व्यजनः	व्यजनं
२६७	१६	हपाय	हयाय
२६७	१६	मनयतर्कयत्	मनस्यतर्कयत्
२६८	३	सज्जनः	सज्ञनुः
२६६	४	शुच्चूणावे	शुञ्चूषवो
२७०	३	विसतो	विहतो
२७०	१५	विनो	विनौ
२७०	२२	विलसतो	विलासतो

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
२७१	१४	जगत इच्छा या	जगत श्छाया
२७२	१३	फलष्यति	फलिष्यति
२७२	१६	चन्द्रकता	चन्द्रकला
२७३	६	प्रेम	प्रषे
२७३	१६	पुत्तरां	पत्तुतरां
२७३	१७	दागने	दागमे
२७४	१	त्युतो	सुतो
२७४	४	विर्भो	विर्भो
२७५	२	भाविन	भावित
२७५	३	मदेशे	प्रदेशे
२७५	१७	नैप्रधौ	नैषधौ
२७६	१६	द्वाशाशया	द्वशाःशया
२७७	१५	प्रवृषि	प्रावृषि
२७८	४	यत्येण	यत्येष
२७८	६	ममन्दमन्दं	ममन्द भन्ददं
२७८	१०	भाल	माल
२७८	१२	भ्युभपतीति	भ्युभमतीति
२७८	२१	तिपात	निपात
२७९	३	मयाढ्यतां	भयाढ्यतां
२७९	१४	सपथ	सत्पथ
२८१	१५	शपयोश्च	शययोश्च

पृष्ठा:	पंक्तय:	अशुद्धा:	शुद्धा:
२८२	५	क्रमोश्च	क्रमोञ्च
२८२	७	वथवा	वयवा
२८२	१७	कथोः	कयोः
२८३	५	सनदयिता	सन्दयितः
२८३	११	तरा	तरां
२८३	१२	कृषिकृतः	कृष्टिकृतः
२८३	१३	मुश्चकैः	मुञ्चकैः
२८३	१४	अपस्य	जय॰य
२८३	१४	सहसां	सहसा
२८३	१५	रपाद्या	रयाद्या
२८४	१७	स्वर्गा	स्वर्ग
२८५	७	स्याज्ञा	स्माज्ञा
२८६	१३	हृष्टा	दृष्टा
२८६	१६	तांगपची	न्तंरङ्गपची
२८६	२२	महेशाह्यो	महेशाहो
२८७	४	संख्यस्तदीया नपुः	सख्यास्त दीया न पुनः
२८७	७	स्वमिन्द	स्वमिन्दु
२८७	१३	स्परो	स्मरो
२८७	२२	स्विदु	स्विद
२८८	३	परिशेष	परिशेषात्
२८८	७	भदन्ती	भिदन्ती

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
२८८	२१	तिरेति	निरेति
२९२	४	मवाप मनाप	मवाप भवाप
२९२	६	मन्विति	मान्विति
२९३	२	त्वगत्सु	लगत्सु
२९३	८	भिलाष वरो	भिलाष परो
२९३	१६	स्फुर	स्फुट
२९३	१८	मुह्यतं	मुह्यतां
२९५	३	माङ्कित	थाङ्कित
२९५	१०	स्वमथास्तु	स्वयमथास्तु
२९७	१	नवोद्घतं	नवोद्घृतं
३०२	१२	अवतरयति	अवतारयति
३०२	१८	दक्त्या	दक्तया
३०३	१४	पुराप युक्त्ये	पुरापयुक्तये
३०५	१३	रस्यां	रास्यां
३०६	२२	पृथगतो	पृथगतोऽथगतो
३०७	२३	पश्चिमाशेन	पश्चिमांसेन
३०८	१	मिर्हत्त	मर्हत्त
३०८	४	तथान गुह्यम्	तथा नृगुह्यम्
३१२	७	मुक्तस्य	भुक्तस्य
३१३	८	चर्वणमस्त्य	चर्वणमत्य
३१४	३	परश्रिया	परश्रियः

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
३१४	४	परोर्थेषु	परार्थेषु
३१४	१६	तृणातो	त्तृणातो
३१५	१०	खरीदी	खरादी
३१५	१६	लञ्चेत्	लुञ्चेत्
३१५	२०	निवदेहपांशु	निवहेद्पांशु
३१६	३	वृद्धिमृष्टे	वृद्धिर्मृष्टे
३१६	४	भवित्यव साविष याविजिष्णो	निरर्गलाघीर्भविताम जिष्णो
३१६	५	जग्धावृतभाति	जग्धावुतभिति
३१६	७	सुच्चिर्वितं	सुच्चर्वितं
३१६	१०	ऽङ्गलि	ऽङ्गुलि
३१६	१२	जयत्य	जयत्ययं
३१६	१८	लिखिव्यलीनः	लिरि व व्यलीनः
३१७	७	समाधिजानि	समाधिजानिः
३१७	८	श्रम्यति	श्राम्यति
३१७	११	कल्प	कल्पः
३१७	१७	रयातु	रतयातु
३१७	२०	नौतिः	नीतिः
३१७	२०	मीतिरास्ते	भीतिरास्ते
३१७	२१	पादुके वसति कराट कातते	पादुकेव सति कंटकात

पृष्ठाः	पंक्तयः	अशुद्धाः	शुद्धाः
३१७	२१	यतः	यतेः
३१९	१५	निर्दें	निर्दे
३२०	१३	पीत्यत्र	पीत्यत्रा
३२०	१८	स्पृष्टा	स्पृष्ट्वा
३२१	३	मिताङ्कनां	मिताङ्कानां
३२३	९	दयापासीद	दयायासीद
३२५	१	विंशम	विंशभ
३२५	३	मत्कल	मुत्कल
३२५	१७	पूवजमहं	पूर्वजमहं
३२६	५	शब्गार्णं	शब्दार्णं
३२७	८	ससस्रशः	सहस्रशः
३२७	१४	विशार्दे	विशदि
३२८	९	प्रभी	प्रभो
३२८	१०	लवास्माकं	तवास्माकं
३२९	६	स्तोरण	स्तारंण

